डाउनलोड मुद्रण

अ+ अ-

उपन्यास

दुक्खम्-सुक्खम्

ममता कालिया

अनुक्रम

- अध्याय 1
- अध्याय 2
- अध्याय 3
- अध्याय 4
- अध्याय 5
- अध्याय 6
- अध्याय 7
- अध्याय 8
- अध्याय 9

अनुक्रम

अध्याय 1

आगे

उसके जन्म में ऐसी कोई असाधारण बात नहीं थी कि उसका जिक्र इतिहास अथवा समाजविज्ञान की पुस्तकों में पाया जाता। जिस दिन वह पैदा हुई, घर में कोई उत्सव नहीं मना, लड्डू नहीं बँटे, बधावा नहीं बजा। उलटे घर की मनहूसियत ही बढ़ी। दादी ने चूल्हा तक नहीं जलाया। लालटेन की मद्धम रोशनी में सिर पर हाथ रखे वे देर तक तख्तत पर बैठी रहीं। बेटे की बेटी के लिए उनके मन में अस्वीकार का भाव था। जिस कोठरी में वे बैठी थीं, उसकी पिछली दीवार के सहारे गेहूँ और उड़द की बोरियाँ शहतीर तक चिनी रखी थीं और वे सोच रही थीं, एक मुँह लीलने को और बढ़ गया, पहले कौन कम थे। उन्हें बड़े तीखेपन से अपनी तीनों बेटियों का ध्यान आया जिनके रहते वे कभी चैन से बैठ नहीं सकीं। तीनों प्रसूतियों पर उनका दिल किस तरह टूटा, कैसी पराजित हुई थीं वे अपनी सृजनशीलता पर, कैसे उठते-बैठते, ससुराल से लेकर पीहर तक सबने उन्हें ताने मारे थे। लडक़ा था सिर्फ एक और उसके भी हो गयीं दो बेटियाँ।

नहीं, पहली पोती पर वे इस तरह हताश नहीं हुई थीं। शादी के सवा साल बाद जब बहू को अस्पताल ले जाने की नौबत आयी, वे खुशी-खुशी, संग-संग ताँगे पर सवार हो गयीं।

पड़ोस की रामो ने असीस दी, "जाओ बहू, जल्दी अपने हाथ-पैर से खड़ी वापस लौटो, गोद में कन्हैया खेलें।"

दादी ने बात काटी, "कन्हैया हो या राधारानी, री रामो, मेरे बेटे के पहलौठे को टोक न लगा।" जब अस्पताल में पाँच दिन की प्रतीक्षा और प्रसव-पीड़ा के पश्चात् वास्तव में राधिकारानी ही गोद में आयी तो दादी ने सबसे पहले

रामो को कोसा, "चलते-चलते टोक लगाई ही। चलो इससे क्या। मेरे बेटे का पहला फल है। अरी ओ भग्गो कहाँ है थरिया, ला नेक गाना-बजाना हो जाए। लच्छमी पधारी हैं।"

टन टनाटन टन, थाली अस्पताल में ही बजी थी। लीला और भग्गो उस छोटे-से कमरे में मटक-मटककर नाचीं। दादी ने अपनी दानेदार आवाज़ में सोहर गाया, "बाजो बाजो बधावा आज भई हैं राधारानी।" बेबी की छठी पर इक्कीस कटोरदान बाँटे गये थे।

बेबी थी भी बड़ी सुन्दर, गोरी भभूका। किसी दिन अगर काली बोस्की की फ्रॉक उसे पहना दी जाती, झट नज़र लग जाती। शाम तक वह दूध को मुँह न लगाती। तब दादी लोहे की छोटी डिबिया से फिटकरी का एक टुकड़ा निकालकर, जलते कोयले पर रखतीं। फिटकरी पिघलकर मुड़-तुड़ जाती। दादी बतातीं, "जे देख, है न बिल्कुल रामो की शक्ल, यह उसका सिर, यह धोती का पल्ला और यह उसका हाथ।" सबको वाकई फिटकरी में रामो नज़र आने लगती। सब बारी-बारी से उसे चप्पल से पीटते। कभी-कभी तब भी बेबी दूध न पीती। तब दादी पड़छत्ती पर पड़ा लोहे का कंडम चाकू उतारतीं, उसे चूल्हे में तपातीं। जब वह लाल सुर्ख दहकने लगता उसे कटोरी के दूध में थोड़ा-सा छुआ देतीं। चाकू छन्न से बोलता। दादी उँगली से तीन बार दूध के छींटे बाहर को छिडक़तीं। बेबी दूध पीने लगती।

लेकिन इस बार दादी के हौसले टूट चुके थे। उन्हें लग रहा था बहू ने नौ के नौ महीने उन्हें धोखे में रखा। कितनी बार उन्होंने इन्दु से पूछा, "मोय सच्ची-सच्ची बता दे या दिना तेरा जी मीठा खाय को करे कि नोनो।"

इन्दु सकुचाती हुई चीनी की ओर इशारा कर देती, हालाँकि उसकी तबीयत हर समय खटमिट्ठी और नमकीन चीज़ों पर मचलती रहती। तमाम सीधेपन के बावजूद इन्दु अपनी ख़ैरियत पहचानती थी। कहीं असली स्वाद वह बता देती तो सास उसे सूखी रोटी को तरसा देती। फिर चटपटी चीज़ें तो उसे हमेशा से पसन्द थीं, शादी से पहले भी।

एकाध बार दादी ने उसका पेट उघाडक़र देखने की कोशिश की पर इन्दु ने शर्म के मारे करवट बदल ली। दादी का यक़ीन था कि नाभि से निकली रोम-रेखा अगर सीधी ढलान उतरती जाए तो बेटा होता है अन्यथा बेटी।

इन्दु की यह छोटी बेटी कोई यों ही नहीं हो गयी थी। ईसाई डॉक्टरनी ने पेट चाक कर उसे गर्भ से निकाला था। हुआ यह कि बच्चा पहले तो ठीक-ठीक उतरता रहा फिर उसका सिर फँस गया। डॉक्टरनी बेहद दक्ष थी। उसने हल्के औज़ारों से शिशु को अन्दर धकेला। बड़ी नर्स ने आनन-फानन, एक कागज़ पर, दादी के अटपटे दस्तख़त लिये और डॉक्टरनी ने ऑपरेशन-थिएटर में इन्दु की नाक पर क्लोरोफॉर्म की काली कीप रख दी। पास में बैठे एक आदमी ने दादी को बताया कि उनसे किस कागज़ पर दस्तख़त लिये गये हैं तो उनका कलेजा हौल गया, "हाय जो बहू को कुछ हो गया तो सारी दुनिया मोय नाम धरेगी। बंसीवारे राखो लाज, बंसीवारे राखो लाज।" जितनी देर ऑपरेशन थिएटर की लाल बत्ती जली रही दादी यही मनाती रहीं, "हे गोपालजी मेरी बहू की रच्छा करना।"

दरवाज़ा खुलने पर सहसा अन्दर से बच्चे के रोने की आवाज़ आयी। दादी का दिल दूसरी बार हौल गया। उन्हें लगा यह किसी पुरुष कंठ का रोदन नहीं है। उनका भय सच था। तभी हाथों से दस्ताने उतारती, डॉक्टरनी बाहर आयी और बोली, "अम्मा मुबारक हो, पोती हुई है।"

दादी का चेहरा पीला पड़ गया। अब तक ऑपरेशन-थिएटर के दरवाज़े से सटी खड़ी थीं, अब धम्म से बेंच पर बैठ गयीं। उनकी आँखों के आगे अँधेरा छा गया, हलक में आँसुओं का नमक महसूस हुआ। उनकी छोटी लडक़ी भगवती साथ आयी थी। वह भी माँ की हालत देख रुआँसी हो गयी जैसे इसमें उसका भी कोई दोष रहा हो। धीरे-धीरे दादी की चेतना लौटी। वे उठकर अस्पताल के फाटक के बाहर निकल आयीं, ताँगा तय किया और भग्गो के साथ वापस मथुरा लौट चलीं। वृन्दावन से इतनी निराश वह पहली बार लौटी थीं।

सतघड़े के उस मकान में अँधेरा तो वैसे ही बहुत रहता था, आज कुछ ज्या दा घना हो गया। लालटेन की रोशनी में भग्गो की लम्बी परछाईं देखकर दादाजी ने डपटा, "कहाँ ऊँट-सी घूम रही है, बैठ चुपचाप एक कोने में।"

दादी किचकिचाईं, "बहू का गुस्सा बेटी पर निकार रहे हो, कौन मेल के बाप हो तुम।"

लाला नत्थीमल का क्रोध पत्नी की तरफ़ घूम गया, "तुमने का कम लाइन लगाई थी छोरियों की।"

"हाँ मैं तो दहेज में लायी थी ये छोरियाँ, तुम्हारी कछू नायँ लगैं।"

नत्थीमल ने आँखें निकालकर पत्नी को घूरा और फिर खाँसते हुए आढ़त की तरफ़ चल दिये।

2

कनाडा के ईसाई मिशनरियों द्वारा स्थापित यह मिशन अस्पताल मथुरा और उसके आसपास के इलाकों के लिए वरदान की तरह था। जिन परिवारों में शिक्षा की थोड़ी-बहुत भी पहुँच थी उनकी बीमारी-हारी में यह अस्पताल अनिवार्य था। यहाँ चिकित्सा नि:शुल्क थी। अलबत्ता प्राइवेट कमरे का किराया दो रुपये रोज़ था। बड़ी डॉक्टरनी गोरी-चिट्टी खुशमिजाज़ महिला थी जिसने आते ही अपने मरीज़ों का दिल जीत लिया था। उसे सिर्फ दो कामों से मतलब था, दिन-रात औरतों की चिकित्सा और चर्च में प्रार्थना। जनरल वार्ड के मरीज़ों से कोई शुल्क नहीं लिया जाता था, उलटे उन्हें सुबह-शाम खिचड़ी भी बाँटी जाती। प्राइवेट कमरेवालों को सुविधा थी कि वे कमरे में स्टोव रखकर खाना बना लें। यही कारण था कि वृन्दावन जितना बाँकेबिहारी और रंगजी के मन्दिरों से जाना जाता था उतना ही इस मिशन अस्पताल से जाना जाने लगा।

इन्दु को होश बहुत धीरे-धीरे आया। उसने पाया वह लगातार अपने हाथ पटक रही है किन्तु पैर नहीं हिला पा रही। दरअसल जिस नर्स की देखरेख में इन्दु को कमरे में छोड़ा गया था, उसकी ड्यूटी शाम साढ़े सात बजे ख़त्म हो गयी थी और अगली नर्स आकर भी अभी कमरे में आयी नहीं थी। दिनवाली नर्स ने इन्दु की दोनों टाँगों को उसी की धोती से कसकर बाँध दिया था, ताकि हिलने-डुलने से पेट के टाँके टूट न जाएँ अथवा वह नीचे न गिर जाए। इन्दु ने एक नज़र पास में लेटी बच्ची को देखा और समझ गयी कि इस बार भी बेटी ही पैदा हुई है। शरीर के दर्द, टूटन और थकान में उसकी उदासी और रुआँसापन भी शामिल हो गया।

यह रोना केवल बच्ची को लेकर नहीं वरन् अपनी रोज़मर्रा की स्थिति को लेकर अधिक था जो एक और लडक़ी के जन्म से विकटतर होनी अनिवार्य थी। इन्दु की दैनिकचर्या जेल में रहनेवाले क़ैदी की दिनचर्या से भी ज्यामदा कठोर थी। क़ैदी को सिर्फ मशक्कत करनी पड़ती है, ख़ुशामद नहीं। इन्दु के लिए मशक्कत और मान-मनौवल दोनों निहायत ज़रूरी काम थे। यों तो उसकी दो ननदें ब्याही हुई थीं पर वे आये दिन पीहर में ही दिखती थीं। तीसरी भग्गो उसकी जान की आफ़त थी। तरह-तरह की शरारत, चालाकी कर भाभी के नाम लगाना उसके लिए

खिलवाड़ जैसा था। बात-बात पर लडऩे पर आमादा सास और बददिमाग ससुर से उसकी जान काँपती। इस नवजात बच्ची का जनक आगरे में पढ़ रहा था और सिर्फ छुट्टियों में घर आता। दो बच्चों के बावजूद इन्दु को अभी पति के स्वभाव और संघर्ष का ठीक से अनुमान नहीं था। दोनों बच्चे छुट्टियों की पैदावार थे।

इन्दु को तेज़ प्यास के साथ भूख महसूस हुई। कमरा सुनसान था। उसने देखा स्टूल पर रूमाल से ढका आधा कटा पपीता रखा है। इसके अलावा खाने की कोई चीज़ कमरे में नज़र नहीं आयी। बुख़ार लेने आयी नर्स से इन्दु ने मिन्नत की कि उसे एक ग्लास दूध मँगवा दे, उसके परिवार के लोग शायद आ नहीं पाये हैं। पर नियमों का उल्लंघन अस्पताल में अच्छा नहीं समझा जाता था। इसीलिए नर्स ने फ़ौरन मना कर दिया और खटखट सैंडिल खटकाती चली गयी। इन्दु ने पपीते का अद्धा उठा लिया और लेटे-लेटे खा गयी, यहाँ तक कि उसका छिलका भी। उसने बच्ची की ओर देखा जो आँखें मींचे और मुट्ठियाँ भींचे सो रही थी। सलोनी-सी बिटिया थी, गेहुआ रंग, गुलाबी होठ और गुलगुले हाथ-पाँव। 'हाय यह लडक़ा होती तो मेरे कितने ही दुख दूर हो जाते', इन्दु के कलेजे से हूक-सी उठी और उसने बच्ची की ओर से मुँह फेर लिया। एक क्षण तो उसका मन हुआ वह बच्ची का गला घोंट दे। पर उसे अपने हाथों की ताक़त पर भरोसा न था। क्लोरोफॉर्म की जड़ता अभी पूरी तरह छँटी नहीं थी। अपना ही बदन दोगला लग रहा था।

चौबीस घंटे बीत गये पर इन्दु की छातियों में दूध न उतरा। डॉक्टरनी ने पम्प से दूध निकालने की कोशिश की तो दूध की जगह ख़ून निकल आया। डॉक्टरनी ने हैरानी और अफ़सोस से कहा, "कैसी माँ हो, ममता नहीं है बिल्कुल।" बच्ची को अस्पताल से दूध दिया जाने लगा।

दसवें दिन सास ने मथुरा से, पड़ोस की रामो को वृन्दावन भेज दिया कि वह बाँकेबिहारीजी के दर्शन कर आये और इन्दु को भी लिवा लाये। पेट के टाँके कट चुके थे। जच्चा-बच्चा के लिए अस्पताल से दवाएँ भी दे दी गयीं। नर्स ने इन्दु के पेट पर कसकर पट्टी बाँध दी कि पेट का घाव हिलने न पाये। ताँगे में जब तीनों मथुरा के लिए चलीं तो इन्दु का कलेजा उदासी, रूठन और आशंका का मनों बोझ लिये हुए था।

वृन्दावन और मथुरा के बीच पक्की सडक़ अभी नहीं बनी थी। बारह मील की दूरी इक्के, ताँगे के बल पर नापी जाती। बीच में एक जगह आम और कदम्ब के पेड़ों की छाया में एक छोटा-सा मन्दिर था जिसमें हनुमान की प्रतिमा प्रतिष्ठित थी। पूरी सडक़ पर यही एक स्थल था जहाँ कुआँ भी था। इस जगह का नाम था लुटेरे हनुमानजी।

प्राय: मन्दिर की दीवार के पीछे चोर उचक्के छिपे रहते। मौका पाते ही वे यात्रियों को डरा-धमकाकर उनका रुपया-रकम, कपड़े-लत्ते छीन लेते। उनके हाथों में लाठियाँ होतीं। वे ज़मीन पर लाठी पटककर ज़ोर-ज़ोर से चिल्लाते, "दे बजरंगबली के नाम पर।"

यात्रियों की भरसक कोशिश रहती कि लुटेरे हनुमानजी पर न रुकना पड़े। पर रास्ता इतना लम्बा और थकाऊ था कि किसी-न-किसी वजह से वहाँ रुकना पड़ ही जाता। कभी यात्रियों में से किसी को प्यास लग जाती तो कभी घोड़ा प्यासा हो आता।

इन्दु ने पहले ही ताँगेवाले को समझा दिया कि लुटेरे हनुमानजी पर ताँगा कतई न रोके, सीधा-सीधा मथुरा चले। धूप चढ़ रही थी और बच्ची अकुला रही थी। ताँगे के चलने से इन्दु के पेट पर ज़ोर पड़ रहा था। ऊबड़-खाबड़ राह

पर धचके खाता हुआ ताँगा चल रहा था। ऊपर से रामो ने एक बार भी बच्ची को हाथ नहीं लगाया, यह बात इन्दु को बहुत अखरी। ख़ुद वह बच्ची के प्रति कितनी भी कठिन हो, दूसरे की रुखाई उसे एकदम नागवार गुज़री। मुँह बिचकाकर उसने सोचा, "ज़रूर सास ने इसे सिखा-पढ़ाकर भेजा है।" रामो उसकी सास से ज़रा ही छोटी थी। वह मुहल्ले भर की मौसी थी। सतघड़े में उसका अपना मकान था जिसकी पाँच कोठरियाँ उसने किराये पर उठा रखी थीं। पन्द्रह रुपये महीने उसे किराया आता। उसके भाई मैनपुरी में तम्बाकू का व्यापार करते थे। रामो का राशनपानी, तम्बाकू डली, सब वहीं से आता। कहते हैं एक बार मथुरा में बड़े ज़ोरों की बाढ़ आयी जिसमें रामो के घर के सातों प्राणी जमनाजी की भेंट चढ़ गये। रामो अपने पीहर मैनपुरी गयी हुई थी सो बच गयी। उस बाढ़ में भीषण तबाही मची। कई-कई दिन तक लाशें ढूँढ़े से नहीं मिलीं। बाढ़ का पानी उतरने पर रामो के घर के सात में से तीन लोगों की क्षत-विक्षत निर्जीव देह मिली। कछुओं ने जगह-जगह से लाशों को बकोट डाला था। रामो के पति लाला गिरधारी प्रसाद की देह नहीं मिली इसलिए बहुत दिनों तक रामो को आस रही कि वे बाढ़ से बचकर अन्यत्र चले गये होंगे। वह माथे पर बड़ी-सी बिन्दी लगाती और रात में भी घर के दरवाज़े की कुंडी नहीं चढ़ाती। उसे लगता लालाजी आएँगे ज़रूर। मुहल्लेवाले उसे पगली समझने लगे। काफी समय बाद लोगों ने उसे अमर सुहागन घोषित कर दिया। रामो अब अपना वक्त समाज-सेवा और चुगलखोरी में बिताती थी। पड़ोसियों को एक-दूसरे से लड़ाना और मुँह में तम्बाकू दबाकर दूर से तमाशा देखना उसका शगल था।

रामो ने बच्ची को नहीं छुआ, इसके पीछे न तो इन्दु की सास का परामर्श, न कोई और प्रपंच था। दरअसल ताँगे में थोड़ी दूर चलने के बाद ही रामो के नले भारी होने लगे। रामो को बहु-मूत्र की शिकायत थी। अभी अस्पताल में वह फ़ारिग हुई थी। अब फिर उसे लग रहा था कि जाना ज़रूरी है। वह अपना ध्यान कभी तम्बाकू में लगाती, कभी इधर-उधर पेड़ों पर कूदते बन्दरों पर लेकिन नले थे कि फूलते ही जा रहे थे। आखिर लुटेरे हनुमानजी तक आते-आते उसकी बर्दाश्त जवाब दे गयी और वह ताँगेवाले से बोली, "ओ भैया, ताँगा नैक ठाड़ौ कर नहीं मैं अभाल कूद जाऊँगी।"

ताँगेवाला वहाँ रुकना नहीं चाहता था। बड़े बेमन से, मुँह बनाते हुए वह रुका और बड़बड़ाया, "जल्दी करो, इत्ती अबेर हो गयी और अभी दो चक्कर भी पूरे नईं हुए। का मैं कमाऊँगौ का खाऊँगौ।"

रामो मन्दिर की दीवार के पीछे पहुँची ही थी कि अगले ही पल ज़ोर-ज़ोर से लाठियाँ पटकने का शोर और बटमारों की आवाज़ें सुनाई दीं, "जय बजरंगबली की", "दे बजरंगबली के नाम पे।" थोड़ी देर में गिरती-पड़ती, अधखुली धोती में लटपट भागती, सिर के बाल नोचती, रामो भी नज़र आयी।

"लुट गयी, लुट गयी" कहते-कहते वह किसी तरह ताँगे में चढ़ी और बैठते ही बेहोश हो गयी। कुएँ से पानी लेकर उसके मुँह पर छींटे मारे गये, पानी पिलाया गया और उसे होश आने पर ताँगा किसी तरह फिर रवाना हुआ।

रास्ते भर रामो अपनी छाती कूट-कूटकर विलाप करती रही, "हाय मेरी सवा सेर की तगड़ी बटमारों ने छीन ली। अब मैं कौन मुँह से घर जाऊँ?"

बच्ची भी इस कोहराम में रोने लगी थी। इन्दु से न रहा गया तो उसने कह ही दिया, "मौसी तुम तगड़ी पहनकर आयी ही कब थीं, मैंने तो देखी नहीं।"

यह सुनते ही रामो को मिर्चें छिड़ गयीं। उसने इन्दु को खूब जली-कटी सुनाई जिसमें यह भी शामिल था कि अभी तो दो ही हुई हैं, द्वारकाधीश ने चाहा तो याके सात बेटियाँ होंगी और सातों के सात-सात छोरियाँ।

जब वे सतघड़े में उतरीं, रामो ने क्रोध और रुदन से अपनी आँखें लाल कर ली थीं। दादी का मन पहले ही सीठा हो रहा था। गोद में पोता खिलाने के सारे अरमान ध्वस्त हो गये थे। ऊपर से एक कठिन-कठोर भाव उनके भीतर से उगा था कि उन्हें जच्चा-बच्चा की सेवा में चालीस दिन नाचना पड़ेगा। इन्दु का स्वास्थ्य पहले ही तोला-माशा था, अब बड़े ऑपरेशन के बाद की कमज़ोरी। बड़ी पोती बेबी सिर्फ दो साल की थी पर वह भी सारा दिन उन्हें नचाती।

घर में घुसते ही रामो नाक सुडक़-सुडक़कर रोने और सिर कूटने लगी, "भली गयी मैं तेरी बहू को लिवाने। बटमारों ने मोय लूट लियो रे।"

दादी और रामो में जमकर लड़ाई हुई। दादी का कहना था लुटेरे हनुमानजी पर वह रुकी क्यों। रामो का कहना था कि उसके नले फट जाते और वह मर जाती तब?

रामो ने और भी ज़ोरों से रोना शुरू कर दिया। उसे इस कदर रोते-बिलखते देख नत्थीमल ने दुकान से निकलकर पूछ ही तो लिया, "कै छटाँक की थी तगड़ी, बताओ और अपने घर में बैठकर रोओ।"

रामो ने अपने आँसू पोंछ लिये। उसका चेहरा खिल उठा। बोली, "पूरी सवा सेर की थी भैयाजी, खालिस चाँदी की।"

दादी को बेहद गुस्सा आया। तिलमिलाकर बोली, "देख रामो, मैंने भी सौ बार देखी थी तेरी तगड़ी, तीन पाव से ज्यादा नहीं थी।"

"तो मैं का झूठ बोल रई हूँ।"

"तुम तो हो ही झूठी।"

"तुम झूठी, तुम्हारा खानदान झूठा। सच्ची कहते हैं आजकल नेकी का जमाना नहीं रहा।"

इन्दु आँगन में पड़े तख्तई पर बच्ची को लेकर बैठ गयी थी। सास ने उसे घुडक़ा, "चलो अपने कमरा में। अभी तो पैर पड़े हैं, और का-का करावे वाली है जे छोरी।"

नत्थीमल रामो से बात करने लगे, कौन सुनार ठीक रहेगा, तगड़ी बनी-बनाई अच्छी रहती है या चाँदी लेकर बनवाई जाएगी। बनने के बाद तुलवाने के लिए धरमकाँटे पर बाबा जाएँगे या रामो जाएगी।

रामो की आँखें चमक उठीं। वह अपनी सारी थकान भूल गयी और सरजू सुनार से लेकर काने कारीगर तक की विशेषताओं का बखान कर गयी।

लालाजी ने कहा, "आज से आठवें रोज़ आकर अपनी तगड़ी ले जाना, बस अब जाओ।"

पान डली तम्बाकू का अपना बटुआ उठा रामो यह जा और वह जा। दादी के तनबदन में आग लगने लगी। तमककर बोलीं, "आज तक अपनी लुगाई से कब्भौ नई पूछा तेरे लिये का बनवा दूँ। उस झूठी, मक्कार रामो को

तुम गहने गढ़ाओगे। सारी गली तुम पर थू-थू करेगी।"

"बेवकूफ़ कहीं की। तुम्हारी बहू को लिवा लाने में वह बीच बाज़ार लुट गयी। अब उसकी भरपाई कौन करे?"

3

भगवती, भग्गो ने बताया, "भाभी अभी हाल सारे घर की पुताई हुई थी। जीजी ने तुम्हारा कमरा ऊपर तीन तिखने पे कर दिया है। तुम्हारे बक्से वहीं धरे हैं।"

इन्दु के अन्दर गुस्से की लपट उठी। इन्हें मालूम है मैं कच्चा शरीर और नन्हीं जान गोद में लिये लौटूँगी, फिर भी मेरा कमरा बदल दिया।

भग्गो ने बच्ची को थाम लिया। उसकी नन्ही-सी चिबुक पर अपनी उँगली रख वह बोली, "देख ले, हम तेरी बुआ हैं, अब रोना नहीं।"

ज़ीने की दीवार में लोहे के कुन्दों के सहारे मोटी रस्सी बँधी हुई थी। उसी रस्सी को पकड़, किसी तरह काँपती, लडख़ड़ाती टाँगों से गिरती-पड़ती, इन्दु अपने कमरे में पहुँची। वहाँ उसकी दो साल की बेटी, बेबी चटाई से लुढक़कर धरती पर सोई हुई थी।

छोटी बेटी ने अपना गिलोट गीला और गन्दा दोनों कर लिया।

"मैं तो भैयाजी से नयी धोती लूँगी", कहते हुए भग्गो ने बच्ची को भाभी को थमाया और नीचे चल दी।

कमरे की मोरी पर सिर्फ एक बाल्टी पानी और लोटा रखा था। इन्दु ने बच्ची को साफ़ किया और गन्दा गिलोट गुड़ी-मुड़ी कर खिडक़ी से बाहर फेंक दिया। फिर वह पुराना, नरम कपड़ा ढूँढऩे लगी जिससे बच्ची को गिलोट बाँध सके। बाहर निकला एक भी कपड़ा नरम न था। इन्दु ने असीम थकान से कमरे में तला-ऊपर चिने हुए अपने भारी-भरकम बक्से देखे और पेट पकडक़र रो पड़ी। उसने वैसे ही उघड़ी हुई बच्ची को चटाई पर लिटा दिया और थके हाथों से खाट पर दरी बिछाने लगी।

इन्दु को बहुत तेज़ भूख लगी हुई थी। अस्पताल से वह थोड़ी-सी खिचड़ी खाकर निकली थी। अब दोपहर होने आयी। उसने छज्जे से नीचे की ओर मुँह कर दो-चार बार पुकारा, "भग्गो बीबी, भग्गो बीबी।"

कोई जवाब नहीं मिला।

भूख असहय होने पर वह धीरे-धीरे नीचे उतरी और आँगन से लगी धुँआती रसोई के बाहर बैठ गयी।

दोपहर का चौका लगभग निपट चुका था। लालाजी खाना खाकर दुकान जा चुके थे। दादी और भग्गो अपने-अपने पट्टे पर बैठीं एक ही थाली में खाना खा रही थीं। पास ही उदले में दाल और कूँडी में करेले रखे हुए थे। इन्दु ने अपना सारा आत्मसम्मान दाँव पर लगाकर बड़ी कठिनाई से कहा, "जीजी मैं भी आ जाऊँ।"

"डटी रह वहीं, मैं आयी।" सास ने उसे रोका। उन्होंने कटोरदान में से सबसे नीचे रखे हुए दो बासी पराठे निकाले, उन पर एक करेला रखा और चौके के बाहर इन्दु को देती हुई बोलीं, "अब महीना भर लीलने और हगने के सिवा

और तुझे का काम है!"

इन्दु ने सास को कोई जवाब नहीं दिया। ननद की तरफ़ इसरार से बोली, "भग्गो बीबी, थोड़ी दाल हो तो..."

भग्गो ने रोटी का कौर मुँह में ठसाठस भरकर गोंगियाते हुए कहा, "डाल खटम है। हमें का पता था टुम चली आओगी, नहीं पत्तल परोसकर रखते।"

पैर के तलुवे धूप में बेतरह जल रहे थे। इन्दु हटकर बरामदे में आ गयी। पराठे निगलकर सुराही से पानी पिया और वहीं बैठकर आँचल से गर्दन पोंछने लगी।

भोजन के बाद सास भी चौके से बाहर आ गयी। भग्गो रसोई में पटक-पटककर बर्तन माँज रही थी। इन्दु ने कहा, "जीजी मेरा कमरा कुछ रोज़ ठहरकर बदलतीं तो अच्छा होता। अभी शरीर में बिल्कुल जान नहीं है ऊपर-नीचे चढऩे की।"

"और कौन कमरा है इन्दो। नीचे की सब कोठरियों में बोरियाँ चिनी भई हैं। बिचले खन्ने में मर्दों का रहना है।"

"नीचे एक भी कमरा खाली नहीं है?" इन्दु के पूछने में सन्देह शामिल था।

"कमरा तो कोई नायँ। तू कहे तेरी खाट बीच बजरिया लगवाय दूँ।"

भग्गो राख भरे हाथों से रसोई के दरवाज़े पर आकर बोली, "हमने तो भली सोच तुम्हारे लिए अटरिया सजाई ही कि पड़ी रहेगी महारानीजी अपनी दोनों राजकुमारियाँ लेके।"

जितने भी उत्तर इन्दु की ज़ुबान पर आये उसने होंठ दबाकर पीछे धकेल दिये। रहना तो उसे यहीं था।

इन्दु जब फिर ऊपर पहुँची उसने देखा बेबी जाग गयी है और बड़े कौतुक से छोटी बच्ची का एक-एक अंग छू-छूकर देख रही है। माँ को देखते ही चहककर बोली, "अम्मा देखो, मुन्नी आ गयी।"

नन्हीं बच्ची का नामकरण हो गया।

बेबी के चेहरे की चमक देखते बन रही थी। वह एक बार मुन्नी को देखती, एक बार माँ को और ताली बजा उठती। फिर वह खम-खम ज़ीने उतर गयी और दादी से लिपटकर बोली, "दादी अड्डू।"

दादी ने अपनी लाड़ली पोती को गले लगा लिया। उनकी आँखों से टप-टप आँसू गिरने लगे। पन्द्रह रोज़ पहले उन्होंने सूजी, गोला, कमरकस, मखाने, सोंठ, गोंद और देसी घी डालकर लड्डू बनाये थे कि बेटेवाली बहू को खिलाऊँगी तो बहू छह रोज़ में खड़ी हो जाएगी। पर बेटी होने से वे खुद ही बैठ गयीं। इस बीच उनमें से ज्या दा लड्डू भग्गो और बेबी के उदर में समा चुके थे।

दादी ने दो लड्डू बेबी को दिये और खुद चरखा चलाने बैठ गयीं।

बेबी लड्डू लेकर फिर ज़ीना चढ़ गयी।

"अम्मा अड्डू खाओ," उसने जबरन इन्दु के मुँह में लड्डू भर दिया। इन्दु को फिर रोना आने लगा।

सास के दुलार और दुत्कार, दोनों का हिसाब न था।

4

पत्नी के प्रसव के समय का कुछ मोटा-सा अन्दाज़ कविमोहन को था। वह मथुरा जाना चाहता था। लेकिन मार्च भर उसकी एम.ए. की परीक्षा चली और जब वह फ़ारिग हुआ तो जिन दो ट्यूशनों का काम उसने ले रखा था, उन बच्चों की परीक्षा शुरू हो गयी। अपनी परीक्षा से ज्या दा तैयारी उसे सचिन और विकास के पर्चों के लिए करनी पड़ रही थी। दोनों जगह अलग क़िस्म के दबाव थे। सचिन चमड़े के व्यापारी अंगदप्रसाद का बेटा था। वह नवीं में एक साल फेल हो चुका था। उसके पिता आगरे और दयालबाग के बीच चक्कर लगाते रहते। सचिन को हर किताब एक बोझ और हर परीक्षा जंजाल लगती। वह चाहता था कि पिता के साथ खालों का कारोबार सँभाले। लेकिन अंगदप्रसाद ने कविमोहन से कहा, "कविबाबू, किसी तरह मेरे लडक़े को बी.ए. करवा दो। हमारे ख़ानदान में कोई भी दसवीं से आगे नहीं पढ़ा।"

कवि ने कहा, "पहले यह दसवीं तो पास कर ले।"

"तुम किसलिए हो। पन्द्रह रुपये कम लगते हैं तो मैं बीस देने को तैयार हूँ पर सचिन इस बार पक्का पास होना चाहिए।"

कविमोहन उन्हें बताना चाहता कि परीक्षा में तो सचिन का लिखा-पढ़ा ही काम आएगा पर उसके पिता इतना मौक़ा ही न देते।

दूसरी ट्यूशन का विद्यार्थी दिमाग से तेज़ था पर उसमें अनुशासन नाम का तत्त्व नहीं था। कवि उसे जायसी समझाने की कोशिश करता। विकास उसे रोककर कहता, "मास्साब चलें 'रतन' देख आयें, कल उतर जाएगी।"

विकास को फिल्मों का चस्का था। एक-एक फिल्म वह कई-कई बार देखता। फिल्म का एक-एक दृश्य और गीत उसे कंठस्थ रहता पर जायसी का 'पद्मावत' उसे पहाड़ मालूम देता। यही हाल अँग्रेज़ी विषय का था। कविमोहन ने उसे समझाया भी कि वह आसान विषय लेकर फस्ट इयर कर ले पर विकास हिन्दी, अँग्रेज़ी के साथ इतिहास लिये हुए था।

कविमोहन की सारी अर्थव्यवस्था इन्हीं दो ट्यूशनों पर टिकी हुई थी। पिता अनेक अहसान जताते हुए किसी तरह उसे पच्चीस रुपये महीना देते। इतनी धनराशि में हॉस्टल में रहना, धुले हुए कपड़े पहनना और दो वक्त खाने का जुगाड़ करना हँसी-खेल नहीं था। ऊपर से कवि को किताबें खरीदने का चस्का था। ऐसे में ट्यूशनों से मिलनेवाले तीस रुपये महीने बहुत अहम थे।

सचिन और विकास की परीक्षा ख़त्म होने में अप्रैल पूरा खप गया। उनसे मुक्त होते ही कविमोहन को इन्दु की याद आयी। पता नहीं पत्नी ने क्या सोचा होगा।

जल्द ही एक दिन कविमोहन ने स्टेशन के पास की दुकान से एक रुपये के दो झबले, आध सेर रेवड़ी और पाव भर दालमोठ खरीदकर मथुरा की गाड़ी पकड़ ली।

गर्मी अभी जानलेवा थी। शाम को भी लू चलती। पसीना-पसीना जब वह घर पहुँचा, दिन झुक आया था। बड़ी बहन लीला अपने चार महीने के बेटे के साथ आयी हुई थी। भग्गो माचिस की डिब्बी में गेहूँ के दाने डालकर, डिब्बी झुनझुने की तरह बजा रही थी। कविमोहन को देखकर खेल छोड़ वह खड़ी हो गयी, "आहा जीजी, भैयाजी आ गये।"

इतने दिनों से घर में बेटे की बाट जोही जा रही थी पर उसका मुँह देखते ही माँ पर रुलाई का दौरा पड़ गया। लीला दौड़कर पानी लायी, माँ को जबरन पिलाया। माँ का हाल देखकर यह कहना मुश्किल था कि उनके गीले चेहरे और गर्दन में आँसू और पसीने का अनुपात क्या है। माँ ने अपने सिर पर हाथ मारकर कहा, "सराफेवालों ने अपनी खोटी चवन्नी हमारे द्वारे डाल दी। दो-दो छोरियाँ जन दी इसने।"

"अब बस भी करो जीजी।" लीला ने समझाया।

कविमोहन ने बहन से पूछा, "बेबी नहीं दिख रही? क्या सो रही है?"

"अपनी मैया से लगी बैठी होगी।" जीजी ने कहा।

भग्गो कवि का थैला खखोर रही थी। रेवड़ी और दालमोठ के ठोंगे निकालकर उसने खोले फिर नाक सिकोड़कर बोली, "भैयाजी गजक नायँ लाये।"

"जल्दी रही याई मारे भूल गयौ। अगली बार सही।"

भग्गो ने कागज़ के पैकेट से झबले निकाले, "आहा यह चन्दू के लिए हैं।"

लीला ने कहा, "कबी तुझे जरा अकल नहीं है। इत्ते छोटे झबले लायौ है।"

तब माँ को समझ आयी, झबले किसके लिए आये हैं। माँ बिफर गयी, "ऐसी बेसरमाई कभी देखी, बाप बनौ घूम रह्यै है। बेटी के लिए कपड़े आ रहे हैं। रहने दे भग्गो, भर दे सब सामान थैला में। जिसके लिए लाया है, वही निकारे।"

भग्गो बड़े बेमन से रेवड़ी और दालमोठ के ठोंगे भी मोडक़र थैले में रखती कि माँ ने दोनों ठोंगे झपटकर दूसरी तरफ़ रख लिये। भग्गो ने कहा, "भाभी बिराजी हैं तीन तिखने।"

कवि का मन हुआ दौड़ता हुआ ऊपर चढ़ जाए पर माँ और बड़ी बहन के सामने हौसला नहीं पड़ा।

"ब्यालू कर ली?" माँ ने पूछा।

"नहीं जीजी, तुम्हारे हाथ का कौला का साग और परामठा खाने को तरस गया।" कवि ने कहा।

माँ प्रसन्न हो गयीं। आज भी यही ब्यालू बनी थी।

"खाना परस दूँ भैयाजी? भग्गो ने पूछा।

"पहले चाय पिला तो थकाई दूर हो।" कवि ने कहा।

समस्या यह थी कि चाय बनाये कौन। घर में चाय कभी-कभी बनती। चूल्हे की आँच में कई बार चाय का पानी धुआँ जाता और अच्छी-भली चाय चौपट हो जाती। कवि की ससुराल से एक छोटा प्राइमस स्टोव आया था पर उसे जलाना सिर्फ इन्दु जानती थी।

तभी ज़ीने में पैरों की आवाज़ हुई। यह इन्दु थी। इन्दु के गोरे मुख पर सौरगृह से निवृत्त होने के बाद की पीली आभा थी जो गुलाबी धोती में छुपाये नहीं छुप रही थी।

जीजी ने कहा, "इन्दु स्टोप जला के नेक चाय तो बना दे। और देख आधा कटोरा मेरा भी। हाँ, ये रबड़ की स्लीपर बाहर उतार दे। चौके के बाहर चट्टी पड़ी है।"

सारा काम निपटाकर इन्दु जब ऊपर गयी, कवि पहले ही कमरे में पहुँचकर बेबी-मुन्नी के साथ लेट गया था। उसने सोचा था वह पत्नी से कहेगा कि वह बहुत कमज़ोर हो गयी है पर उसने बेबी की टाँग पर पलस्तर चढ़ा देखा तो गुस्से का गुबार फूट पड़ा, "इसकी हड्डी कैसे टूट गयी। खुली हवा का तुम्हें इतना शौक है कि तीन तिखने चढक़र बैठी हो।"

इन्दु हक्का-बक्का। वह समझ गयी कि नीचे काफी लगाई-बुझाई हो चुकी है।

उसने कहा, "बेबी ज़ीने से नहीं टट्टर से गिरी है। खाट चढ़ाने को जीजी ने खिडक़ा खुलवाया था। बाद में खिडक़ा बन्द करने का किसी को ध्यान नहीं रहा। बेबी शाम को खरबूजे की फाँक खाती-खाती कमरे की तरफ़ आ रही थी कि गिरी धड़ाम से। टाँग की हड्डी टूटी और भौंह के पास कट गया सो अलग।"

"और ये, इसे क्या हुआ है, शरीर पर मांस नाम को भी नहीं है!" उसने मुन्नी की ओर इशारा किया।

"इस बार दूध उतरा ही नहीं," इन्दु ने आँखें झुकाकर जवाब दिया, "एक लुटिया दूध में दो लुटिया पानी मिलाकर औंटाते हैं, वही खुराक है इसकी। अब तो ज़रा गाढ़ा दूध दो तो उलट देती है। हज़म नहीं होता। या हरे-पीले दस्त शुरू हो जाते हैं।"

"मैं अभी जाकर जीजी से पूछूँ?" कवि ने भडक़कर कहा।

"महाभारत ही मचाओगे न। सास-ननद बर्र के छत्ते-सी पीछे पड़ जाएँगी। तुम तो चार दिन बाद चल दोगे।"

कवि का मन कसैला हो गया। आधी रात तक इन्दु अपनी बिथा-कथा सुनाती रही : कैसे उसे सारा दिन काम में उलझाया जाता है। जब बच्चे रोते हैं तो बच्चों का ताना दिया जाता है। उसके पास बाल सीधे करने को कंघा तक नहीं है। रोज़ उसे ठंडा, बासी खाना मिलता है। बात-बात में उसके मायकेवालों को ताना दिया जाता है। कवि ने अँधेरे में टटोलकर टीन का अपना नया कंघा निकालकर पत्नी को दिया।

इन्दु की कृशकाया पर हाथ फेरते हुए कवि को लग रहा था उसे अपनी दुनिया बदलने की पहल घर से ही करनी होगी।

विद्यार्थी जीवन के ग्रहणशील वर्षों में कविमोहन के मन-मस्तिष्क पर दो प्राध्यापकों के विचारों का सर्वाधिक प्रभाव पड़ा था। एक थे डॉक्टर राजेन्द्र और दूसरे प्रोफेसर हार्ट। हिन्दी और अँग्रेज़ी साहित्य के ये दो महारथी एक-दूसरे के विलोम भी थे। पढ़ाने के साथ-साथ राजेन्द्रजी 'मीमांसा' नाम की लघु पत्रिका निकालते थे जिसमें बड़े-बड़े रचनाकार अपना नाम छपा देखकर गर्व अनुभव करते। खाली समय में कवि आगरा प्रेस जाकर मीमांसा के प्रूफ़ पढ़ता। इससे राजेन्द्रजी की सहायता हो जाती और कवि को दिग्गजों की रचनाएँ पढने को मिल जातीं। शायद उनमें कवि पिता-रूप की आदर्श छवि ढूँढ़ता रहता। वे जब हवा में मुट्ठी तानकर कहते, "सिंहासन खाली करो कि जनता आती है।" पचासों छात्र उनके साथ-साथ जयघोष करते। स्वाधीनता के लिए वे सशस्त्र क्रान्ति ज़रूरी मानते।

प्रोफेसर हार्ट का मानना था कि छात्रों को राजनीति से दूर रहना चाहिए। वे कहते, "हर आदमी को बीस साल का होते-होते बीस किताबें चुन लेनी चाहिए जिनके सहारे वह अपना आगामी जीवन बिता ले।" वे कहते, "शेक्सपियर पढ़ो तो तुम पाओगे समस्त जीवन तुम्हारे आगे प्रस्तुत है। कौन-सा ऐसा भाव है जो उसने व्यक्त नहीं किया, प्रेम, पराक्रम, प्रतिशोध की पराकाष्ठा, ईष्र्या, घृणा, पश्चाताप के आरोह-अवरोह, आक्रमण, षड्यन्त्र, दुरभिसन्धि के प्रपंच सब उसके नाटकों में व्यक्त हुए हैं। किताबें जीवन से ज्या-दा सच के निकट होती हैं।"

निजी जीवन की समस्याओं से घबराकर कविमोहन किताबों की शरण में जाता। प्राय: यह पलायन अमूल्य सिद्ध होता। कभी डन की कोई प्रेम-कविता उसे पुलकित कर जाती। कभी टॉमस हार्डी की हिरोइन की त्रासदी विचलित कर जाती। कवि का अब तक का अध्ययन सुरुचि से संवेदना की यात्रा था। पुस्तकों में रमकर वह भूल जाता कि घर में उसे सडिय़ल स्वभाव पिता और अडिय़ल-प्रकृति माँ से टकराना पड़ता है। कई बार तो यह भी याद न रहता कि अब वह पहले जैसा आज़ाद नहीं है। पत्नी का जीवन उसके साथ अनजाने ही नत्थी हो गया है।

कभी रातों में गर्मी या मच्छर या दोनों के कारण नींद उड़ जाती। ऐसे में अब तक के साल उसकी आँखों के आगे चलचित्र की तरह घूम जाते। जब वह पहले पहल कविता-कहानी रचने की ओर हुआ, उसकी आदत थी, वजीफे के पैसे मिलते ही वह दो रजिस्टर ख़रीदता और उनके ऊपर साफ़ हरूफों में लिख देता-कविमोहन की कविताएँ, कविमोहन की कहानियाँ। पिछले रजिस्टर महीने भर में भर जाते। यों उसके पास अलग कमरा नहीं था पर माँ का कमरा उसे अपनी कृतियाँ सहेजकर रखने के लिए सही जगह लगता। वह सभी रजिस्टर वहाँ एक आले में रख देता। एक बार पिताजी दुकान से उठकर अन्दर आये। उन्हें पुडिय़ा बाँधने के लिए कागज़ कम पड़ रहा था। पुराने अख़बार वैसे ही नहीं बचते थे। सवेरे दुकान खोलने के वक्त ही कल का अख़बार काम में आ जाता। तभी उन्हें माँ के कमरे में आले में रखे रजिस्टर दिखे। वे शिक्षित थे पर दीक्षित नहीं। उन्होंने उलट-पलटकर रजिस्टर देखे। यह तो पता चल गया कि बेटे ने उनमें कुछ लिख रखा है पर क्या लिख रखा है, यह देखने लायक़ धैर्य उनमें नहीं था। ये लम्बी कापियाँ पूरी भरी हुई हैं, बस यह उन्हें दिखा। करीब घंटे भर बाद जब कविमोहन लौटा, आला खाली था। माँ के इशारा करने पर वह सीधे दुकान में पहुँचा। उस समय पिता उसके रजिस्टर के पन्ने फाड़ उनमें जीरे और हल्दी की पुडिय़ा बाँधकर एक ग्राहक को दे रहे थे।

कवि उबल पड़ा, "दादाजी, जे तुम का कर रए हो। जे मेरी कबिताओं की कापियाँ हैं।"

"सब भरी भई हैं।" पिता ने कहा।

"पर फेंकने के लिए नई हैं," कवि ने उनके घुटने के नीचे से कापियाँ खींच लीं।

पिता ने आग्नेय आँखों से उसे घूरा पर तब तक अगला ग्राहक आ गया था। कवि पैर पटकता हुआ अन्दर चला गया।

रात में दुकान बढ़ाकर जब वे कमरे में हाथ-पैर धोकर आये, पत्नी से बोले, "जे कबी तुमने बहौत मुँहजोर बनायौ है, इत्ता सिर पर धरना ठीक नईं।"

पत्नी ने अभी-अभी मुँह में पान का बीड़ा डाला था। वह बोलकर अपना सुख नष्ट नहीं करना चाहती थी।

पिता को तेज़ गुस्सा आया, "मैं बावला हूँ जो बक रहा हूँ। छोरा कबित्त पे कबित्त लिख-लिखकर कागज़ काले कर रह्यै है, तुम्हें याकी सुध है।"

"हम्बै।"

"याई दिना के लिए इसकी पढ़ाई-लिखाई की फीस भरी ही मैंने कि बाप पे अर्रा-अर्रा के चढ़ै!"

दसवीं में जब कविमोहन का अव्वल दर्जा आया, माँ ने ही उसके आगे पढ़ाने का समर्थन किया था। पिता उसे कॉलेज भेजने के हक़ में क़तई नहीं थे। उनका इरादा था कि दसवीं पास वणिक-पुत्र दुकान में बराबर का हाथ बँटाये। नतीजा निकलने के अगले ही दिन उन्होंने कहा, "कबी, अब दुकनदारी तुम सँभारौ। हम तो भौत थक गये।"

कवि की चेतना को भयंकर झटका लगा। सुबह से लेटे-लेटे वह बी.ए., एम.ए. और प्रोफेसरी के सपने ले रहा था। पिता भी कोई अनपढ़ नहीं थे। दसवीं उन्होंने भी पास कर रखी थी। एक पल सन्न, पिता की ओर देख उसने दृढ़ता से कहा, "दादाजी अभी मैं दुकान पर नहीं बैठूँगा, आगे पढ़ूँगा।"

"अच्छा, और पढ़ाई का खर्च कौन देगा, तेरा बाप?"

"अब तक जैसे रो-रोकर आपने मेरी फीस दी, वह मुझे ठीक नहीं लगता। खुशी-खुशी दें तो ठीक वरना मैं खुद कोई इन्तज़ाम कर लूँगा।"

"ससुरा बाप के आगे पूँछ फटकार रहा है। दसमी पास करके जे हाल है। बी.ए. हो गया तो कौन हाल करेगा। मैं कहे देता हूँ, कोई ज़रूरत नहीं कॉलेज जाने की। बाँट-तराजू सँभारो और होश में रहो।"

"दादाजी मैंने बूरा तोलने के लिए हाईस्कूल नहीं किया। मुझे आगे पढना है।"

पिता ने उठकर दो धौल उसकी पीठ पर लगा दिये। कविमोहन का पढ़ाई का इरादा और पक्का हो गया।

माँ उसे बचाने लपकी पर कविमोहन बाँह छुड़ाता हुआ ज़ीना चढ़ गया। गुस्से और असन्तोष का गुबार ऊपर के कमरे में जाकर आँसुओं की शक्ल में निकला। उसे लग रहा था पिता के रूप में घर में कोई राक्षस रहता है। एक तो उसकी कविताओं की कापियाँ फाड़ दीं, ऊपर से पीट दिया। उसके जो दोस्त रद्दी नम्बरों से पास हुए, उन्होंने भी घर

से मिठाई और शाबाशी पायी। वह प्रथम श्रेणी लाकर भी सराहना से वंचित रहा। मिठाई तो दूर दो बताशे भी नसीब नहीं हुए। माँ पर भी उसे गुस्सा आया। वह क्यों नहीं समझातीं पिताजी को!

6

मुँहअँधेरे माँ ने अमूमन आवाज़ लगायी, "कबी ओ कबी, उठ दूध लेकर आ।"

गली के ढाल पर किशना घोसी सुबह पाँच बजे गाय दुहता था। पीतल का कलईदार डोल लेकर दूध लाना कविमोहन का काम था।

जब दो आवाज़ पर भी कोई आहट नहीं हुई तो माँ ने उसकी चारपाई के पास आकर उसे झकझोरना चाहा। उसके हाथ में कवि की खाली कमीज़ आ गयी जो वह इसलिए उतारकर धर गया था कि घरवालों को पता चल जाए कि वह वाकई घर छोड़ गया है।

माँ घबराई हुई पति के पास आयी। वे सोये हुए तो नहीं थे पर अलसा रहे थे।

"गजब हो गया, कबी भाग गयौ जनै।"

अभी दिन पूरी तरह उगा नहीं था। अँधेरा अपनी आखिरी चौखट पर खड़ा था। पति ने लालटेन जलाकर घर भर में ढूँढना शुरू किया। एक क्षण वे लालटेन लिये, आँगन में हतबुद्धि से इधर-उधर ताकते रहे, फिर हड़बड़ाकर चाभी लगाकर दुकान का पिछला द्वार खोला। बरामदे के पास वाले कमरे में दुकान थी। उन्होंने गल्ला गिनकर देखा। रुपये पूरे थे। पिछली रात जब दुकान बढ़ाई थी, तब भी उतने ही थे।

वे कुछ आश्वस्त हुए। कवि की माँ घबराई हुई ऊपर की मंजिलें देखकर डगमगाती हुई ज़ीना उतर रही थी। थक गयी तो ज़ीने में ही बैठ गयी।

पति ने ज़ीने में मुँह करके कहा, "फिकर न करो कवि की माँ। ससुरा दो दिना में वापस आ जाएगा। रुपया-अधेला सब ठीक है।"

माँ ने ज़ीने की सीढ़ी पर ही अपना सिर कूट डाला, "भाड़ में जाय तुम्हारा रुपया-पैसा। मेरा पला-पलाया छोरा चला गया, तुम अभी अंटी ही टटोल रहे हो। न तुम उसकी कापियाँ फाड़ते न मेरा कबी घर छोडक़र भागता।"

लाला नत्थीमल कुछ देर पत्नी की तरफ़ देखते रहे। उन्होंने लालटेन खट् से ज़मीन पर रख दी और वहीं बैठ गये। वे पिछले दिन की घटना याद करने लगे, उन्होंने यही तो कहा था कि छोरा दुकान पर बैठे। इत्ती-सी बात पे कवि के मिर्चें लग गयीं। ठीक है वह अव्वल आया। उन्होंने सिहाया नहीं उसे। पर वह ससुरा उनसे कौन रिश्ता रखता है। कभी नहीं कहता, दादाजी तुम नेक आराम कर लो, मैं काम देख लूँगा। स्कूल से आकर लौंडे-लपाड़ों में घूमना, कविताई करना, याके सिवा कौन काम है उसे। इतना ज्याकदा उन्होंने डाँटा भी नहीं था। न उन्होंने हाथ उठाया। परकी साल जब उसने कल्लो कहारिन को एक पंसेरी चावल उधार दिया था, तब उन्होंने उसकी मार-कुटाई भी कर दी थी।

कविमोहन तब क्यों नहीं भागा, अब क्यों भागा।

वे कहाँ गलत हैं, उनकी समझ नहीं आ रहा था। उनका ख़याल था कि दिन भर दुकान पर खटने के बाद हिसाब भी न मिलाया तो क्या खाक़ कमाया। यह बात और है कि वे हर घंटे पर हिसाब मिलाया करते। व्यापार की ये वणिक बारीकियाँ उन्होंने अपने पिता और उनके पिता ने अपने पिता से सीखी थीं। इस बात पर तीनों पीढ़ियाँ सहमत थीं कि उधार मुहब्बत की कैंची है। इस सिद्धान्त का खुला उल्लंघन कवि ने किया जब उन्होंने उसे दोपहर में घंटे-दो घंटे जबरन दुकान पर बैठाया।

ग्वाल टोले के छोटे-छोटे बच्चे दो पैसे, चार पैसे का मिर्च-मसाला खरीदने आते थे। भोले-भाले बच्चों का ध्यान न बाँट पर, न तराजू पर। चुटकी-चुटकी सौदा कम देने पर उनसे काफी मुनाफ़ा कमाया जा सकता था। पर कवि इन्हीं बच्चों को ज्यानदा सौदा दे देता। बच्चों से बोलना, चुहल करना उसे अच्छा लगता। वे, कई बार, टोली में आते, सौदा लेते और चलने से पहले नन्हे-नन्हे हाथ पसारकर कहते, "राजा भैया टूँगा।" कवि रत्ती-रत्ती गुड़ सबकी हथेली पर रख देता और देर तक उन बच्चों का आह्लालाद देखता रहता। गुड़ की डली मुँह में रख वे लुढ़क़-पुढ़क़ घर की ओर भाग जाते। उन्हें देख कविमोहन को अक्सर सुभद्राकुमारी चौहान की 'मेरा बचपन' कविता याद आती।

पिता को जब इस कार्रवाई की भनक मिली उन्हें अन्दर-ही-अन्दर बड़ी तिलमिलाहट हुई। दोपहर के यही दो घंटे उनके आराम के थे। इस तरह तो बेटा दुकान लुटा देगा। फिर भी, कवि से बकझक करने की बजाय उन्होंने गुड़ का तसला दुकान से उठाकर गोदाम में बन्द कर दिया। लेकिन कवि ने अगले ही रोज़ नया रास्ता खोज लिया। अब वह बच्चों को गुड़ की बजाय काले नमक की डली बाँटने लगा। बच्चों की उमंग में कोई कमी नहीं आयी। वे ज्यावदा खुश हुए क्योंकि नमक की डली गुड़ की डली से ज्याटदा देर मुँह में बनी रहती।

गुड़ महीनों कोठरी में बन्द पड़ा रहा। एक दिन ग्राहक के आने पर पिता ने देखा तो पाया तसले में पड़ा सारा गुड़ गोबर बन चुका है। उन्हें अफ़सोस हुआ या नहीं, यह कवि पर स्पष्ट नहीं हो पाया। गुस्से से बलबलाते हुए उन्होंने सारा गुड़ किशन घोसी की नयी ब्याई भैंस के आगे डलवा दिया।

7

बहुत सोचने पर पिता के व्यक्तित्व के कई विकार कवि के आगे उजागर होने लगते। वह 'साकेत' की पंक्ति 'माता न कुमाता पुत्र कुपुत्र भले ही' को बदलकर मन-ही-मन कह उठता, "माता न कुमाता पितृ कुपितृ भले ही।" यह एक ऐसा रिश्ता था जिसमें दोनों एक-दूसरे को 'कु' मानते थे।

कविमोहन को हैरानी होती कि पिता ने अपनी समस्त प्रतिभा और तीक्ष्ण बुद्धि महज़ नफ़ा-नुक़सान की जाँच-तौल में खपा दी। उनकी मुश्किल यह थी कि वे किसी दिन चाहे सौ कमा लें चाहे दो सौ, उन्हें अपनी इकन्नी और अधन्ना नहीं भूलता। किसी ग्राहक ने अगर उन्हें एक अधन्ने से दबा लिया तो उन्हें वह अधन्ना कचोटता रहता। ऐसे दिन वह घर भर में बिफरे घूमते। बिना बात पत्नी या बेटी को फटकार लगा देते, "ये नल का पानी क्यों बहा रही हो। क्या मुफ्त आता है?" उन्हें लगता सारी दुनिया उन्हें लूटने पर आमादा है। वे कर्कश और कटखने हो जाते। जितनी देर वे घर में होते, सब एक तनाव में जीते। जहाँ इसी मथुरा में मोटी तोंदवाले हँसमुख थुलथुल चौबे बसते थे, लाला नत्थीमल शहतीर की तरह लम्बे, दुबले क्या, लगभग सूखे हुए लगते। ऐसा लगता जैसे कृष्ण ने जीवन का मर्म उन्हें यही समझाया है कि 'अपनों से युद्ध करना तेरे लिए सब प्रकार से श्रेयस्कर है, मरकर तू स्वर्ग को प्रस्थान करेगा, जीते-जी पृथ्वी को भोगेगा। इसलिए युद्ध के लिए दृढ़ निश्चयवाला होकर खड़ा हो।'

संसार में ऐसे लोग बहुत कम होंगे जो भोजन के समय कलह करते हों ख़ासकर उससे जिसके कारण चूल्हा जलता है। पर लाला नत्थीमल को भोजन के समय भी चैन नहीं था। उनके परिवार का नियम था कि दुपहर में सब बारी-बारी से रसोई में पट्टे पर बैठकर खाना खाते। माँ चौके में चूल्हे की आग पर बड़ी-बड़ी करारी रोटी सेकती और थाली में डालती जाती। पहली-दूसरी रोटी तक तो भोजन का कार्यक्रम शान्तिपूर्वक चलता, तीसरी रोटी से पिता मीनमेख निकालनी शुरू कर देते। रोटी देखकर कहते, "जे ठंडी आँच की दिखै।" माँ चूल्हे में आग तेज़ कर देतीं। अगली रोटी बढिया फूलती। वे उनकी थाली में रोटी रखतीं कि वे झल्ला पड़ते, "देखा, हाथ पे डारी है, मेरौ हाथ भुरस गयौ।"

माँ कहती, "कहाँ भुरसौ है, छुऔ भर है।"

बुरा-सा मुँह बनाकर वे रोटी का कौर मुँह में डालते, "तेज आँच की है।"

किसी दिन यह सब न घटित होता फिर भी उनका भोजन बिगड़ जाता। रोटी का पहला कौर मुँह में डालते ही वे कहते, "ऐसौ लगे इस बार चून में मूसे की लेंड़ पिस गयी है।"

माँ उत्तेजित हो जातीं, "कनक का एक-एक दाना मैंने, भग्गो ने मोती की तरह बीना था, लेंड़ कहाँ से आ गयी।"

पिता कहते, "सैंकड़ों बोरे अनाज पड़ा है, मूस और लेंड़ की कौन कमी है।"

माँ हाथ जोड़ देतीं, "अच्छा-अच्छा, औरन का खाना खराब मति करो। जे कहो तुम्हें भूख नायँ।"

पिता मान जाते, "मार सुबह से खट्टी डकार आ रही हैं। ऐसौ कर, नीबू के ऊपर नून-काली मिर्च खदका के मोय दे दे।" रात की ब्यालू संझा को ही बनाकर चौके में रख दी जाती। दुकान बढ़ाने तक पिता इतने थक जाते कि सीधे खड़े भी न हो पाते। बैठे-बैठे घुटने अकड़ जाते।

बाज़ार में उनकी साख अच्छी थी, कड़वी जिह्व और कसैले स्वभाव के बावजूद। मंडी के आढ़तियों में उन्होंने 'कैंड़े की बात' कहने की ख्याति अर्जित की थी। उनके रुक्के पर विक्टोरिया के सिक्के जितना मंडी में ऐतबार था। दिये हुए कौल से वे कभी न हटते। इन्हीं वजहों से उन्हें गल्ला व्यापार समिति का सदस्य चुना गया था। अग्रवाल पाठशाला की प्रबन्ध-समिति में वे पाँच साल शामिल रहे। वे जानते थे कि परिवार के नेतृत्व में वे कुछ ज्युादा कठोर हो जाते हैं पर उस दौर में सभी घरों के बच्चों के लिए ऐसा ही माहौल था। बच्चों को चूमना, पुचकारना, बेटा बेटा कहकर चिपटाना बेशर्मी समझा जाता। मान्यता यह थी कि लाड़-प्यार से बच्चे बिगड़ जाते हैं। सभी अपने बच्चों से, विशेषकर लडक़ों से, सख्ती से पेश आते और कभी अनुशासन की वल्गा ढीली न होने देते।

इसी अनुशासन के तहत उन्होंने तब कार्रवाई की जब उनकी पत्नी ने उस दिन सगर्व घोषणा की, "अब तो मेरा भी कमाऊ पूत हो गया है। उसे एक नहीं दो-दो नौकरी मिल गयी हैं।"

पिता ने कहा, "उसे का ठेठर में नौकरी मिल गयी है या सर्कस में। बड़ी आयी कमाऊ पूत की माँ।"

कवि ने माँ को वहाँ से हटाने की कोशिश की, "माँ तुम क्यों उलझती हो इनसे।"

बाद में पिता को पता चला कि स्कूल के टीचर आलोक निगम ने कवि को आश्वासन दिया है कि अपनी दो एक ट्यूशन उसे सौंप देंगे।

पिता को मन-ही-मन अच्छा लगा। उन्हें यह पसन्द नहीं था कि कवि दो घंटे कॉलेज जाकर बाकी बाईस घंटे घूमने-फिरने और कविताई में बिता दे।

अब वे असली बात पर आये, "दो ट्यूशनों से क्या मिलेगा?"

मन-ही-मन फूलते हुए माँ बोली, "तीस-चालीस से कम का होंगे।"

"तेरी फीस जाएगी नौ रुपये, बाकी के इक्कीस का करेगौ। अपनी माँ को दे देना, तेरी खुराकी जमा कर लेगी।"

कविमोहन का चेहरा अपमान से तमतमा गया, "अपने ही घर में मुझे खुराकी देनी होगी। आपने बच्चों से भी तिजारत शुरू कर दी।"

पिता उसकी मन:स्थिति से बेख़बर, खाने की पूर्व तैयारी के अन्तर्गत शौच के लिए चल दिये।

माँ ने कहा, "चल कवि खाना खा ले।"

कवि झुँझलाया, "मेरा मन तो ज़हर खाने का हो रहा है, तुम्हें खाने की पड़ी है जीजी।"

माँ पास आकर उसे पुचकारने लगी, "तोय मेरी सौंह जो ऐसे बोल बोले। इनकी आदत तो शुरू की ऐसी है। जब तू छोटा था, तीन साल का, तब तुझे गर्दन तोड़ बुखार हुआ था। सारी-सारी रात तेरा हेंकरा चलता था और एक ये थे कि डागडर बुलाकर नहीं देते। ये कहते, मर्ज और कर्ज समय काटकर पूरे होवैं। तेरी बहनें बड़ी तड़पती थीं तुझे देख कै।"

कवि को माँ पर भी क्रोध आया। यह उनका ख़ास अन्दाज़ था। दिलासा देने के साथ-साथ वे आग में पलीता भी लगाती जातीं। पिता की पीठ पीछे वे उनकी ज्यासदतियाँ बताती रहतीं, मुँह ही मुँह में बड़बड़ातीं लेकिन बच्चों के भडक़ाने पर भी कभी सामने टक्कर न लेतीं। शायद वे उनके क्रोधी स्वभाव को बेहतर जानती थीं। कवि जब उनमें ज्यानदा बगावत के बीज डालता वे कहतीं, "जाई गाँव में रहना, हाँजी हाँजी कहना।"

8

बारह बजे तक घर में सोता पड़ गया। असन्तोष और आक्रोश से खलबलाते कविमोहन की आँखों से नींद कोसों दूर थी। इच्छा तो उसकी थी, पिता को रौंदता हुआ उनकी आँखों के सामने घर छोडक़र भाग जाए पर वह माँ को दुख नहीं देना चाहता था। उसके सामने यह भी स्पष्ट नहीं हो रहा था कि वह कुछ दिनों के लिए घर छोड़े या हमेशा के लिए। उसका एक मन हो रहा था कि वह घर त्याग दे पर माँ से किसी तरह मिलता रहे। उससे तीन साल छोटी भग्गो को भी सातवीं के बाद, फीस की किचकिच के कारण घर पर बैठना पड़ा था। कवि उसे अपनी पुरानी किताबों से अभ्यास कराता रहता पर उसका मन अब पढ़ाई से हट रहा था। पिता हर बच्चे की जिजीविषा ख़त्म कर उसका जड़ संस्करण तैयार कर रहे थे।

अपनी बची-खुची किताब-कॉपी और कविता के कागज़ बटोरकर कवि धीरे-से घर से निकल गया। बाहर की हवा का सिर-माथे पर स्पर्श भला लगा। होली दरवाज़े पर दो-एक पानवाले थके हाथों से दुकान बढ़ा रहे थे। दिन की चहल-पहल से महरूम बाज़ार बहुत चौड़ा और सुनसान लग रहा था जैसे क़र्फ्यू लगा हुआ हो। एक-दो रिक्शे आखिरी शो की सवारियाँ लिये हुए गुज़र गये।

गुस्से में कवि घर से तो निकल आया, सवाल यह था कि आधी रात को जाए कहाँ। यों तो उसके बहुत दोस्त थे पर इस समय किसी का दरवाज़ा खटखटाने का मतलब नहीं था। चलते-चलते वह स्टेशन पहुँच गया। यहाँ लोग अभी भी जगे हुए थे। लोग स्टेशन से आ भी रहे थे और जा भी रहे थे। कवि को बड़ी राहत महसूस हुई। प्लेटफॉर्म नम्बर एक की बेंच पर बैठ वहाँ की पीली रोशनी में उसने एक बार अपनी कॉपियाँ उलट-पुलटकर देखीं, फिर उन्हीं की टेक लगाकर लेट गया। उसे लगा घर उसके संघर्ष बढ़ा रहा है और उसकी रचनात्मक ऊर्जा ख़त्म कर रहा है। उसके दोस्त और परिचित उसकी अपेक्षा कम प्रतिभावान थे पर उससे ज्यानदा अच्छा जीवन जी रहे थे। मित्र-घरों में परिवार के लोग साथ बैठकर प्रेम से बातें करते, रेडियो सुनते, इकट्ठे भोजन करते और कभी-कभी घूमने जाते। उसके अपने घर में जैसे ही वे इकट्ठे बैठते किसी-न-किसी प्रसंग पर बहस छिड़ जाती और पिता के व्यक्तित्व का विस्फोटक तत्त्व बाहर निकलकर फट पड़ता। इसमें सन्देह नहीं कि वे अटक-लड़ाई में निष्णात थे। पत्नी और बच्चों की इच्छा का सम्मान करना वे एकदम ग़ैर-ज़रूरी समझते।

तभी तो उन्होंने कवि से बिना सलाह किये उसका रिश्ता आगरे के एक परिवार में कर डाला। इस कार्यवाही की ख़बर कवि को देने की उन्होंने कोई ज़रूरत नहीं समझी। यह बुज़ुर्गों का मामला था। सगुन में आगरेवालों ने ग्यारह सौ रुपये, ग्यारह सेर लड्डू, दो सेर बादाम, चार आने भर की अँगूठी, कपड़े और एक कनस्तर घी दिया। कवि के पिता इस श्रीगणेश से काफ़ी सन्तुष्ट हुए। उन्होंने सारी बात पहले ही साफ़ कर ली थी, "लडक़ा अभी पढ़ रहा है, पढ़ाई पूरी कर लेगा तभी ब्याह होगा। तब तक उसकी पढ़ाई का खर्च, गर्मी-सर्दी के कपड़े, बिस्तर सबका इन्तज़ाम लडक़ीवाले करेंगे।" आगरावालों को इस क़ीमत पर कोई एतराज़ न था।

जिस समय समधियों में शर्तों का आदान-प्रदान हो रहा था, सम्भावित दूल्हा शिवताल पर घूमता हुआ अपनी आगामी कविता की फडक़ती हुई पहली पंक्ति सोच रहा था और सम्भावित दुल्हन अपने छोटे भाई की फटी निकर में थिगली लगा रही थी। उसके लिए कवि की माँ ने मेंहदी, आलता, पायल, काजल, टिकुली, स्नो, पाउडर के अलावा एक साड़ी, जम्पर, सोने की ज़ंजीर और लड्डू भेजे थे। उनकी हार्दिक इच्छा थी कि घर में बहू आकर कामकाज सँभाले। उनका शरीर दिन-ब-दिन थक रहा था और घर की जिम्मेदारियाँ निरन्तर ज़ालिम होती जा रही थीं। दोनों बेटियाँ मदद करतीं लेकिन उनके साथ सिर खपाई बहुत करनी पड़ती। बहू को लेकर उनके बहुत से अरमान थे, कि वह रोज़ उनके पैर दबाएगी, कंघी करेगी, चौका-चूल्हा सँभालेगी और उन्हें पूर्ण विश्राम देगी।

कवि को जब माँ से पता चला कि पिता उसका रिश्ता तय कर आये हैं वह एकदम बरस पड़ा, "दादाजी का दिमाग फिर गया लगता है। मैं अभी पढ़ रहा हूँ, मर तो नहीं रहा हूँ। इनकी गाड़ी छूटी जा रही है। मेरी शादी और मुझी से कोई सलाह-ख़बर नहीं की जा रही। मुझे नहीं करना ऐसा कोई सम्बन्ध।"

उसके इस विद्रोह पर कोई विशेष ध्यान नहीं दिया गया तथा इसे लज्जा-जनित प्रतिक्रिया का ही हिस्सा मान लिया गया।

आवेश, आक्रोश और असन्तोष कवि के अन्दर प्रतिपल खलबलाने लगे। वह साहित्य का विद्यार्थी था। कॉलेज लायब्रेरी में घंटों बैठ उसने न सिर्फ प्रेमचन्द और निराला बल्कि गोर्की और तॉलस्तॉय भी पढ़ा था। साहित्य के प्रोफेसर उसे पसन्द करते थे व अक्सर अपने नाम से इशू करवाकर उसे पुस्तकें पढने़ को देते। अपने जीवन की जो तस्वीर उसने कल्पना में बना रखी थी उसमें न पिता के व्यापारी विचारों की गुंजाइश थी न माँ की भिनभिन निरीहता की। वह एक शिल्पी की तरह अपनी जिन्दगी स्वयं बनाना चाहता था। वह अपने प्रोफेसरों को सुबह दस बजे पुस्तकों व छात्रों से घिरे देखता और सोचता उसे यही बनना है, बस यही असल, सार्थक और सही रास्ता है बाकी सब भटकाव है। घर और कॉलेज के माहौल में कोई तालमेल न था। उसके पिता सुबह उठते ही बोरों से घिरी दुकान में जम जाते। उसकी माँ मुँहअँधेरे जागकर, कूलते- कराहते घर का चौका-बासन करती।

शुरू में उसके अँग्रेज़ी के अँग्रेज़ प्रोफेसर ई. एम. हार्ट उससे कटे-कटे रहते थे। इसकी वजह थी कि कविमोहन न तो रूप-रंग, न अपने कपड़ों से किसी को प्रभावित कर पाता था। अक्सर वह कुरता-पाजामा पहनकर कॉलेज जाता, कभी-कभी धोती-कुर्ता भी पहनता। जबकि अँग्रेज़ी पढने़वाले अन्य शौक़ीन लडक़े बाक़ायदा पैंट-कमीज़ पहना करते। लेकिन जब प्रोफेसर हार्ट ने कवि का ट्यूटोरियल वर्क देखा वे उसकी समझ के क़ायल हो गये। उसका सोचने का ढंग नितान्त मौलिक था। किसी भी विषय पर वह इतना अधिक पढ़ डालता कि जब वह उस पर लिखने बैठता तो उसका लेख छात्र के नहीं शिक्षक के स्तर का होता। यही वजह थी कि वह बी.ए. में बड़ी आसानी से सर्वाधिक अंकों से उत्तीर्ण हुआ और वि.वि. की योग्यता सूची में द्वितीय स्थान पर रहा।

अब उसे आगे पढने़ की लगन थी। बस एक ही बाधा थी। पिता ने घर में फ़रमान जारी कर दिया था कि गर्मी में शादी होगी और ज़रूर होगी।

कवि ने कहा उसे आगरा जाकर एम.ए. करना है।

पिता ने डपटा, "मैंने कौल दे रखा है, उसका क्या होगा? पहले ब्याह कराओ उसके बाद चाहे जहन्नुम में जाओ।"

कवि ने दलील दी, "जिस लडक़ी को मैंने न देखा न भाला, उससे मैं कैसे बँध सकता हूँ!"

"मैंने तो देखा है, तेरा देखना क्या चीज़ होती है! सुन लो अपने सपूत की बातें।"

माँ फौरन सारंगी की तरह पिता की संगत करने लगीं, "अरे कबी, च्यों मट्टीपलीद करवा रहा है मेरी और अपनी। हामी भर दे। फिर जहाँ तेरी मर्जी चला जाइयो। लडक़ी का क्या है, दो रोटी खाय के मेरे पास पड़ी रहेगी।"

कवि स्तम्भित रह गया। शादी को लेकर माता-पिता के विचार ऐसे भी हो सकते हैं, उसने कभी नहीं सोचा था। कहाँ वह सोच रहा था कि जीवन में क़दम-से-क़दम मिलाकर चलनेवाली कोई कॉमरेड ढूँढ़ेगा जो उसके सुख-दुख की बराबर की हिस्सेदार होगी, कहाँ उसका परिवार हाथ में मोटे रस्से का फन्दा लिये उसकी गर्दन के सामने खड़ा था।

उसे असहमत देख पिता का पारा लगातार चढ़ रहा था।

"ससुरे, लडक़ीवाले अब तक तेरे नाम पर कितनी लागत लगा चुके हैं, पता भी है तुझे, बस मुँह उठाकर नाहीं कर दी।"

"मैं क्या जानूँ। मैंने तो एक पाई न माँगी न ली। आप मेरे नाम से उन्हें लूटते रहे हैं तो मैं क्या करूँ।"

पिता तैश में उसे मारने लपके। माँ बीच में आ गयीं। उन्हीं को दो हाथ पड़ गये। कवि ने हिक़ारत से उनकी तरफ़ देखा और घर से बाहर चला गया।

उस दिन कविमोहन घंटों शिवताल पर भटकता रहा। उसका एक मन हो रहा था, हमेशा के लिए यह घर छोडक़र भाग जाए। उसकी पूरी चेतना ऐसे रिश्ते से विद्रोह कर रही थी जिसमें अब तक उसकी कोई हिस्सेदारी नहीं थी। इस संकट के सामने आगे की पढ़ाई भी उसे निरर्थक लगने लगी। शिवताल पर, अँधेरा झुक आया था। चारों तरफ़ मेंढकों के टर्राने का शोर, पटवीजने और झींगुर की झिनझिन थी। ताल के आसपास बालू एकदम ठंडी और नम थी। कवि ने नम बालू में अपने पैर धँसाते हुए सोचा, इससे तो अच्छा है बाबाजी बन जाऊँ। बदन पर भभूत लपेट लूँ, हाथ में चिमटा ले लूँ, और पहुँच जाऊँ इन्हीं के दरवाज़े और बोलूँ, 'अलख निरंजन'। फिर देखूँ किसकी शादी करते हैं और किसे दुकान पर बैठाते हैं। साधु-संन्यासी को गृहस्थी से क्या काम। बैरागी जीवन। न आज की चिन्ता न कल की आस। तीन ईंट जोड़ ली, चूल्हा जला। दाल-चावल, नमक हाँडी में छोड़ा, खाना तैयार। क्या रखा है दुनिया में।

ताल के किनारे पत्थर पर सिर रखकर कवि कब सो गया, उसे पता नहीं चला। सवेरे उसकी आँख खुली जब सिर के ऊपर गूलर के पेड़ पर चिडियों के झुंड-के-झुंड चह-चहकर शोर मचाने लगे। पहली बार सही अर्थ में उसने पौ फटती देखी। यह भी देखा कि ताल का पानी कैसे रंग बदलता है। कुछ देर पहले का मटमैला जल सुबह होने पर नीला हो आया।

सबसे पहले माँ का ख़याल आया। जीजी-माँ की असहायता और अनभिज्ञता दोनों उसे तकलीफ़ देती थी पर उसे हर वक्त यह ख़याल भी रहता कि वह अपने किसी कृत्य से उनके दुखों में वृद्धि न करे। लडक़पन में उसने बरसों माँ को चक्की चलाते, चरखा चलाते देखा था। बल्कि सवेरे उसकी आँख चक्की की घूँ-घूँ से ही उचटती। कवि को लगता यह घर एक बहुत भारी पत्थर का पाट है जिसे माँ युगों-युगों से इसी तरह घुमा रही है। कवि को लगता माँ चक्की नहीं पीस रही उलटे चक्की माँ को पीस रही है, माँ पिस रही है। कभी-कभी वह साथ लगकर दो-चार हाथ चला देता तो माँ की आँखें चमक उठतीं, "अरे कैसी हल्की हो गयी ये, अब मैं चला लूँगी, तू छोड़ दे, पढऩेवाले हाथ हैं तेरे, दुख जाएँगे।"

जब तक बेटों के ब्याह नहीं होते वे माँ को संसार की सबसे आदर्श स्त्री मानते हैं। कवि की भी मानसिकता यही थी। उसे लगता पिता अत्याचारी हैं, माँ निरीह। पिता ज़ुल्म करते हैं माँ सहती है। माँ का पक्ष लेने पर वह कितनी ही बार पिता से पिटा। इसलिए जब माँ ने उससे गिड़गिड़ाकर कहा, "रे कबी, तू ब्याह को हाम्मी भर दे रे नई यह जुल्मी मुझे खोद के गाड़ देगा।" कविमोहन के सामने हाँ करने के सिवा कोई चारा नहीं बचा।

वह समय गाँधीजी के आदर्शों का भी समय था। मथुरा के नौजवानों में गाँधीवादी विचारों का गहरा आदर था। देश की आज़ादी के लिए मर-मिटने का एक सीधा-सादा नक्शा था जो हरेक की समझ में आता-खादी पहनो, ब्रह्मचर्य से रहो, नमक बनाओ, सरकारी नौकरियों का बहिष्कार करो। कवि के अन्दर ये सभी आदर्श हिलारें लेते। उसने एम.ए. अँग्रेज़ी में प्रवेश ले रखा था, यह बात उसके अन्दर एक अपराध-बोध पैदा करती। जिनसे लडऩा है उन्हीं की भाषा और साहित्य पढऩा गद्दारी थी पर उसे इसका भी एहसास था कि अँग्रेज़ी के रास्ते नौकरी ढूँढऩा आसान होता

है। हिन्दीवालों को उसने अपने क़स्बे में चप्पल चटकाते, नाकाम घूमते, वर्षों देखा था। उसे लगता पुश्तैनी व्यापार के नरक से बचने के लिए अँग्रेज़ी की वैतरणी पार करना ज़रूरी है। फिर अँग्रेज़ी साहित्य का विशाल फलक उसे दृष्टि का विस्तार प्रदान कर रहा था। कभी वह इरादा करता कि शेक्सपियर के 'मर्चेंट ऑफ़ वेनिस' की तर्ज पर वह एक रचना लिखे जिसमें शॉयलॉक की तरह पिता खलनायक हों। उसे लगता उसके पिता मुद्रा-प्रेम में शॉयलॉक को पछाड़ देंगे। कभी वह मन-ही-मन रोमियो और जूलियट जैसी प्रेम-कहानी रचता पर आश्चर्य यह कि जूलियट की जगह उसके ख़यालों में वह अनजानी अनदेखी लडक़ी ले लेती जिसके साथ उसका रिश्ता तय हो चुका था पर जिसे उसने देखा तक नहीं था।

अब तक माँ से आगरेवालों का पता उसे चल चुका था। एक दिन वह गॉल्सवर्दी की 'जस्टिस' खरीदने के बहाने बाज़ार से गुज़रा तो उस गली में मुड़ गया। गली वैसी ही गन्दी, सँकरी और घिचपिच थी जैसी आगरे की कोई भी गली। पर धर्मशाला तक पहुँचते-पहुँचते गन्दगी के एहसास की जगह आवेग और आकुलता उसके मनप्राण पर छा गयी। मन में बहुत पहले पढ़ी कुछ पंक्तियाँ गूँज उठीं-

"अब तक क्यों न समझ पाया था

थी जिसकी जग में छवि छाया

मुझे आज भावी पत्नी का मधुर ध्यान क्षण भर को आया।"

धर्मशाला से सटे पीले रंग के मकान की छत पर उस वक्त कई पतंगें उड़ रही थीं। कवि कल्पना करता रहा इन लाल-पीली-हरी पतंगों में कौन-सा रंग उसे प्रिय होगा। तभी उसे छत की मुँडेर से लगा निहायत सुन्दर एक स्त्री-मुख दिखा और वह जड़वत् उस दिशा में टकटकी लगाकर खड़ा रहा। उस मुख की सुन्दरता, सलज्जता और सौम्यता अप्रतिम थी। बड़ी-बड़ी आँखें उसकी तरफ़ निहार रही थीं। यकायक कवि को ध्यान आया कि उसके कुरते पर स्याही गिरी हुई है। पुस्तक ख़रीदने के लिए उसे कुरता बदलना ज़रूरी नहीं लगा था। प्रिया-वीथी में आने का तब कोई इरादा भी नहीं था। वह वहाँ से मुड़ लिया।

वापस हॉस्टल में आकर उसे शंकाओं ने आ घेरा। पता नहीं वह लडक़ी उसकी भावी पत्नी थी या उसकी छोटी बहन? कहीं वह घर पहचानने में भूल तो नहीं कर गया। कवि को लगा इतना सुन्दर मुख देखकर उसने अच्छा नहीं किया, अगर यह उसकी प्रिया नहीं तो भी यह मुख उसे शेष जीवन तड़पाएगा। उसके मन में सिनेमा की तरह यह दृश्य बार-बार दोहराया जाता और वह अपनी उत्तेजना से लड़ता। कहाँ तो उसने सोचा था कि विवाह की रात वह अपनी पत्नी को गाँधीजी की आत्मकथा भेंट में देगा और कहेगा, 'देखो जब तक अपना देश स्वाधीन नहीं होता, हम दोनों भाई-बहन की तरह रहेंगे।' कहाँ कल्पना और कामना की काँपती उँगलियों से वह बार-बार उस मुख का स्पर्श कर रहा था।

स्मृति के चलचित्र कवि की आँखों में रात भर चलते रहे। शादी के बाद उसे इन्दु को अपने जीवन का चन्द्रबिन्दु बना लेना बहुत कठिन नहीं लगा क्योंकि घर की रणभूमि में अगर कहीं युद्धविराम और प्रेम था तो बस पत्नी के पास। यह वही लडक़ी थी जिसका चेहरा उसने उस दिन अकस्मात् देख लिया था। ताज्जुब यह कि घर की समस्त सामान्यता के बीच इन्दु का सौन्दर्य दिन-ब-दिन निखर रहा था।

विवाह के इन पाँच सालों में जीवन में न जाने कितना कुछ घटित हो गया। सन्तोष था तो सिर्फ दो बातों का। कविमोहन ने पढ़ाई पर अपना पूरा क़ाबू रखा। हमेशा प्रथम श्रेणी और विशेष योग्यता सूची में स्थान पाया। इसका महत्त्व इसलिए और भी अधिक था क्योंकि उसके पास कभी पर्याप्त पुस्तकें खरीदने लायक़ साधन भी नहीं होते थे। कई बार वह अपने गुरुओं से पुस्तकें लेकर, अध्याय के अध्याय अपने सुलेख में उतार डालता। इससे उसका सुलेख बेहद सधा हुआ हो गया और स्मरण-शक्ति बढ़ती गयी। एक बार पढ़ी सामग्री उसे कंठस्थ हो जाती। यही हाल कविताओं और कहानियों का था। इसलिए जब वह अपनी रचना लिखता था उसे विश्वास नहीं होता था कि वह उसकी मौलिक, अछूती रचना है अथवा स्मृति और प्रभाव के मेल से बनी परछाईं। यही वजह थी कि लिखने से ज्यासदा उसका मन पढऩे में रम जाता। पढ़ते समय उसे देश, काल, समय, समस्या सब भूल जातीं। इसीलिए किताबों को वह अपना शरणस्थल मानता। हर किताब की अपनी अद्भुत छटा और सुरभि थी जिसका नशा बढ़ता ही जाता।

9

पीछे मुडक़र देखने पर कविमोहन को ग्लानि होती कि शादी के बाद इन्दु को कैसे हालात में अपना वक्त काटना पड़ा। इन्दु का बचपन एबटाबाद में बीता था जहाँ उसने सीधे पेड़ से तोडक़र सेब, बादाम और आड़ू खाये थे। उन्हीं सेब-आड़ू की रंगत उसके गालों पर थी। वह तो एबटाबाद में बनिया परिवार का वर मिलना दुर्लभ था इसलिए उसके माता-पिता सपरिवार आगरा आकर बस गये। उसके पिता मिलिटरी में ठेके पर किराने का सामान सप्लाई करते थे। मिलिटरीवालों की थोड़ी अकड़ उनके स्वभाव में भी आ गयी थी। जब कवि के पिता ने शादी की बात पक्की करते हुए उनसे पूछा, "कितनी बारात ले आयें हम?" उन्होंने ऐंठकर जवाब दिया, "आप हज़ार ले आओ हमें भारी नायँ पड़ेगी।" लाला नत्थीमल इस बात से कुछ चिढ़ गये। उन्होंने शहर से अपने रिश्तेदार, मित्र और परिचित तो समेटे ही, साथ ही हर जाननेवाले को न्योता दिया। लिहाजा उस दिन बारात में प्रतिष्ठित लोगों के साथ-साथ तमोली, ताँगेवाले और मिस्त्री भी शामिल हुए। इतनी विशाल बारात देखकर समधी रामचन्द्र अग्रवाल के हाथ-पैर फूल गये लेकिन उन्होंने अपनी पत बचा ली। बारातियों के लिए बनाया गया मेवे-मलाई का दूध कम पडऩे लगा तो वे हलवाई के यहाँ से उतरवाकर खौलता कढ़ाह घर ले आये। उन्होंने कविमोहन को इक्कीस जोड़ी कपड़े दिये। इन्दु को इतनी साडिय़ाँ मिलीं कि वह गिनती भी नहीं कर पायी। सभी रिश्तेदारों के लिए यथायोग्य उपहार दिये गये। अगले दिन जब लॉरी और जीप पर विदा के वक्त शादी का सामान साथ चला तो मथुरावालों ने यही कहा, "लाला नत्थीमल यहाँ भी तगड़ा व्यापार कर चले।"

परिवार की स्त्रियों की तबियत तिनतिनायी हुई थी। उनके लिए एक-एक साड़ी जम्पर के अलावा कोई उपहार नहीं था। रिश्ते की चाची शरबती ने बहू के पाँव पखारे। इन्दु को रस्म-रिवाज़ और रिश्ते की जानकारी नहीं थी। पूछती भी किससे। उसने सोचा परिवार की कोई पुरानी सेविका है। उसने पर्स से निकालकर दो रुपये का नोट परात में डाल दिया। शरबती चाची का मुँह गुस्से से कुप्पा फूल गया।

अन्दर के कमरे में दरी पर साफ़ चादर बिछी हुई थी। वहीं इन्दु को बैठाया गया। आस-पड़ोस की स्त्रियाँ आतीं, बहू का मुँह देखकर आशीष देतीं और सगुन देकर, मुँह मीठा कर चली जातीं। तीनों ननदें चाव से कभी भाभी की सोने की चूडिय़ाँ छनकातीं, कभी गले की माला परखतीं। उन्हीं से इन्दु को पता चला कि गृह-प्रवेश के समय उससे क्या भूल हुई। उसने लीला के हाथ सौ रुपये का नोट शरबती चाची के पास भिजवाया लेकिन चाची ने उसमें एक रुपया जोडक़र रकम वापस इन्दु को भिजवा दी।

काफ़ी देर बैठने के बाद इन्दु ने कुन्ती के कान में फुसफुसाकर पूछा, "बाथरूम जाना है, हमें रास्ता बता दो।" कुन्ती असमंजस में पड़ गयी। भाभी को कौन जगह बताये। तीनों मंजिलों पर निवृत्त होने के लिए कोई जगह नहीं थी। सीढ़ियों के बीच में छोटी-सी जाजरू थी जहाँ रोशनी का कोई इन्तज़ाम नहीं था। हर कमरे में कोई-न-कोई रिश्तेदार टिका हुआ था इसलिए कमरे की मोरी का इस्तेमाल नहीं हो सकता था।

कुन्ती ने जाकर माँ से कहा, "माँ भाभी बाथरूम जाएँगी, कहाँ ले जाएँ।"

जीजी काम के बोझ से पहले ही भन्नायी हुई थी। नये मेहमान की मौलिक फ़रमाइश से वह एकदम भडक़ गयी, "उसको कहो हमारे सिर पर मूत ले। हम कहा बताएँ कहाँ जाए।"

कुन्ती ने कहा, "जीजी यह कोई रोकनेवाली चीज तो है नायँ। कहाँ फरागत कराएँ?"

'चटाक' जीजी ने कुन्ती के गाल पर चाँटा मारा। आसपास खड़ी औरतें और लड़कियाँ सन्न रह गयीं।

विद्यावती ने आवाज़ चढ़ाते हुए कहा, "कह दो उस मेमसाब से यहाँ कोई बाथरूम-फाथरूम नायँ। इतना ही चाव है बाथरूम का तो अपने बाप से कहो आकर बनवा दे। इत्ते बरस हमें इस घर में आये भये, हमने तो कभी देखा नायँ बाथरूम क्या होवे है।"

उस रोज़ इन्दु की प्राकृतिक ज़रूरत कैसे पूरी की गयी इसका पता कवि को नहीं चल सका। लेकिन अगली सुबह घर का आलम और भी तनावपूर्ण था। पहली रात इन्दु को देवी-देवताओं के बीच सुलाया गया था। वह सुबह उठकर नहाना चाहती थी। लीला ने उसे बताया कैसे वे सब समूची धोती बदन पर लपेटे-लपेटे आँगन के नल पर नहा लेती हैं और फिर झुके-झुके जल्दी से कमरे में आकर कपड़े बदल लेती हैं। या जमनाजी चली जाती हैं।

इन्दु ने कहा, "मैं तो ऐसे नहाऊँगी नहीं।"

कुन्ती बोली, "भाभी आप कमरे की मोरी पर नहा लो, मैं दरवाज़े पर पहरा दूँगी।"

इन्दु ने मना कर दिया। खुले में बैठकर नहाना उसके बस की बात नहीं थी। फिर उसे अपने कपड़े भी धोने थे।

आखिरकार दो खाटों के बिस्तर हटाकर उन्हें सीधी खड़ा किया गया। उन पर पुरानी चादरें डालीं। इस तरह कमरे की मोरी पर अस्थायी बाथरूम की संरचना हुई और दो बाल्टी पानी रखकर नयी बहू नहायी।

जीजी बुड़बुड़ाई, "अच्छी नौटंकी है यह। अब रोज-रोज इत्ता सरंजाम हो तो यह महारानी नहायँ।"

गली-मुहल्ले में ख़बर फैल गयी लाला नत्थीमल की बहू तो बड़ी तेज़ है। आगरे के अग्गरवाल ऐसे ही नकचढ़े होयँ। नाक पर मक्खी नहीं बैठने देवैं।

कवि मुँह छुपाता अख़बार पढ़ता रहा। उसे लग रहा था उसकी पत्नी ने घर के शान्त वातावरण में अपनी चोचलेबाज़ी से खलबली मचा दी है। उसने सोचा कि उससे मिलने पर वह उसे घर की परिपाटी समझा देगा। पर घर में बहनों समेत इतने सगे-सम्बन्धी टिके हुए थे कि उनकी सुहागरात आयी ही नहीं, अलबत्ता कविमोहन की छुट्टियाँ ख़त्म हो गयीं। शादी से लौटे हुए बाराती की तरह कोई आगरे में परोसे गये व्यंजनों की आलोचना करता

तो कोई वहाँ से मिले कपड़ों के नुक्स गिनाता। तीनों बहनों ने भी अपनी धोतियाँ इन्दु के आगे पटक दीं कि ये अच्छी नहीं हैं, अपने ट्रंक से दूसरी दो। इन्दु ने वैसा ही किया। जीजी ने अपनी साड़ी भी बदलवायी। इन्दु आधे दिन जीजी के साथ घर के कामों में लगी रहती। बस एक बात पर उसने जिद पकड़ ली कि वह खुले में नहीं नहाएगी।

अगली बार जब कवि आगरे से घर आया तो इन्दु ने कहा, "या तो मेरा नहाने का इन्तज़ाम करके जाओ नहीं तो मैं यहाँ नहीं रहूँगी।"

पहली बार लाला नत्थीमल ने हाँ में हाँ मिलाई, "ठीक ही तो कह रही है बहू, खुले में कैसे नहा ले।"

अन्दर के कमरे के कोने में टीन का टपरा लगवाकर नहाने लायक छोटी-सी जगह बनायी गयी। उसमें अलग से बिजली का इन्तज़ाम तो नहीं हो सका पर इन्दु सन्तुष्ट हो गयी।

शुरू में जीजी उसी अनुपात में नाराज़ रहीं। सबसे ज्यादा उसे अपने पति पर क्रोध आया। उनकी आधी उमर इस घर में बीत गयी। सरदी, गरमी, चौमासा, वे जमनाजी में या आँगन में नहाती, कपड़े धोती रहीं, लाला नत्थीमल ने एक बार भी गुसलखाना बनवाने की नहीं सोचा। बहू के चाव करने चले हैं ये, विद्यावती ने सोचा और उसके मन में इन्दु के लिए पानीपत का युद्ध छिड़ गया। उसे लगा बहू ने पति और पुत्र पर एक साथ जादू कर दिया है।

घर में भग्गो या बिल्लू गिल्लू कभी शरारत करते तो जीजी उनका कान उमेठकर धमकाती, "चल तुझे बाथरूम में बन्द करूँ। पड़े रहना वहाँ रात भर।"

आस-पड़ोस की स्त्रियाँ कई दिनों तक बाथरूम के दर्शन करने आती रहीं। वे इन्दु को दो बाल्टी पानी वहाँ रखते देख कहतीं, "बहू क्या फ़ायदा इस उठा-पटक का। सुबह चार बजे उठकर नल के नीचे नहा लिया करो। कौन देखता है भोर में।"

जीजी हाथ नचातीं, "नहीं इसे तो दिन चढ़े नहाना है, वह भी बाथरूम में नंगी बैठकर।"

दादाजी दुकान से देर में आते। उनकी ब्यालू लेकर जीजी इन्तज़ार में बैठी रहती। नींद आती तो पट्टे पर बैठी-बैठी चौके की दीवार से सिर टिकाकर ऊँघ जाती। इन्दु भी जागती रहती। एक दिन इन्दु ने आँचल की ओट से ससुर से कह दिया, "दादाजी जीजी बहुत थक जाती हैं। आपकी ब्यालू हम चौके में अँगीठी के ऊपर रख दिया करेंगे।"

वह लाला नत्थीमल जो किसी का कहा नहीं मानते थे, बहू के आगे मेमना बन जाते। उन्होंने कहा, "ठीक है बहू, मैं सिदौसी आ जाया करूँगौ।"

एक दिन जीजी जमनाजी नहाकर आयीं तो उन्हें तेज़ जुकाम हो गया। शाम तक बुख़ार चढ़ गया। इन्दु उन्हें लेकर बैठी रही। कवि आगरे में था। इन्दु ने ससुरजी से कहा, "जीजी तप रही हैं, डॉक्टर बुला दें।"

लाला नत्थीमल ने बंडी पहनते हुए कहा, "कुछ नहीं ठंड लग गयी है। इसे काढ़ा पिला तो चंगी हो जाएगी।"

इन्दु अड़ गयी, "नहीं दादाजी, बुख़ार तेज़ है, काढ़े से नायँ उतरे। आप गली से वैद्यजी को बुला दो।"

वैद्यजी ने आकर नब्ज़ देखी, बुख़ार नापा और दवा देते हुए हिदायत दी कि ठंड से बचकर रहें।

विद्यावती नेमधरम से रोज़ सवेरे मुँहअँधेरे स्नान के बाद ठाकुरजी की पूजा कर अन्न-जल छूतीं। सुबह होते ही उन्होंने जिद पकड़ ली, "मेरी खटिया नल के पास ले चलो, मैं वहीं नहाऊँगी।"

बच्चे, बड़े, सब बोले, "इत्ता बुख़ार चढ़ा है, एक दिन नहीं नहाओगी तो कौन-सा अनर्थ हो जाएगा।"

विद्यावती अड़ गयी, "ठीक है, फिर मेरे मुँह में कोई न दवा डाले, न दाना। मेरा नेम ना बिगाडऩा, हाँ नहीं तो।"

सब परेशान हो गये। जीजी को दवा दें तो कैसे दें।

इन्दु को तरकीब सूझी। उसने जीजी का माथा छुआ और कहा, "जीजी आप नहा भी लें और बिस्तर गीला न होय, तब तो दवा लेंगी न।"

"ऐसा ही हो नहीं सकतौ।" जीजी ने कहा।

"बिल्कुल हो सकता है।" इन्दु बोली। वह एक बड़ी पतीली में गरम पानी ले आयी। उसने अपने ट्रंक से दो छोटे तौलिये निकाले। एक को गीला कर वह जीजी का बदन पोंछती, दूसरे से सुखा देती। इस तरह उसने जीजी की समूची देह स्वच्छ कर दी। जीजी के बाल भी सँवार दिये।

विद्यावती को बड़ा चैन पड़ा। आज तक कभी किसी ने उसकी सेवा नहीं की थी। टाँग से असमर्थ होकर भी वही सबकी खिदमत में दौड़ती रही। आज उसे इन्दु का अभियान सुख-स्नान प्रतीत हुआ।

ठाकुरजी की डोलची उनके बिस्तर पर रख बहू ने कहा, "जीजी आप पूजा कर लीजिए।"

विद्यावती ने हल्के हृदय से पूजा की और पथ्य लिया, फिर दवा।

बेटियों की जान में जान आयी। उन्हें लग रहा था उनकी जिद्दिदन माँ प्राण त्याग देगी पर नेम नहीं त्यागेगी। चार दिन बिस्तर से लगी रहकर विद्यावती स्वस्थ हो गयी। जिस दिन बुख़ार टूटा वह बोली, "आज तो मैं नल के नीचे नहाऊँगी।"

इन्दु ने कहा, "मैंने पानी गरम कर दिया है। अभी आप कमज़ोर हैं। मेरी बात मानिए। आप मेरे कमरे के बाथरूम में नहा लें।"

"ना बाबा मेरा दम घुट जाएगा। मैं बाथरूम नहीं जाऊँगी।" जीजी अड़ गयी।

भग्गो ने कहा, "जीजी एक दिना की बात है कर लो जैसे भाभी कहे। फिर तो मेरे साथ जमनाजी चलना।"

काफी मान-मनौव्वल के बाद जीजी मानी।

इन्दु ने बाथरूम में दो बाल्टी पानी और तौलिया रखा।

जीजी को बाथरूम में बिठाया गया।

बन्द बाथरूम में एक-एक कपड़ा उतारना, पट्टे पर निर्वस्त्र बैठना, मंजन साबुन झाँवा यथास्थान पाना और बिना अगलबगल नज़र गड़ाये, सारा ध्यान अपनी स्वच्छता पर केन्द्रित करना रोमांचकारी था। एक बार जीजी झुककर बदन पर पानी उँडेलती, दूसरी बार उन्हें ध्यान आता वे बाहर खुले में नहीं, बन्द कमरे में नहा रही हैं। जीजी ने झिझकते हुए अपनी निर्वस्त्र देह देखी तो उन्हें लगा वे किसी और को देख रही हैं।

भग्गो ने बाहर से आवाज़ लगायी, "क्यों जीजी अन्दर सो गयीं क्या?"

"अभी आयी," जीजी ने कहा और जल्दी से धोती लपेट बाहर आ गयीं।

जब इन्दु उनकी कंघी चोटी करने लगी उन्होंने सबको सुनाते हुए कहा, "जब से मैं पैदा भई, बस आज कायदे से नहाई हूँ। अरे कपड़े पहने-पहने नहाने का क्या मतलब है। कुछ नहीं। मैं कहूँ पूजाघर और चौके से भी जरूरी चीज है नहानघर। कम-से-कम आदमी एड़ी से चोटी तक सुच्च तो हो जाए।"

तीन महीने बाद जब कविमोहन घर आया उसने आँगन में ईंटों का ढेर देखकर पूछा, "यह क्या है?"

भग्गो ने ताली बजाते हुए कहा, "भैयाजी को पता ही नहीं, क्या कहवें उसे बाथरूम बनने जा रहा है। अब सब घुस-घुसकर नहाएँगे, समझे।"

कवि ने इन्दु की तरफ़ देखकर कहा, "कर दिया न तुमने बखेड़ा खड़ा।"

भग्गो बोली, "अरे भैयाजी इन्होंने कुछ नहीं किया। इसमें सबकी सतामता है।"

इन्दु के आने से घर में हो रहे छोटे-छोटे बदलाव कविमोहन को चकित भी करते और आह्लादित भी। ऐसा लगता जैसे बँधी घुटी हवा में अचानक ताज़ी हवा का संचार हो जाय। लेकिन जल्द ही इन्दु की तबियत ख़राब हो गयी। खाया-पिया सब मुँह के रास्ते निकल जाता। उसकी गुलाबी रंगत पीली पडऩे लगी और गर्भावस्था के लक्षण प्रकट होने लगे। कविमोहन चिन्ताग्रस्त हो गया लेकिन वह मुँह खोलकर माँ से नहीं कह सकता था, "जीजी इन्दु का ध्यान रखो।"

मथुरा के परिवारों में इस प्रकार की चिन्ताएँ बीवी की चाटुकारी समझी जाती थीं। कवि अब तक कभी इन्दु से नहीं कह पाया, "सुनो इन्दु, मेरे घर में तुम्हें बहुत-सी तकलीफ़ें होंगी पर मेरी जान फ़क़त चन्द ही रोज़, हमारे दिन भी बदलेंगे।"

>>आगे>>

शीर्ष पर जाएँ

दुक्खम्-सुक्खम्

ममता कालिया

मुन्नी भूख से रोने लगी। कविमोहन झटके से वर्तमान में लौटा। इन्दु ने दूध की खाली बोतल उठाकर थोड़े-से पानी से खँगाली और ग्लास में रखा दूध भरने लगी।

"ठंडा ही पिला दोगी?" कवि ने पूछा।

"तुम सोये नहीं अभी तक," इन्दु बोली, "गरमी के दिन हैं, नुकसान नहीं करेगा। और फिर दो ज़ीने उतरने की मेरी तो हिम्मत नहीं है।"

सवेरे कवि के चिल्लाने से उसका कमरा तो नीचे कर दिया गया पर माँ ने इन्दु से बातचीत बन्द कर दी। वे घंटों मुँह फुलाये रहीं। कनक और उड़द की बोरियाँ आधी उनके कमरे में और आधी परचून की दुकान में चिनी गयीं। बाबा ने भडक़कर कहा, "पल्लेदारों की मजूरी हम नहीं देबेंगे। तुमने उठवाई, तुम्हीं दो।"

कवि के पास वजीफे और ट्यूशनों के रुपये थे। उसने भुगतान कर दिया।

शाम तक माँ ने परिवर्तन से समझौता कर लिया। उन्हें भी आराम था कि वे कभी भी इन्दु को काम में लगा सकती थीं।

भग्गो ने भइया के बटुए में करारे नोट देखे तो बोली, "भइयाजी, हमें हरे रंग की धोती दिला दो।"

"क्यों तेरे पास क्या धोती नहीं है?"

"है पर हरे रंग की कहाँ है। हरियाली तीज पर सब हरा रंग पहनती हैं।"

कवि को जिज्ञासा हुई क्या इन्दु के पास हरे रंग की धोती है। पर संकोच में वह माँ से मुख़ातिब हुआ, "जीजी तुम्हें भी धोती लेनी है?"

माँ बेटे की बात से निहाल हो गयीं। बोली, "कबी, मोय ले जाके असकुंडा घाट पे द्वारकाधीशजी के दरशन कराय दे और चाट खवाय दे।"

दोपहर में एकान्त पाकर कवि ने पत्नी से कहा, "शाम को तुम भी चलना घूमने।"

"बेबी की टाँग टूटी है, मुन्नी को दस्त आ रहे हैं, मुझे नहीं जाना।"

"फिर मत कहना कि पूछा नहीं। हमारा प्रोग्राम तो तय है।"

"मेरे लिए एक दोना मटर बनवा लाना, मिर्च-मसाला चटक।"

जाना पाँच बजे था पर भग्गो ने साढ़े तीन बजे से सजना शुरू कर दिया। उसने अपना ट्रंक खखोर डाला। उसे कोई धोती पसन्द नहीं आयी। बगल के कमरे में आकर उसने होठ बिसूरे, "भैयाजी दरशनों पर जाने के लिए एक भी नई धोती नायँ। भाभी से कहो न अपनी रेशमी साड़ी दे दें।"

"तू खुद च्यौं नहीं कहती," कवि बीच से हट गया।

इन्दु को ननद पर लाड़ आ गया। भगवती की दिनचर्या तो उसकी अपनी प्रतिदिनता से भी ज्या दा नीरस थी। ऊपर से बात-बात में पिता की झिडक़ी।

इन्दु ने कहा, "वही नीले बक्से में से ले-ले जो तुझे भाये।"

भग्गो ऐसी खुश हो गयी जैसे उसे ख़ज़ाना मिल गया हो। उसने बक्से का पल्ला खोलकर, चमकती आँखों से उसमें रखे नीले, पीले, गुलाबी और लाल कपड़े देखे। फिर उसने कहा, "भाभी गुलाबीवाली ले लूँ!"

इन्दु ने अपने हाथ से उसे साड़ी के साथ गुलाबी जम्पर भी दे दिया, "भग्गो बीबी, मेरे लिए एक पत्ता मटर लेती आना। मसाला चटक हो।"

"ज़रूर भाभी यह भी कोई कहने की बात है।"

बाबा का भी मूड अच्छा था। उन्होंने दादी को चवन्नी दी, "मेरे लिए चवन्नी का दही ले आना। छप्परवाले हलवाई से ही लेना। ऊपर से नेक मलाई डलवा लेना।"

कवि ने कहा, "दादाजी दही मैं ले लूँगा। चवन्नी तुम रखो।"

बाबा ने तर्जनी दिखाई, "हिसाब तो हिसाब है, फिर अभी मेरे हाथ-पैर चलते हैं।"

उस दिन घर पर किसी के भी भाग्य में न चाट लिखी थी न दही। घटिया पर ताँगे के घोड़े की टाँग फिसल गयी। ताँगा डगमग होकर गड़बड़ाया। पीछे की तरफ़ भग्गो और दादी गिरीं सडक़ पर। भग्गो जल्दी से सँभलकर उठी पर उसके दोनों हाथों का सामान ज़मीन पर गिर गया। उसने एक हाथ में मटर का दोना और दूसरे में दही का कुल्हड़ पकड़ रखा था। दादी अपने आप नहीं उठ पायीं। कविमोहन और भग्गो ने तुरन्त उन्हें घपची में ले लिया, "रोओ मत जीजी, कुछ नहीं हुआ। समझो बड़ी खैर हुई।"

दादी अपना दुखता पैर उघाडक़र उसकी ख़ैरियत देख रही थीं। उन्होंने सडक़ पर दही बिछा देखकर कातर स्वर में कहा, "कबी तेरे दादाजी किल्लावेंगे। दही तो गया फैल।"

कवि ने कहा, "दूसरा ताँगा कर पहले तुम्हें घर छोड़ आऊँ। फिर मैं दही ला दूँगा।"

भग्गो के चोट नहीं लगी थी पर ताँगे की चिमटी में फँसकर साड़ी में खोंप लग गयी। वह डर रही थी कि भाभी क्या कहेंगी। उसने कहा, "भैया, भाभी के लिए मटर भी बनवा लेना।"

"चुप कम्बखत," दादी ने झिडक़ा, "तुझे मटर की पड़ी है, यहाँ टाँग का भुरकस निकल गया।"

घर पहुँचकर दादी तख्त' पर बैठकर हाय-हाय करने लगीं। इन्दु अपने कमरे में पति के कुरते की उधड़ी जेब सिल रही थी।

"आ गयीं जीजी।" उसने चाव से कहा।

दादी ने कहा, "हाय मैं मर गयी री। इन्दु मेरा छुनछुना तो गरम करके लगा।"

इन्दु तुरन्त रसोई में गयी। चूल्हे के पीछे से सिलवर का वह बड़ा कटोरा उठाया जो हल्दी के कारण हमेशा पीला रहता था। उसमें एक कलछी घी डालकर चढ़ाया। फिर उसने गरम घी में पिसी हुई हल्दी और सोंठ डाली। जब सब मिलकर छुनछुनाने लगा और हल्दी नारंगी रंग की हो गयी, सँड़सी से कटोरा पकड़ उसने सास के आगे रखा।

दादी ने इशारे से रुई माँगी।

रजाई-गद्दों का पुराना रुअड़ उनके कमरे में ही एक किनारे रखा रहता था।

दादी ने अपनी सूखी, पतली, लौकी जैसी टाँग के पंजे में बँधे रुअड़ के पुलिन्दे पर से पट्टी उतारी और रुअड़ हटाकर देखा। इस पैर का पंजा छोटा-सा था और उसकी छोटी-छोटी जुड़ी उँगलियों के नाखून नहीं थे। दादी ने दोनों हाथ से पैर थामकर कहा, "अरे राम रे, बड़ी टीस हो रही है।"

इन्दु ने ताज़ी गर्म हल्दी सोंठ का छुनछुना लगाकर पट्टी बाँध दी।

तभी कविमोहन दही का कुल्हड़ लिये बाज़ार से लौटा। उसे देखते ही इन्दु के मुँह से निकल गया, "हमारी मटर लाये हो?"

अब तक दादी एकदम अनुकूल और आत्मीय थी, यकायक वे प्रतिकूल और अनात्मीय बनकर भभकीं, "बहू तुझे चाट की पड़ी है, यहाँ तो मरते-करते बचे हम सब।" दुर्घटना की सुनकर इन्दु के मन में यही आया कि दादाजी के लिए फिर से दही आ सकता है तो मेरे लिए चाट क्यों नहीं!

इस बीच भगवती कपड़े बदल चुकी थी। भाभी की साड़ी जम्पर की तह लगाकर वह रखने जा ही रही थी कि मुँह फुलाये इन्दु कमरे में आयी, "तुम ताँगे पर से गिरीं, कहीं साड़ी में खोंप तो नहीं लग गयी।"

"नहीं भाभी, पूछ लो भैयाजी से। मैं तो गिरी ही नहीं। झट से खड़ी हो गयी।" भग्गो भाभी का जी नहीं दुखाना चाहती थी।

थोड़ी देर में दादी तो कूलती-कराहती अपने तख्ती पर करवट बदलती सो गयीं। कविमोहन भी लालटेन और किताब लेकर छत पर चला गया।

रह गयी भग्गो और इन्दु। दोनों की आँखों में नींद भरी थी। जब तक दादाजी दुकान का गल्ला मिलाकर, शौच से आकर हाथ-पैर धोकर ब्यालू पर बैठे, बेटी और बहू जँभाइयाँ लेने लगीं।

दादाजी ने पराँठे का कौर तोडक़र दही और कौले की तरकारी लगाकर मुँह में रखा।

उन्होंने फौरन कहा, "च्यौं इन्दु जे दई क्या घर में जमायौ है।"

"नहीं तो।" इन्दु बोली।

भग्गो ने कहा, "हम बताएँ दादाजी, दही तो गया गिर, हमारा ताँगा रपट गया था। यह तो भैयाजी फिर से जाकर लाये हैं।"

दादाजी का खाना ख़राब हो गया। थाली सरकाकर गरजे, "रहने दो मोय नायँ खानी रोटी। एक चवन्नी का छप्परवाले से दई मँगाया वह भी सुसरा नायँ लायौ। जे दई से तो हम कुल्लौ भी नायँ करैं। मार सपरेटा है।"

अब तक दादाजी की किल्लाहट ऊपर पहुँच गयी थी। कवि ऊपर से उतरकर आया, "क्या आधी रात में खोइया मचा रखा है, आप खा-पीकर सो जाएँ और दूसरों को भी सोने दें।"

दादाजी आपे से बाहर हो गये, "मेरे पैसे लुट गये, मैं बोलूँ भी न, डोलूँ भी न। तुझे सोने की पड़ी है तो तू सो। मैंने कपूत पैदा किया, मैं कैसे सोऊँगा।"

कविमोहन पैर पटकता हुआ ऊपर चला गया और भड़ाम से छत के किवाड़ लगा लिये।

भग्गो चुपके से अपने बिस्तर पर चली गयी।

इन्दु ने कुछ देर दादाजी का इन्तज़ार किया। जब आँगन से हाथ धोने और कुल्ला करने की आवाज़ आयी तो उसने भी चौका बढ़ा दिया।

11

कुछ लड़ाइयों का भी एक क्रमश: होता है। ज़रूरी नहीं कि वे अगले ही दिन गतांक से आगे चल दें। कभी-कभी बीच में कई दिन युद्ध विराम रहता। यकायक किसी और प्रसंग से सन्दर्भ को चिनगारी लग जाती और गोलाबारी शुरू।

आज की उनकी किचकिचाहट की असली वजह कुछ और थी। बड़ी बेटी लीला का पति मन्नालाल आज सवेरे दुकान खुलते ही आ धमका था। उसके साथ कनखल के महामंडलेश्वर स्वामी बिरजानन्द थे। दामाद ने बताया महाराजजी के भंडारे में लाला नत्थीमल के नाम एक सौ एक रुपये लिखे गये हैं, सो वे अदा करें। दादाजी बिलबिला पड़े। एक तो इतनी बड़ी रकम निकालकर देनी, दूसरे अभी दुकान खोली भर थी, बोहनी भी नहीं हुई थी। स्वामी बिरजानन्द के सामने अपनी इज्ज़त रखने का भी ख़याल था उन्हें।

यों लाला नत्थीमल मालदार आदमी थे। उनके गल्ले और बक्से में कलदार रुपयों की कमी न थी पर अभी जब उनका स्वास्थ्य टनाटन था, दानपुण्य पर पैसे लुटाना उन्हें ज़हर लगता। फिर उन्हें यह भी अखरता कि बड़ा दामाद मन्नालाल अपनी आटा चक्की की ओर ध्यान न देकर साधु-संन्यासियों के बीच जमना की रेती पर चिमटा बजाता डोलता है।

मन्नालाल के रंग-ढंग एक उभरते हुए भगत के थे। इसका पता शादी के बाद ही लगा जब लीला ने अपनी माँ से कहा, "जीजी जे बताओ आदमी औरत बन जाय तो औरत आदमी च्यों न हो जाय?"

माँ का माथा ठनका। वैसे भी माँ देख रही थी कि शादी का एक महीना बीतने पर भी लीला पर सुहाग की लाली अभी चढ़ी नहीं थी। घर आ जाती तो उसे वापस जाने की कोई हड़बड़ी न होती। मन्नालाल भी कई-कई दिन लिवाने न आते। जब आते तो छोटी बहन भग्गो, जीजा को खूब छकाती।

"दीदी तो अब दिवाली बाद जाएगी। जाके वहीं धूनी रमाओ जहाँ चले गये थे जीजा।"

मन्नालाल गुस्से से सिर झटकते और आँखें दिखाते, "हम सच में चले जामेंगे, बैठ के रोना।"

"कहाँ जाओगे?"

"बिन्दावन।"

लीला कोठरी से बोल पड़ती, "यह बिन्दावन तो मेरी ससुराल भई है। न काम देखना न काज बस बिन्दावन में रास रचाना।"

मन्नालाल लाल-लाल आँखें दिखाते, "चलना है तो सीधी तरह चलो। नहीं, पड़ी रहना बाप के द्वारे।"

अब दादाजी दुकान से उठकर आते। वे अन्दर जाते और जाने कोन जादू से थोड़ी देर में जीजी चमड़े के थैले में विदाई का सामान भरकर लीला को उनके हवाले कर देतीं।

लीला की शादी सोलहवें साल में छयालीस वर्षीय मन्नालाल से जब हुई तो सतघड़े के निवासियों ने छाती पीट ली, "हाय ऐसा कठकरेज बाप हमने नायँ देखौ जो कच्ची कली को सिल पे दे मारे।"

कच्ची सडक़, गली रावलिया पर मन्नालाल की तीन तिखने की पक्की लाल कोठी इस बात का सबूत थी कि आटा चक्की का काम भले ही छोटा हो, उसमें मुनाफ़ा बड़ा है।

ब्याह के बिचौलिये मुरली मास्टर ने बताया था कि मन्नालाल बड़ा सूधा है। इसकी सिधाई की वजह से ही इसे पता न चला और इसकी पहली पत्नी सरग सिधार गयी। इसकी जान को दो लडक़े छोड़ गयी जो अब पल-पुसकर पाँच और छह साल के हैं। बच्चे इतने सयाने हैं कि अभी से चक्की सँभालते हैं। लाला नत्थीमल ने मात्र इतना जाँचा कि ब्याह में कितना खर्च आएगा। मुरली मास्टर के यह कहने पर कि भगत का कहना है आप तीन कपड़ों में कन्या विदा कर दो, वे उफ़ न करेंगे, नत्थीमल ख़ुशी-ख़ुशी तैयार हो गये। खड़ी चोट पाँच हज़ार की रकम बच रही थी, यह उनका सौभाग्य ही था। यह तो शादी के बाद ही उन पर ज़ाहिर हुआ कि जिसे वे अपना दुहाजू दामाद समझे थे, दरअसल वह तिहाजू था। उसके दोनों बेटे अलग माँओं की सन्तान थे। बिल्लू पहली माँ से था तो गिल्लू

दूसरी माँ से। लाला नत्थीमल ने इस बात की तह में जाने की कोई कोशिश नहीं की कि मन्नालाल की दो-दो स्त्रियाँ कैसे दुर्घटनावश दिवंगत हो गयीं।

लाला नत्थीमल के अन्दर एक अदद दुर्वासा भी बैठा हुआ था जो लीला को उसकी नादानी की उचित सज़ा देना चाहता था। एक दिन जब वे दुकान से, लघुशंका के लिए, मोरी पर आये उन्होंने देखा छत पर खड़ी लीला दो छत दूर वकील द्वारकाप्रसाद के बेटे से देखादेखी कर रही है। बीस साल की लीला बड़ी सुन्दर और चंचल थी। उन्हें बहुधा अपनी पत्नी से कहना पड़ता था कि लीला को सँभालकर रखो, उसे ज़माने की हवा न लगे। उन्हें लगा उनकी बड़ी बेटी ज़माने की हवाओं के बीचोंबीच खड़ी है। उन्होंने तभी तय कर लिया कि जो पहला वर मिलेगा वे उससे लीला के हाथ पीले कर देंगे।

उनकी निगाह में मन्नालाल दुहाजू होते हुए भी सुपात्र था क्योंकि उसने जीवन की आर्थिक चिन्ताओं पर विजय प्राप्त कर ली थी। दो पत्नियों की मौत के बारे में पता चलने पर जीजी ज़रूर थरथरायी थीं पर दादाजी ने उन्हें तसल्ली दी थी, "वे दोनों होंगी कलमुँही। हमारी बेटी तो राजरानी रहेगी। दो-दो का गहना-कपड़ा भी सब उसी को मिलेगा।"

वाकई लीला को रुपये-पैसे, कपड़े-ज़ेवर की कोई कमी नहीं थी। बक्से भरे रखे थे। इस पर भी मन्नालाल जब लौटते उसके लिए नयी काट के लहँगे, ओढ़नी, जम्पर ज़रूर लाते। दो-चार कलदार भी थमा देते। खाने-पीने की कोई दिक्कत नहीं थी। चक्की से आटे के कनस्तर आ जाते। चावल-दाल के कुठियार भरे रखे थे। कुंजडिऩ रोज़ ताज़ी सब्ज़ी दे जाती। चक्की का काम, बिल्लू, गिल्लू, मुनीम जियालाल की मदद से सँभाल लेते। थे तो वे सिर्फ पाँच व सात साल के पर वे गम्भीर वयस्क जैसा बर्ताव करते। अक्सर शाम को जब वे दोनों चक्की से लौटते, उनके कपड़ों और बालों पर आटे की महीन परत जमी होती। लीला को वे दो छोटे मन्नालाल नज़र आते। वह सबसे पहले, अँगोछे से उनके सिर पोंछती फिर उन्हें पैर-हाथ धोने को कहती और तब रसोई में ले जाकर खाना देती।

तीसरे साल लीला का मन खट्टी अमिया खाने का होने लगा। उसने अपनी आँखों के गुलाबी डोरे पति की आँखों में डालकर जब यह समाचार उसे दिया, मन्नालाल ने कहा, "चलो यह भी पल जाएगा।" लीला को अच्छा नहीं लगा। उसने तुनककर कहा, "तुम्हारा तीसरा होगा, मेरा तो पहला है!" मन्नालाल मुस्कुराये। दोपहर बाद उन्होंने कच्चे आम का एक टोकरा घर भिजवा दिया।

उस आयु में लीला यह तो नहीं समझती थी कि दाम्पत्य किसे कहते हैं पर सान्निध्य की प्यास उसे थी। वह चाहती कि पाँचवें महीने में पति उसके पेट पर हाथ रखकर बच्चे की हरकत महसूस करे पर पति अक्सर 'भागवत' ग्रन्थ में डूबे रहते। वे रात-रात इस एक पुस्तक के सहारे बिताते।

जितनी लीला डर रही थी उतनी तकलीफ़ उसे प्रसव में नहीं हुई। घर में ही दाई ने आकर अन्दरवाले कमरे में उसका जापा करवा दिया। लडक़े को चिलमची में नहलाकर लीला के बगल में लिटा दिया और कमरे की सफाई के बाद बिल्लू-गिल्लू को आवाज़ लगायी, "ऐ छोरो देख लो कैसा केसरिया भैया पैदा भया है।"

शाम को मन्नालाल ने पुत्र के दर्शन किये। उसकी मुट्ठी अपने हाथ में लेकर बोले, "मेरा लड्डूगोपाल है यह!" उन्होंने पत्नी को गिन्नी की अँगूठी देकर कहा, "सुस्थ हो जाओ तो सुनार से अपनी सीतारामी भी बनवा लेना।"

मथुरा के अन्य बनियों-व्यापारियों की तरह मन्नालाल अग्रवाल ज़रा भी कृपण नहीं थे। चक्की से इतनी नगद आमदनी नहीं थी कि वे भर-भरकर रासमंडलियों पर लुटाते पर उनके पास पुश्तैनी रकम की बहुतायत थी। उनके दादा के इकलौते थे उनके पिता और पिता के इकलौते थे मन्नालाल। दो पीढ़ियों का धन उनके हाथ में था। लेकिन मन्नालाल में तुनकमिज़ाजी थी। कभी छोटी-सी बात पर भन्ना पड़ते। लीला से कहते, "देख भागवान किच-किच तो मोसे किया न कर। जिस दिन मैं तंग आ गया तो उठा अपनी भागवत, बस चला जाऊँगा, पीछे मुडक़र भी नहीं देखूँगा।"

लीला सहम जाती। वह सारे घर का काम सँभालती। उसकी सहनशक्ति केवल एक बात से चरमराती। उनके घर आये दिन कोई-न-कोई रासमंडली, कीर्तनमंडली डेरा जमाये रहती। मन्नालाल उनकी ख़ातिर में जी-जान से जुट जाते। लीला को ये रासधारी और कीर्तनिये बहुत बुरे लगते। वे डटकर खाते, शोर मचाते और उनके बर्ताव से ऐसा लगता जैसे कृष्णभक्ति से उनका कोई सम्बन्ध नहीं। उनके लिए, चारों पहर, चूल्हे में आग बली रहती। कई बार बच्चे बिना खाये सो जाते पर मेहमानों के चोचले खतम न होते। ऐसा कोई ऐब न था जो उनमें न हो फिर भी मन्नालाल उनकी सेवा में तन-मन-धन लुटाये रहते।

12

इस बार होली पर कविमोहन घर नहीं गया। यह एम.ए. का आखिरी साल था और होली के तुरन्त बाद परीक्षा होनी थी। फिर यह भी सच था कि छुट्टियों में होस्टल में पढ़ाई ज्यादा अच्छी तरह होती। होस्टल तकरीबन खाली हो जाता। डेढ़ सौ विद्यार्थियों की जगह मुश्किल से चालीस-पचास बचते। मेस के सेवक भी छुट्टी पर चले जाते। ले-देकर बड़े महाराज और दुखीराम रह जाते। थोड़े-से लडक़ों का खाना वे बड़े ध्यान से बनाते। पूरे फागुन बड़े महाराज शाम के समय भाँग मिली ठंडाई घोटते और लोटे से सेवन करते। शाम की ब्यालू वे बड़ी तरंग में तैयार करते; कभी आलू की तरकारी में नमक की जगह सूजी डाल देते। जब विद्यार्थी शोर मचाते तो कहते, "जे अँगरेज सरकार ऐसी जालिम आयी कि नमक की लुनाई, गुड़ की मिठाई सब सूई से खींचकर निकार लेवे है।" दुखीराम खी-खी हँस पड़ता और सबकी थाली में थोड़ा-थोड़ा नमक परोस देता।

होली में दो दिन दावत बनती। बड़े महाराज क्या बनाएँगे, यह उनके स्नान के समय पता चल जाता। वे नल के नीचे नहाते जाते और जनेऊ के धागे से अपनी पीठ काँछते हुए गाते-

"सेम भिंडी मटर सौं बोले कौला

कचनारिन को जल्दी बुलायलेऊ जी

नेक धनिये की चटनी घोटायलेऊ जी।"

होली पर लडक़े शर्त बदकर दावत जीमते। बीस, पच्चीस यहाँ तक कि तीस-तीस पूडिय़ाँ खानेवाले वीर भी दिखाई दे जाते। पत्तल में उस दिन भाँग की बरफ़ी भी परोसी जाती। कविमोहन ने अपनी बरफ़ी गिरधारी को दी तो गिरधारी बोला, "यार आज तो तुझे चखनी पड़ेगी।"

कवि ने कहा, "मुझे तो देखकर ही चढ़ गयी, तुम खाओ।"

बरफ़ी में बुडक़ा मारकर गिरधारी तरंग में झूमने का नाटक करने लगा।

"अभी तो तुम्हारे पेट तक पहुँची भी नहीं है!" कवि ने कहा।

बड़े महाराज बोले, "आप महात्मा गाँधी के चेले क्या जानो होली का हुड़दंगा, कहने को आप मथुरा के हो।"

गिरधारी सिर हिलाते हुए गाने लगा-

"मोरी भीजी रे सारी सारी रे

कैसौ चटक रंग डारौ।"

खाना खत्म कर, मुँह में पान का बीड़ा दबा सभी लडक़े नाचने-गाने लगे। बड़े महाराज, दुखीराम भी भाँग की तरंग में खूब मटके। एक से एक तानें उठायी गयीं-

"हरी मिर्चें ततैया जालिम ना डारौ रे।"

"होरी पे नायँ आयौ बड़ौ बेईमान

फागुन में नायँ आयौ कैसो नादान।"

तभी डॉ. राजेन्द्र, लडक़ों को होली की बधाई देने पहुँच गये। सभी छात्र उनसे गले मिले, उन्हें अबीर लगाया और सबने उनके चरण-स्पर्श किये। कवि उनके निकट खड़ा हो गया।

विद्यार्थियों का आमोद-प्रमोद देखकर डॉ. राजेन्द्र ने कहा, "लाख तुम अँग्रेज़ी साहित्य पढ़ो, तुम्हें राग-रंग का इससे अच्छा उदाहरण विश्व-संस्कृति में नहीं मिल सकता।"

कवि ने याद दिलाया, "मिड समर नाइट्स ड्रीम?"

"उसमें भी यह तरंग नहीं है।"

थोड़ी देर होस्टल में रुककर डॉ.राजेन्द्र चले गये।

विद्यार्थियों की मौज-मस्ती अभी थमी नहीं थी।

कवि ने गिरधारी से पूछा, "मस्ती तो चढ़ गयी। अब यह पतंग उतरेगी कैसे?"

"पतंग तो अब दालमंडी जाकर ही उतरेगी।" गिरधारी ने मटकते हुए कहा।

कवि पीछा छुड़ाकर अपने कमरे की ओर चल दिया। उसे तनावमुक्त होने के ऐसे अस्थायी अड्डे बनावटी लगते थे। दरअसल जब भी वह स्त्री की उपस्थिति की अभिलाषा करता, उसके सामने इन्दु के सिवा दूसरी कोई छवि ही न आती। इसमें शक़ नहीं कि वह पूरी तरह अपनी पत्नी के प्रेम में पड़ा हुआ पुरुष था। उसने सोचा था आज एरिस्टोटिल की 'पोयटिक्स' अच्छी तरह पढ़-गुन लेगा पर इन्दु की याद ने इतना उद्विग्न कर दिया कि पढ़ाई में

मन ही नहीं लगा। लैम्प बुझाकर वह लेट गया। करवट-करवट उसे प्रिया नज़र आयी। उसे यह भी याद आया कि विवाह की रात उसका हाथ अपने हाथ में लेते हुए वह इन्दु से ज्यादा काँप रहा था। इन्दु के गोरे गुलाबी हाथ में उसका हाथ कितना रूखा, काला और कठोर लगा था। उसे यह भी भय हुआ कि कहीं इन्दु उसे नापास तो नहीं कर देगी। विवाह की रस्म से लेकर अब तक का समय अजब तरीक़े से कटा था। जैसे ही वे घर पहुँचे थे पिता ने कहा था, "कवि, ये जामा जूते पाग जल्दी उतारकर दे दे तो वापस करवा दें, फिजूल किराया चढ़ेगा।"

जीजी उसके लिए धोती-कमीज़ ले आयी थीं। इन्दु को अन्दर के कमरे में लड़कियों के बीच भेज दिया गया था। वैसे तो कवि उन सजावटी कपड़ों में अटपटा महसूस कर रहा था लेकिन उसे लगा माता-पिता कुछ ज्योदा ही कौवापन दिखा रहे हैं। मुँह दिखायी में जितना शगुन आया था, जीजी ने अपनी धोती की खूँट में बाँध लिया। कुछ रिश्तेदार कपड़े और अँगूठी, लौंग जैसे हल्के गहने लाये थे। उन सब पर बहनों ने क़ब्ज़ा कर लिया। उसके बाद जीजी ने कहा, "हमारी बहू बेचारी बड़ी सीधी है, मुँह में बोल तो याके हैई नायँ।" अकेलापन पाकर कवि ने पूछा था, "तुम्हें जीजी और बहनों की बातों का बुरा तो नहीं लगा।"

इन्दु ने मुस्कराते हुए गर्दन हिला दी।

"तुम्हारी सब चीज़ें बँट गयीं?"

"उनका हक़ था लेने का। मेरे पास बहुत है।"

ऐसा नहीं कि ये शुरू की सलज्जता थी जो बाद में बदली। इन्दु का भोलापन निरीहता की सीमा तक जाता था। उसने ससुराल के समस्त अनुशासन, मितव्ययिता और प्रतिदिनता को बिना किसी प्रतिवाद, कुछ इस तरह स्वीकार कर लिया कि कवि अपने अध्ययन-चिन्तन की दुनिया में जीने के लिए स्वतन्त्र हो गया। इन पाँच वर्षों में बस इतना अवश्य हुआ कि इन्दु ने घर की जटिलता पर तो उफ़ न की, किन्तु कुटिलता पर उसे क्रोध आया। गुस्से में कभी वह खाना छोड़ देती, कभी बोलना।

इस रात भी कवि को वही लग रहा था जो अक्सर लगा करता था कि जल्द-से-जल्द एम.ए. उत्तीर्ण कर वह किसी कॉलेज में नौकरी पा ले। उसने कल्पना की उसे दिल्ली में नौकरी मिल गयी है। वह पत्नी और बच्चों के साथ शहर में मकान लेकर रह रहा है। कैसा होगा, अलग शहर में अपना एकल परिवार लेकर रहना! उसे मैथिलीशरण गुप्त की पंक्ति याद आ गयी : 'निन्दित कदाचित् है प्रथा अब सम्मिलित परिवार की।' उसे लगा मथुरा में उसका अपना घर एक ऐसा वास है जिसमें न सुख है न चैन, न शान्ति न सामंजस्य। वहाँ सब एक-दूसरे से गुँथे हुए चींटों की तरह चिपके रहते हैं और चोट करते रहते हैं।

यादों के क्रम में यकायक कवि को याद आ गयी लडक़पन की एक घटना। भरतियाजी के यहाँ पुत्र-जन्म की ज्यौनार का न्यौता था। दादाजी को दो दिन से पेचिश हो रही थी। जीजी अलग अपनी टाँग के दर्द से तड़प रही थीं। भरतियाजी एक तो मथुरा के बड़े आदमी थे, दूसरे उनसे दादाजी के परिवार की दो पुश्तों की नज़दीकी थी। यह तय किया गया कि कवि के साथ भग्गो कुन्ती चली जाएँगी। लीला को तेरहवाँ साल लग गया था अत: उसका घर से बाहर निकलना ठीक नहीं समझा गया।

कवि को याद है तीनों बच्चे हँसी-ख़ुशी दावत खाकर लौटे थे। दादाजी ने दो दिन बाद थोड़ी-सी खिचड़ी खायी थी और लेटे हुए थे। उन्होंने कवि को बुलाकर पूछा था, "क्या-क्या खायबे को मिला?"

कुन्ती उछलकर बोली, "पूड़ी, कचौड़ी, बूँदी का रायता, मुरायता..."

"जे तो साईसों के यहाँ भी होता है। मिठाई बता।"

भग्गो ने कहा, "पँचमेल मिठाई ही।"

कुन्ती बोली, "हट सात मेल की तो मैंने गिनी थी, ऊपर से तले हुए काजू और गिरी।"

कवि ने कहा, "बताएँ लड्डुआ था, बालूशाही थी, जिमीकन्द था-"

कुन्ती हँस पड़ी, "जिमीकन्द नहीं दादाजी कलाकन्द था। भैयाजी कलाकन्द को जिमीकन्द च्यौं बोलते हो?"

दादाजी का धैर्य चुक गया। वे भडक़े, "ससुरे सात मेल की मिठाई भकोस आये, नाम गिनाने में मैया मर रही है।"

बच्चों ने बहुत याद करने की कोशिश की, उन्हें बाकी चार मिठाइयों का नाम ही नहीं याद आया।

दादाजी ने उठकर एक-एक थप्पड़ तीनों को मारा। गाली दी और कहा, "आज गये सो गये, अब कभी ससुरों को भेजूँ नायँ।"

दावत की मस्ती काफ़ूर हो गयी। तीनों सिसकियाँ लेते हुए सो गये।

जीजी ने कवि को थपकते हुए धीरे-से कहा था, "बाप नहीं जे कंस है कंस। रोते नहीं हैं बेटे, तोय मेरी सौंह।"

खट्टी-मीठी और तीती यादों के बीच कब कवि की आँख लग गयी, उसे पता नहीं चला।

कविमोहन के सभी पर्चे बढिय़ा हुए। उसका मन प्रफुल्लित हो गया।

डॉ. राजेन्द्र ने कहा, "तुम्हारी प्रथम श्रेणी आ जाए तो मैं तुम्हें इसी कॉलेज में रखवा दूँ। प्रिंसिपल मेरी बात बड़ी मानते हैं।"

कवि ने उनके पैर छू लिये।

उमंग और उम्मीद से भरा वह मथुरा के लिए रवाना हुआ। एक महीने बाद एम.ए. का नतीजा घोषित होने की सम्भावना थी। ट्यूशनें छोडऩे का थोड़ा अफ़सोस था लेकिन उसे पता था कि उसे बड़े आकाश में उडऩा है। ट्यूशन से ज्यादा तकलीफ़ हॉस्टल छोडऩे में हो रही थी। न जाने कितने मित्र बन गये थे। कवि के कारण ही हॉस्टल में आये दिन कवि-गोष्ठियाँ होती रहती थीं जिनमें कभी वह अपनी तो कभी प्रसिद्ध कवियों की कविताओं का सस्वर वाचन करता। कई बार पैरोडी भी बनाता जिससे दोस्तों का ख़ूब मनोरंजन होता। उसकी बनाई बच्चनजी की 'मधुशाला' की पैरोडी बहुत पसन्द की गयी थी। कविमोहन ने लिखा था-

"टीचर बोला कूड़मगज़ है, पड़ा मूर्ख से है पाला

पीयेगा क्या खाक कि उसने तोड़ दिया अपना प्याला

मधु भी विष होता है साक़ी, अगर बलात् पिलाएगा

नाज़ करे अन्दाज़ करे पर विवश न करती मधुशाला।"

अन्तिम दिन हॉस्टल में विदाई की शाम रखी गयी। तब कवि ने अपनी गहन, उदास आवाज़ में अपनी आशु कविता सुनाई थी-

"मेरे आश्रय देनेवाले जाता हूँ गृह ओर

तुझे छोड़ते हो जाता हूँ मैं कारुण्य विभोर

ओ मेरे विश्वास विदा

मेरे छात्रावास विदा।"

13

बीसवीं शताब्दी की मथुरा अगर बदल रही थी तो इसलिए क्योंकि परिवर्तन की लहर समूचे भारत में उठी हुई थी। कांग्रेस जन-मन की चेतना पर गहरा असर डाल रही थी। आज़ादी की अभिलाषा ने बच्चे-बड़े सबको आन्दोलित कर डाला था। एक तरफ़ लोगों में स्वदेशी पहनने की होड़ लग गयी थी दूसरी तरफ़ स्वदेशी वस्तुएँ इस्तेमाल करने की। लाला नत्थीमल के कुनबे में मिल का कपड़ा छोड़ खादी अपनायी गयी तो इसलिए भी क्योंकि खादी सस्ती पड़ती थी। जनाना धोती, मिल की बनी, चार रुपये जोड़ा थी तो खादी की तीन रुपये जोड़ा। लेकिन खादी की धोती धोने में मेहनत ज्या,दा पड़ती। जीजी कहती, "खादी की धोती जम्पर में सबसे अच्छा यह है कि सिर से पैर तक कहीं बदन नहीं दिखता। ठंड लगे तो ओढ़ के सो लो, गर्मी लगे तो पंखे की तरह डुलाकर हवा कर लो।"

जीजी चरखा समिति में जाने लगी थीं। समिति की तरफ़ से उन्हें एक चरखा भेंट में मिला। घर में पुराने रुअड़ की कमी नहीं थी। पहले उससे मोटा सूत काता गया। बड़ी शर्म आयी कि इतना मोटा सूत भाईजी को कैसे दिखाएँ। पर भाईजी ने जीजी का बड़ा हौसला बढ़ाया, "अच्छा है बहनजी, इसके बड़े अच्छे खेस तैयार होंगे। लागत मूल्य पर आप ही को दे देंगे।"

इन्दु कभी-कभी भुनभुनाती, "जीजी तो सबेरे से चरखा लेकर बैठ जाती हैं, हमें चक्की थमा देती हैं।" चक्की पर रोज़ दाल दली जाती। एक न एक बोरी चक्की के पास रखी ही रहती, कभी उड़द तो कभी मूँग। चक्की के हत्थे से इन्दु की हथेलियों में ठेकें पड़ गयी थीं। यही हाल भग्गो का था। जीजी रोज़ नयी जानकारियों से भरी रहतीं। दिल्ली कांग्रेस सभा से कमला बहन ने मथुरा की महिलाओं को एकजुट करने के लिए यहीं डेरा डाल लिया। जीजी ने रसोई में एक कनस्तर रखा और बहू-बेटी से बोलीं, "अब से रोटी बनाने के बाद बचा हुआ पलोथन इसमें डारा करो, अच्छा।" मुहल्ले की सभी औरतों ने ऐसा इन्तज़ाम किया।

जब गाँधीजी की विशाल सभा हुई तो यही आटा स्वयंसेवकों के काम आया। जाने कितने नौजवान नौकरी की परवाह न कर स्वाधीनता आन्दोलन में कूद पड़े थे। महात्मा गाँधी एक सन्देश देते और सब मन्त्रमुग्ध हो उसका

पालन करने दौड़ पड़ते। सुबह-सुबह सडक़ों पर प्रभात फेरियाँ निकाली जातीं। बड़े सुर में गाते हुए सुराजियों का जत्था निकल पड़ता, "नईं रखनी सरकार ज़ालिम नईं रखनी।" कभी जनता के ऊपर नमक बनाने का जुनून सवार हो जाता। सत्याग्रही नौजवान जत्थे बना लेते। हलवाई ख़ुशी-ख़ुशी अपनी कड़ाही और कौंचा दे देते। पुलिस की मौजूदगी में ही नमक बनाने की तैयारी होती और स्वयंसेवक नमक कानून तोडक़र कड़ाही में कौंचा चलाते। पुलिस लाठीचार्ज करती। लडक़े घायल हो जाते पर टेक न छोड़ते।

छठीं-सातवीं कक्षा तक पढऩेवाले बच्चों ने वानर-सेना बनायी हुई थी। विदेशी कपड़ा बेचनेवाली दुकानों के सामने जाकर शोर मचाकर दुकान बन्द करवाना इनका प्रिय काम था। वानर-सेना महात्मा गाँधी के नौजवान-दल की पिछलग्गू दल थी। विदेशी कपड़ों की होली जलाते समय ये बच्चे इतने जोश में आ जाते कि अपनी सूती कमीज़ भी उतारकर आग में झोंक देते। जब ये घर पहुँचते इन्हें मार पड़ती लेकिन इनके जोश में कमी न आती। होली दरवाज़े और छत्ता बाज़ार में लाइन की लाइन दुकानें लूट के डर से बन्द हो जातीं। कभी हड़ताल का आह्वन न होता तब भी दुकानों के ताले नहीं खुलते।

लाला नत्थीमल को ऐसे दिनों बड़ा रंज होता। वे कहते, "ये तुम्हारौ गाँधीबाबा कायका बनिया है। रोज दुकान बन्द करवावै। इसे जे नईं पतौ कि रोज-रोज दुकान बन्द रहे से कुत्ते भी बा जगह सूँघना छोड़ देवें। मोय एक बार मिले गाँधीबाबा तो मैं बासे जे पूछूँ, 'च्यों महातमाजी, अपनी दुकान जमाने के लिए हमारी दुकान का बंटाधार करोगे'।"

दरअसल लाला नत्थीमल को इस बात पर रत्ती भर भी विश्वास नहीं था कि चरखा चलाने, नमक बनाने और खादी पहनने से देश को आज़ादी मिल जाएगी। देश भर में क्रान्ति मची थी पर नत्थीमल सोचते अभी कम-से-कम सौ साल तो अँग्रेज़ों को कोई हिला नहीं सकता। अँग्रेज़ों के कडक़ मिज़ाज के वे मन-ही-मन प्रशंसक थे। जब वे घर में पत्नी या बच्चों को कडक़कर डाँटते, मन-ही-मन अपने को अँग्रेज़ से कम नहीं गिनते थे।

चरखा चलाना वे निठल्लों का काम मानते। उनकी पत्नी जब पूरी तल्लीनता से चरखे में लगी होती वे कहते, "मोय तो लगै तुम जुलाहिन की जाई हो। बनिया तो तराजू छोड़ और कछू चलाना नायँ जानै।"

पत्नी को गुस्सा आ जाता, "मैं जुलाहिन की हूँ तो तुम भी कोई लाट-कलट्टर के जाये नायँ हो। बूरेवाले के छोरे मैदावाले बन गये बस्स।"

नत्थीमल दाँत पीसते, "ज़बान लड़ाना सुराजिनों से सीखकर आती है, आये तो कोई सुराजिन घर में, ससुरी का टेंटुआ दबा दूँगौ।"

"बनिये के दरवज्जे कोई मूतने भी ना आवै," पत्नी भुनभुनाती। विद्यावती ने अपनी नयी साथिनों को समझा रखा था कि आना हो तो दुपहर में आओ। विद्यावती अब तक गृहस्थी में से दो कनस्तर चून निकालकर दे चुकी थी। साथिनों की सलाह थी कि अबकी बार कम-से-कम एक कूँड चून इकट्ठा करके वे दें। उन्होंने कहा, "कमला बहनजी ने बताया है कि अगले महीने बापूजी की बहुत बड़ी सभा होगी। सारे शहरों से लोग पधारेंगे।"

विद्यावती ने डींग हाँक दी, "चून की कोई कमी नायँ। बोरियाँ चिनी रखी हैं घर में।"

साथिनों को खुशी हुई। वे बोलीं, "विद्या बहन अपने मालिक से भी पूछ लेना। कहीं तुम पर चिल्लावें ना।"

विद्यावती फिर भी नहीं डरी, "एकाध बोरी तो गिनती में भी नायँ आएगी। पूछबे की कौन बात है जामे।"

एक दिन लाला नत्थीमल की नज़र चौके के कोने में रखे कनस्तर पर पड़ गयी। उन्हें हैरानी हुई, चौके में दो ईंटों पर यह कनस्तर क्यों रखा हुआ है। रसोई की कच्ची रसद हमेशा कोठे में रखी जाती थी। उन्होंने कनस्तर खोलकर देखा। उसमें मुश्किल से सेर भर आटा था।

उनके पूछने के पहले भग्गो ने कहा, "जीजी इकट्ठा कर रही हैं। जे सुराजियों का आटा है।"

पिता आगबबूला हो गये, "अब का गली-गली जाकर चून माँगती है तेरी मैया।"

इतनी देर में विद्यावती आ गयी। उसने दूर से ही कहा, "इसे हाथ न लगाना। जे आजादी की लड़ाई में काम आएगा।"

"हुँह, आटे से लेगी आजादी। महात्मा गाँधी खुद तो जो है सो है, लुगाइयों को भी पागल बना रहा है। कान खोलकर सुन लो, अब से घर से कोई चून-चना सुराजियों के यहाँ नहीं जाएगा।"

"इसका मतलब या घर में मेरा कोई हक ही नहीं है," विद्यावती ने पूछा, "मैं अपनी मर्जी से पलोथन का चून भी नहीं दे सकती।"

"ज्या।दा बर्राओ ना। दुकान पर दुई बोरी घुना हुआ कनक पड़ा है, उसमें से एक बोरी, कहो, भिजवा दूँ पर हाँ बोरी वापस मिलनी चाहिए।"

"गाँधीबाबा के भौलंटियरों को घुना गेहूँ खिलाओगे तो तुम्हें पाप पड़ेगा, समझे।"

नत्थीमल वहाँ से हट गये। आज़ादी की हलचल और लोगों की इसमें हिस्सेदारी से वे नाराज़ थे। उनके विचार में ये आन्दोलन-फान्दोलन सिर्फ दुकानदारी खराब करने के फन्दे थे। इनसे किसी का भला नहीं होना था। वे कहते, "इन ससुरों को गाँधीबाबा की रट लगी है। जब ये सब जेल में ठूँसे जाएँगे और वहाँ पर डंडे पड़ेंगे, सब सूधे हौं जाएँगे।" उन्हें लगता कि आज़ादी, आवारा निकम्मे और नाकारा लोगों की माँग है। वे शाम की बैठक में लाला लल्लूमल से बात करते। लाल केशवदेव, हुकुमचन्द और मुरलीमनोहर भी वहाँ मौजूद होते। नत्थीमल कहते, "ये गाँधीबाबा भी अजब सिरफिरा है। निकालना है अँगरेजों को और कहता है चरखा चलाओ, नमक बनाओ। अरे आँख के अन्धो तुम चरखा चलाते रह जाओगे और अँगरेज मनचेस्टर से मक्खन जैसा कपास लाकर धर देंगे। का खाकर मुकाबला करोगे।"

केशवदेव कहते, "हमने तो सुनी है, जाने सच जाने झूठ, कि कल के दिना फिर हड़ताल होने वारी है।"

नत्थीमल का मुँह खुला-का-खुला रह जाता, "अब का हुआ।"

"हुआ जे, गाँधीबाबा दिल्ली में गिरफ्तार होय गये। सारे सुराजियों को मिर्चें छिड़ गयीं।"

मुरली मनोहर बोलते, "अब ये सुराजिये पहले दुकानें बन्द करवाएँगे फिर जेहल जाएँगे, और का।"

नत्थीमल दुखी हो जाते, "अब दुकनदारी का जमाना नहीं रहा।" उनके हिस्से का दुख औरों से ज्या'दा था क्योंकि उनकी पत्नी और बेटा दोनों गाँधीबाबा के भक्त थे।

दोपहर में ठाकुरजी के दर्शनों के बहाने विद्यावती घर से खिसक लेती और कमला बहन की सभा में शामिल हो जाती। ऐसे अभियान में भग्गो उनकी साथिन होती।

अब तो भगवती को भी इन सभाओं में आनन्द आने लगा था। सभा के अन्त में जब नारे लगते उनमें भगवती की आवाज़ सबसे तेज़ होती।

कमला बहन ने शुक्रवार की सभा में तय किया कि देशप्रेम का सबूत देने के लिए मथुरा की सभी महिलाएँ शनिवार की सुबह टाउनहॉल पर तिरंगा फहरायेंगी। उसके बाद सब मिलकर गाएँगी, 'विजयी विश्व तिरंगा प्यारा, झंडा ऊँचा रहे हमारा।'

महिलाओं में जोश फैल गया। हम चलेंगी, हम भी चलेंगी, हम भी, हमऊ की पुकारों से सभा गूँज उठी।

कमला बहन के नेतृत्व में शनिवार को भीड़ जुटी। चार-चार की पंक्ति बनाकर महिलाएँ टाउनहॉल के रास्ते पर बढ़ीं। महिला-जुलूस देखने के लिए सडक़ के दोनों ओर जनसमूह इकट्ठा हो गया। पुलिस को न जाने कैसे खबर लग गयी। वह भी तगड़ी संख्या में मौजूद थी। टाउनहॉल के चारों तरफ़ मूँज की मोटी रस्सी का घेरा पड़ा था। टाउनहॉल परिसर में घुसना मना था। कमला बहन लम्बी-चौड़ी, हृष्ट-पुष्ट महिला थीं।

उन्होंने टाउनहॉल की सीध में सडक़ पर खड़े होकर ललकारा, "प्यारी बहनो! हमारे पूजनीय बापू इस वक्त जेल में हैं। हम सबको बापूजी की कसम है, हम यहाँ तिरंगा फहराकर जाएँगी। यह देश हमारा है, इसकी सब इमारतें हमारी हैं। आप सब तैयार हैं?"

सबने ज़ोर का हुँकारा भरा।

टाउनहॉल की चारदीवारी एक तरफ़ से थोड़ी टूटी हुई थी। उसी पर से कूद-कूदकर महिलाएँ परिसर में पहुँच गयीं। विद्यावती एक टाँग से लाचार थीं। उनके लिए छोटी-सी मेंड़ उलाँकनी भी विषम थी। अत: वे परिसर के बाहर ही रह गयीं। उन्होंने भग्गो को रोका पर वह तो बकरी की तरह कूदकर अन्दर पहुँच गयी।

सिपाहियों ने पहले हाथ जोडक़र कहा, "भैनजी हमें मजबूर न कीजिए। यहाँ झंडा लगाने का ऑर्डर नहीं है।"

कमला बहन अनसुनी कर सीढिय़ों से ऊपर चली गयीं। इन्द्रावती के हाथ में लिपटा हुआ तिरंगा था। दयावती ने वह पहला बाँस पकड़ा हुआ था जिसमें पो कर तिरंगा लगाना था।

भीड़ के मारे भगवती ऊपर तो नहीं पहुँच पायी, नीचे ज़ीने से ही बोलती रही, "गाँधीबाबा की जय।"

तभी दो सिपाहियों ने आकर डपटा, "चोप! अभी थाने ले जाकर बन्द कर देंगे, चली है नेता बनने।"

सडक़ से विद्यावती, पत्थर पर बैठी, भगवती पर नज़र रखे थीं। वे चिल्लाईं, "री भग्गो भजी चली आ, मेरे पैर में बाँयटा आ गया री।"

भग्गो माँ की तरफ़ भागी। इस तरह माँ-बेटी दोनों उस दिन गिरफ्तारी से बच गयीं वरना गिरफ्तारियाँ तो बहुत हुईं। लालाजी को ख़बर लगनी ही थी। रात को वे बहुत चिल्लाये। पत्नी से कहा, "इस छोरी का कहीं ब्याह न होगा, कहे देता हूँ। तुम दिन भर इसे लेकर सुराजियों में घूमो, ये का अच्छे लच्छन हैं?"

"एम्मे कौन बुराई है, मैं साथ में ही। मेरे संग वापस आ गयी।"

"आगे से सुन लो। चरखा-वरखा चलाना है तो घर में बैठकर चलाओ पर बाहर निकरीं तो देख लेना। एक टाँग तो भगवान ने तोड़ दई, दूसरी मैं तोड़ दूँगा।"

विद्यावती चुप लगा गयीं। झगड़ालू आदमी के कौन मुँह लगे।

14

दोपहर भर इन्दु घर में दोनों बच्चियों के साथ अकेली छूट जाती थी। थोड़ी देर वह ब्लैकी एंड संज़ की गोल्डन रीडर पढने़ की कोशिश करती जो पति ने उसे अँग्रेज़ी के अक्षर-ज्ञान के लिए दी थी। जल्द ही उसके हाथ से किताब लुढक़ जाती। उसकी आँख लग जाती। बेबी तो शुरू की शैतान थी, मुन्नी की भी चंचलता बढने़ लगी थी। दोनों की चिल्ल-पौं में इन्दु चैन से सो न पाती। शाम को वह झुँझलायी रहती।

लोहेवालों की बहू उमा और इन्दु में अच्छी दोस्ती थी। उमा के बच्चे थोड़े बड़े हो चुके थे और उनका दाखिला स्कूल में हो चुका था। कभी-कभी वह दोपहर को आ जाती और दोनों सहेलियाँ स्वेटर बुनते हुए अपना सुख-दुख भी उधेड़बुन लेतीं।

एक दिन उमा आयी तो देखा इन्दु और मुन्नी सोयी पड़ी हैं और बेबी बाहर गली में दौड़ रही है। उमा उँगली पकड़ उसे अन्दर लायी।

स्वेटर की सलाई से इन्दु का कान गुदगुदाकर उसने उसे उठाया।

इन्दु उठने लगी तो देखा साथ सोई मुन्नी ने दस्त कर, न सिर्फ खुद को बल्कि उसे भी लिबेड़ दिया है। मुन्नी को बाँहों से पकड़ इन्दु आँगन के नल पर लपकी जिसके नीचे पानी का टब भरा रखा रहता। वह टब से पानी लेकर मुन्नी को साफ़ करने लगी। तभी मुन्नी उसके हाथ से छूटकर पानी में गिर गयी।

उमा दौड़ी आयी। उसने बच्ची को टब से निकाला लेकिन तब तक वह कुछ पानी गटक चुकी थी। यकायक वह चुप हो गयी।

इन्दु घबराहट में रोने लगी।

उमा ने बच्ची को उलटकर उसकी पीठ दबा-दबाकर उसका पानी निकाला। उसकी छाती पर मालिश की और कान मसल-मसलकर उसे सचेत किया।

कुछ मिनटों बाद जब वह बुक्का फाडक़र रोयी, इन्दु और उमा की जान में जान आयी। वे आपस में लिपट गयीं।

"तुम तो बच्चे पालने में एक्सपर्ट हो गयी हो।" इन्दु ने कहा।

"सिर पर पड़ती है तो सब सीखना पड़ता है।" उमा ने कहा।

"मेरे से ये चिबिल्लियाँ सँभलती ही नहीं हैं, ऊपर से घर का कुल काम।"

"अभी क्या है, अभी तो तुम निठल्ली हो। जब वो घर आ जाएँगे तब देखना कैसी मुश्किल होगी।"

जानकर भी अनजान बनकर इन्दु ने कहा, "और क्या मुश्किल?"

"अरे वो बुलाएँगे सेज पर और ये दोनों राजकुमारियाँ दीदे फाडक़र बैठी रहेंगी। सो के न दें ये।"

"तो तुम क्या करती हो?"

"और क्या करें। थोड़ी-सी अफीम दूध में चटा देती हूँ। मजे से धूप चढ़े तक सोते हैं दोनों बच्चे।"

इन्दु डर से सन्न हो गयी, "हाय राम अफीम में तो नशा होता है।"

"राई बराबर देती हूँ। ये ही कहते हैं उमा दे दे नहीं तो सोना मुहाल हो जाएगा।"

"मैं तो कभी न दूँ।"

"आने दे भाईसाब को, तब देखूँगी।"

उमा ने तय किया कि अबकी होली पर इन्दु बच्चों के साथ उसके घर आये। इन्दु के दब्बू स्वभाव ने कई बहाने ढूँढ़े पर उमा के आगे उसकी एक न चली।

बाद में इन्दु को लगा उसे भी घर से निकलना चाहिए। दादाजी पूरा दिन दुकान पर मन लगा लेते हैं। जीजी, भग्गो चरखा-तकली के नाम पर निकल लेती हैं, एक वही रह जाती है घरघुसरी। फिर कविमोहन को भी होली पर नहीं आना था।

होली के रोज़ इन्दु ने सुबह-सुबह ही गुझिया, दही-बड़े बना डाले और जीजी से कहा, "हमें उमा के यहाँ जाना है।"

जीजी बोलीं, "तीज-त्योहार पर अपने घर बैठना चाहिए। कोई आये-जाये तो कैसा लगेगा।"

इन्दु बोली, "मैं तो रोज घर में बैठी रहती हूँ। आज तो मैं जरूर जाऊँगी।"

सास ने समझाया कि छोटी ननद को साथ लिये जा पर इन्दु, अपनी सहेली से मिलने के चाव में दोनों बेटियों को लेकर अकेली चल पड़ी। होली दरवाज़े से बायें हाथ की गली में पाँचवाँ मकान था उमा का।

उमा और उसके परिवारवालों ने इन्दु का बड़ा स्वागत किया। उसके पति दीपक बाबू ने बेबी को गोद में ले लिया और बोले, "तेरे दोस्त ऊपर हैं चल तुझे ले चलूँ।"

बेबी अनजान हाथों में ठुनकने लगी। उमा बोली, "चलो सब ऊपर चलते हैं।"

ऊपर के कमरे में होली के व्यंजन सजे हुए थे। बीचवाली मेज़ पर हरे रंग की बर्फी, गुझिया, दही-बड़े, काँजी के बड़े और ठंडाई भरा जग रखा था।

पहले रंग लगाने का कार्यक्रम चला। इन्दु ने पहले ही कह दिया, "देखो सूखा रंग खेलो। नहीं तो जीजी, दादाजी चिल्लाएँगे।"

दीपक बाबू बोले, "धुलैंडी तो कल है। आज सूखा ही चलेगा।"

उमा और दीपक ने खूब इसरार कर-करके इन्दु को काफी खिला डाला। इन्दु ने हरे रंग की बर्फी देखकर गर्दन हिलायी, "भाईसाब यह मैं नहीं खाऊँगी। इसमें भाँग पड़ी लगे।"

"अरे नहीं यह तो पिस्ते की बरफ़ी है।" दीपक और उमा ने एक साथ कहा।

ठंडाई वाकई में ठंडी और मीठी थी। एक घूँट भरकर इन्दु ने कहा, "इसमें भाँग तो नहीं घोटी है?"

"बिल्कुल नहीं," उमा ने सिर हिला दिया।

इन्दु को घर से निकलकर अच्छा लग रहा था। बच्चे भी आपस में मगन थे। मुन्नी पास के तख्त पर सो रही थी। वह ठंडाई का ग्लास गटागट पी गयी। उमा ने बड़े प्यार से उसका ग्लास फिर भर दिया।

बेसिर-पैर की गप्पों में कब सूरज छिप गया, किसी को पता ही नहीं चला।

अब इन्दु को घर की सुध आयी। उमा बोली, "ये जाकर कह देंगे तुम्हारे घर। आज यहीं रह जाओ।"

इन्दु घबरा गयी, "नहीं, जीजी तो मेरी जान निकाल देंगी। मैं तो अभाल जाऊँगी।"

उमा दम्पति रोकते रह गये पर इन्दु मुन्नी को गोद में ले और बेबी को उँगली से थाम तेज़ कदमों से चल पड़ी।

थोड़ी देर में इन्दु को लगने लगा जैसे वह हवा पर पाँव रखती हुई चल रही है। वह और भी तेज़ चलने लगी। बेबी बार-बार पिछड़ रही थी। गली में एक दुकान के थड़े पर इन्दु रुकी। फिर वह लगभग भागती हुई गली पार कर घर पहुँच गयी।

सास उसकी हालत देखकर समझ गयी कि कहीं से इन्दु भाँग का लोटा चढ़ाकर आयी है। जीजी ने बहू को नींबू चटाया और पूछा, "बेबी-मुन्नी कहाँ हैं?"

इन्दु ने ताली बजाकर कहा, "बेबी-मुन्नी" और उस पर हँसी का दौरा पड़ गया। वह हँसती जाए और कहे "बेबी-मुन्नी।"

जीजी बोली, "उमा के घर सुला आयी क्या?"

"उमा...नईं, नईं..." इन्दु कहे और हँसना शुरू कर दे।

विद्यावती ने पड़ोसी के छोरे को उमा के घर दौड़ाया कि जाकर देख, बच्चे कहाँ हैं।"

थोड़ी देर में छोरा लौटकर बोला, "बहनजी कह रही हैं, बच्चे तो भाभी के साथ ही गये थे।"

जीजी घबराकर रोने लगी।

इन्दु तन्द्रा में थी। सास ने उसकी कोठरी का दरवाज़ा उढक़ दिया।

बड़ी दौड़-धूप मची। सारे बाज़ार में शोर हो गया लाला नत्थीमल की पोतियाँ हेराय गयी हैं।

होली दरवाज़े के बाहर का बाज़ार उस दिन खुला हुआ था। लोग अभी भी अबीर गुलाल और टेसू के फूल खरीद रहे थे। हलवाइयों की दुकानें आगे तक सजी हुई थीं। बहुत-से मनचले रंगदार टोपी पहने, हाथ में पिचकारी लिये गलियों में आ जा रहे थे। उन तक भी शोर पहुँचा, "लाला नत्थीमल की दो-दो पोतियाँ हेराय गयी हैं।"

ये मनचले भी भाँग चढ़ाये हुए थे लेकिन सुरूर अभी नहीं हुआ था। उनमें से एक ने कहा, "करीब दो घंटे पहले मैंने देखी ही छोरियाँ।"

लालाजी का मुनीम छिद्दू वहीं हर दुकानवाले से पूछताछ कर रहा था। उसने लपककर लडक़े की बाँह पकड़ी, "कहाँ देखी थीं?"

लडक़े ने एक दुकान के चौंतरे पर इशारा किया। प्रमाण स्वरूप उसने कहा, "बड़ीवाली लाल फराक पहने थी जाने।"

"हाँ, हाँ," छिद्दू ने कहा और लडक़े समेत उस दुकान पर पहुँच गया।

दुकानदार पप्पू बोला, "हम तो अभाल आये हैं, दुकान पे, सुबह से मुन्ना था।"

मुन्ना की ढूँढ़ मची।

दुकान से छूटकर मुन्ना तो होली की मस्ती में संगी-साथियों के साथ कहीं निकल गया था। एक और लडक़े ने कहा, "एक आदमी दोनों छोरियों को गोदी उठाकर ले गया था कि इनकी मैया बुला रही है।"

लाला नत्थीमल ने ख़बर सुनी तो सन्न रह गये। मन-ही-मन पत्नी को गाली देते हुए, अपनी कमीज़ झाडक़र उठे। सवेरे से बैठे-बैठे उनके घुटने अकड़ गये थे। छिद्दू तो खुद बेबी-मुन्नी को ढूँढऩे में लगा हुआ था। उन्होंने बेमन से अपने मज़दूर सियाराम से दुकान बढ़ाने और चाभी घर पर लाने को कहा।

जब तक लाला नत्थीमल बाज़ार की तरफ़ पहुँचे बाज़ार में शोर था, "कंसटीला होकर आये छोरे बता रहे हैं, वहाँ से रोवे की आवाज़ आ रही है।"

होली दरवाज़े के बाहर कंसटीले पर लोग लपके। सबसे आगे रंगी और उसके साथी थे। उन्होंने देखा ज़मीन पर दोनों बच्चियाँ लोट-लोटकर रो रही हैं। उनके पास एक दोने में थोड़ी-सी जलेबी रखी हुई है।

"बंसीवारे की जै, होलिका माई की जै" बोलते हुए लडक़े लपककर बेबी-मुन्नी को उठा लाये। पीछे-पीछे लाला नत्थीमल और छिद्दू भी आ गये। दादाजी ने बेबी को घपची में भरकर ख़ूब प्यार किया, "कहाँ चली गयी थी तू बता?" छिद्दू ने मुन्नी को गोद में उठा लिया।

दिन के इस बखत छोरियाँ कंसटीला पहुँचीं कैसे। ये न रास्ता जानें न चल पायें। बाज़ार में इसी पर विचार-विमर्श होने लगा।

लाला नत्थीमल ने सेर भर कलाकन्द बँधवाया और घर की तरफ़ चल दिये।

छिद्दू की गोदी से उतरते ही बेबी 'दादी', 'दादी' कहती विद्यावती से चिपक गयी।

घर में शाम का चूल्हा नहीं जला था। इन्दु सोयी पड़ी थी। भग्गो जीजी से डाँट खाकर एक तरफ़ पड़ी थी। जीजी का अपना मन तडफ़ड़ में पड़ा था। पंजे का घाव चस-चस करने लगा था। उसी पर झुकी हुई वह प्रार्थना के शिल्प में बुदबुदा रही थी "बंसीवारे रखियो लाज, बंसीवारे रखियो लाज।"

बेबी का गुलगुला बोझ बदन पर पड़ा तो जीजी विह्वलता में रो पड़ीं, "अरे मेरी लाड़ो-कोड़ो कहाँ थी तू इत्ती अबेर। ऐ छिद्दू इधर आ। कहाँ मिली छोरी मोय बता।"

तब तक नत्थीमल मुन्नी को लेकर अन्दर आये। उन्होंने विद्यावती की गोद में बच्ची को डालकर प्रेम से कहा, "लो सँभालो अपनी नतनियाँ। नगर-ढिंढौरा पीट के पायी हैं।"

भगवती बेबी को उठाकर नाचने लगी, "बेबी मिल गयी आहा, आहा, मुन्नी मिल गयी आहा, आहा।"

ख़ुशी के मारे सबकी आँखों से आँसू बह रहे थे, गला भर्रा रहा था।

नत्थीमल बोले, "मैंने तो बाज़ार में सुनी और कलेजा धक्क से रह गया। हे भगवान कबी को कौन मुँह दिखाऊँगौ, मैंने कही चल भई छिद्दू छोड़ दुकान को।" जिसने जो बताया सोई किया, जहाँ कहा वहाँ हेरा। अरे बहू कहाँ है बुलाओ वाय।"

नत्थीमल हाथ-पैर धोकर कपड़े बदलने लगे।

उधर बेबी और भगवती ने झँझोडक़र, शोर मचाकर इन्दु को जगा दिया।

भग्गो बोली, "भाभी दादाजी बड़ी मुश्किल से पाये हैं बेबी-मुन्नी को। इन्हें छाती से चिपकाकर प्यार तो कर लो।"

इन्दु पर अब रोने का दौरा पड़ा। वह ज़ोर-ज़ोर से हाय-हाय करती रोने लगी।

विद्यावती ने अन्दर आकर घुडक़ा, "चुप, नौटंकी करबे की ज़रूरत नायँ। आवाज़ न निकले अब।"

मुन्नी दूध के लिए मचल रही थी। उसे इन्दु की गोदी में दिया गया।

बहू की हालत से बेख़बर नत्थीमल यही बतलाने लगे कि बाज़ार में वो छोरे ना मिले होते तो बेबी-मुन्नी मिलती थोड़े ही।

विद्यावती ने पूछा, "कौन थे वो छोरे?"

"होंगे कोई, होली के हुरियार रहे," नत्थीमल ने लापरवाही से कहा। वे कलाकन्द के ऊपर का कागज़ और सूत निकाल रहे थे।

उन्होंने सबके हाथ में कलाकन्द की कतली रखी, "प्रभु की लीला गाओ। जो कुछ ऊँच-नीच हो जाता तो अपने कबी को मैं कौन जवाब देता।"

भग्गो ने कहा, "दादाजी लौंगलता लाते। हर बार कलाकन्द ही लाते हो।"

"सच्ची भग्गो, मोय कलाकन्द इत्तो भायै, मैं सोचूँ अपने पलंग पे कलाकन्द की बिछात करवा लूँ। इधर करवट लूँ तो इधर बुडक़ा मारूँ, उधर करवट लूँ तो उधर बुडक़ा मारूँ।"

पोतियों के मिल जाने की ख़ुशी में अपना विजयोल्लास भी शामिल कर लाला नत्थीमल इस समय शत-प्रतिशत प्रसन्न आदमी थे।

लेकिन विद्यावती के दिमाग पर उनका आलोचक सवार था। उन्होंने फिर पति से सवाल किया, "धुलैंडी तो कल है, हुरियार कहाँ से आय गये।"

अब लाला नत्थीमल को याद आया, "नईं, मैं भूल गयौ। पप्पू की दुकान पर एक और छोरे ने बतायौ। तभी लोग कंसटीले की तरफ भजे। मैं कहूँ जो एक होती तो वा आदमी लेकर भज गयौ हौंतो। दो छोरियाँ, दोनों मरखनी। उससे सँभरी नायँ।"

विद्यावती के दिमाग में गाँठ पड़ गयी। कई छोरों ने देखी हैं छोरियाँ। इसका मतलब बहू सीधी घर आने की बजाय गली-मुहल्ले में हँसती-बोलती आयी है। हे बंसीवारे इस घर की पत तुम्हारे ही हाथ है।

इतनी देर में भग्गो ने ब्यालू बना ली थी। पिता ने खाने से मना कर दिया। वे कलाकन्द खाकर तृप्त हो गये थे।

15

बीसवीं सदी के प्रथमाद्र्ध में हर मनुष्य के अन्दर जड़ता और जागरूकता का घमासान मचा रहता था। स्त्रियों के अन्दर और भी ज्याददा क्योंकि उस वक्त उन्हें शिक्षित करनेवाली संस्थाएँ कम और बन्धित करनेवाली अधिक थीं।

दोनों नतनी सही-सलामत घर आ गयीं, लालाजी उस तरह नहीं किल्लाये जिस तरह वह घर-गृहस्थी की छोटी-मोटी गड़बडिय़ों को देखकर किल्लाते थे, बहू अगले दिन पुरानी चाल से चौका सँभालने में लग गयी, फिर भी विद्यावती के दिमाग में बड़ी खलबली मची थी। इन्दु अकेली यहाँ से निकली, अकेली वहाँ से पलटी, बीच में का भवा का नहीं इसकी कौन सुनवाई है। आखिर छोरियाँ छोड़ीं तो कहाँ और मिली कहाँ जाकर। कोई को ख़बर नहीं। सिवाय दो एक शोहदों और हुरियारों के। उन्हें लगा बहू के पाँव भटक रहे हैं। लडक़ा पास नहीं, करें तो क्या करें।

ये ऐसी आशंकाएँ थीं जो न तो वे कमला बहन से कह सकती थीं न रामो से। विद्यावती इन्दु की रस-रूप से भरी टल्ल-मल्ल देही देखतीं और हैरान होतीं कि बहू अपनी भूख-प्यास कैसे सँभाल रही है। उन्हें अपने बेटे पर खीझ उठती जो सुख-चैन की जिन्दगी को लात मार बी.ए., एम.ए. की चक्करदार सीढिय़ों में अपनी नींद फ़ना कर रहा

था। अपने सिर पर पड़ी इस जिम्मेदारी के लिए उन्हें बड़ा अस्वीकार बोध होता। जिसकी चीज़ वह जाने, हम कहाँ तक चौकीदारी करें, उन्हें लगता। दो बेटियाँ तो पार लग गयीं तीसरी भगवती की फिक्र भी उन्हें रहती।

उन्होंने खोद-खोदकर बहू से पूछा, "इन्दु बेटी ज़रा याद कर तू किसे दे आयी थी बच्चे?"

इन्दु अब पूरे होश में थी। वह कहती, "किसी को नहीं। अपनी जान मैं दोनों को आपके धौरे लायी थी।"

वे फिर कहतीं, "पप्पू हलवाई का चौंतरा पड़ा था बीच में?"

इन्दु कहती, "हम कोई पप्पू-अप्पू को नायँ जानै। हम घर से निकरीं और घर में आय गयीं, बस्स।"

ऐसी सुच्ची अनसूया बहू पर सास गरजैं तो कैसे, बरसैं तो कैसे।

विद्यावती ने अब दोपहर को निकलना कम कर दिया। वे भग्गो और बेबी की मदद से कभी आमपापड़ सुखातीं, कभी अदरक पाचक चूर्ण बनातीं। ऊपर-ऊपर से विद्यावती अपने को घर में व्यस्त रखती लेकिन समय उनके अन्दर करवट लेने लगा था। सुबह के वक्त वे आँगन में तख्त पर फैलाकर अख़बार बड़े ध्यान से पढ़तीं। खासकर महात्मा गाँधी और कांग्रेस की ख़बरें। अगर अख़बार में महात्माजी के गिरफ्तार होने की ख़बर होती, विद्यावती दुखी हो जातीं। सारे दिन रह-रहकर दुख उनकी बातों से व्यक्त होता, "बताओ इत्ती जालिम है सरकार, डेढ़ पसली का गाँधीबाबा इनका क्या बिगाड़ै है जो मार उसे जेल में ठूँस दें।"

ऐसे दिन उनकी भूख मर जाती। नाम को मुँह जूठा कर उठ जातीं। हाँ पान की नागा न कर पातीं। कोठे में रखे पानी के तमेड़े में उनके पान के पत्ते पड़े रहते। सुबह छिद्दू पान दे जाता। विद्यावती कैंची से कतरकर एक पान की चार कतरन बना लेती। वे आले से पानदान लातीं और उलटे हाथ पर पत्ता रख, सीधे हाथ की पहली उँगली से उस पर चूना-कत्था लगाती, सुपाड़ी का चूरा रखतीं और पीले तमाखू की पाँच पत्तियाँ। उनके सीधे हाथ की पहली उँगली कत्थे से ऐसी रँग गयी थी कि नहाने के बाद भी वह उजली न होती।

अख़बार की तह खुली देखकर नत्थीमल का पारा सुबह ही चढ़ जाता। वे चिल्लाते, "कित्ती बार कही है मैंने, मोय ताजा अख़बार दिया कर, जे कुँजडिऩ कछु समझै नायँ।"

विद्यावती पिनक जातीं, "सँभलकर बोला करो। अख़बार पढऩे की चीज़ है खायबे की नईं। तुम्हें दाल दलहन का बाज़ार-भाव पढऩा रहता है सो पढ़ लो न। इम्मै गाली देने की कौन बात आ गयी।"

बात सही थी लेकिन लालाजी को गलत लगती कि उनसे पहले घर में अख़बार की तह खोल ली जाए। उन्हें विद्यावती में आ रहे बदलाव अजीब लग रहे थे। वह उनकी बातों का तार्किक जवाब देने लगी थी। उनके तेज़ दिमाग ने यह ताड़ तो लिया था कि अब यह पहले वाली पत्नी नहीं है जिसे वे फैल मचाकर बस में कर लें। लेकिन वे गाँधीबाबा को इसका श्रेय देने के लिए तैयार नहीं थे। उन्हें लगता यह भी कोई बात हुई, बैयर हमारी और काबू उस जेल में बैठे गाँधीबाबा का। सबसे पहले तो इसका चरखा-समिति में जाना छूटना चाहिए वे सोचते। उन्हें तसल्ली थी कि विद्यावती का पैर इस हाल में नहीं था कि वह ज्या-दा दूर चल-फिर ले। लेकिन उन्हें कुछ एहसास था कि चरखा मथुरा के घर-घर में पहुँच चुका है। चरखे का चक्कर ख़त्म करना आसान काम नहीं था। उनके घर में पत्नी के हाथ के कते सूत के तीन-चार खेस आ गये थे।

इधर कविमोहन की वजह से घर में सबको चाय पीने की आदत पड़ गयी थी। इन्दु उठकर सबसे पहले चाय बनाती। अख़बार के साथ चाय मिल जाने से लालाजी का दिमाग शान्त होने लगता। वे पाँचवें पृष्ठ की ख़बरों में डूब जाते। वाणिज्य-ख़बरें, बहुत ज्यादा नहीं छपती थीं। लेकिन इनसे बाज़ार की स्थिति का परिचय मिल जाता। गल्ला बाज़ार में एक-दो रुपये की घट-बढ़ तो सामान्यत: होती ही, कभी अँग्रेज़ सरकार की आयात-निर्यात नीति में फेर-बदल के कारण बाज़ार औंधे मुँह गिरा की ख़बरें होतीं। कभी सराफ़ा बाज़ार की ऊँचनीच से समस्त बाज़ार और मंडी के भाव प्रभावित हो जाते। 'सोना चटका, चाँदी लुढ़की' या ' हापुड़ मंडी की ज्या दा बिकवाली से दलहन वायदा औंधे मुँह गिरा' जैसी ख़बरों को वे बड़े ध्यान से पढ़ते। लालाजी को अफ़सोस होता कि अख़बार में बनिज समाचार और ज्यायदा क्यों नहीं छपते। पाँचवाँ पन्ना पढऩे के बाद वे पहले पृष्ठ पर आते। उसमें बड़े-बड़े अक्षरों में कांग्रेसी नेताओं के समाचार छपते। देश के किसी-न-किसी नगर में आज़ादी के मतवालों पर पुलिस के लाठीचार्ज और जनती की गिरफ्तारी की ख़बरें आतीं। लालाजी चिन्तित हो जाते, "गाँधीबाबा के चेलों की चले तो ये सारा बजार ही फूँक दें, ऐसे सिरफिरे हैं।"

कभी-कभी वकील शरमनलाल, लाला केशवदेव, खेमचन्द और ओमप्रकाश तिवारी के साथ लाला नत्थीमल मिल बैठते। ये सब उनके साथ आर्यसमाज पाठशाला की प्रबन्ध समिति के सदस्य थे। इनमें शरमनलाल सबसे शिक्षित और सचेत व्यक्ति थे।

लाला केशवदेव कहते, "सुराजियों ने आजकल बड़ी अराजकता फैला रखी है।"

खेमचन्द और नत्थीमल उनके समर्थन में सिर हिलाते। ओमप्रकाश का छोटा भाई खुद कांग्रेस में था। उन्हें सुराजियों की आलोचना हज़म न होती। वे कहते, "अराजकता अँग्रेज़ों ने फैलायी है, आप उलटी बात क्यों करते हो। कांग्रेस सुराजी सर पर कफ़न बाँधकर लड़ रहे हैं। आप चुपचाप बैठे आढ़त पर नोट गिनते रहोगे और हमारे कांग्रेसी वीर पटापट अँग्रेज़ी गोलियों से गिरेंगे।"

नत्थीमल कहते, "उन्हें हम कुछ नहीं कहते पर यह आये दिन बाजार बन्द करवाना तो शरीफों का काम नहीं है।"

ओमप्रकाश कहते, "अग्रवालजी कभी बाज़ार से ऊपर उठकर भी सोचो। इन नौजवानों की कुर्बानी देखो, लाठी-गोली के आगे निहत्थे खड़े हो जाते हैं। दिन सडक़ पर तो रात जेल में बिताते हैं।"

नत्थीमल पछताते कि वे इन लोगों के बीच आ गये हैं। यहाँ न नफे-नुक़सान की चर्चा होती है न महँगाई की।

>>पीछे>> >>आगे>>

शीर्ष पर जाएँ

दुक्खम्-सुक्खम्
ममता कालिया

अध्याय 3

इस बार कविमोहन अपना कुल सामान लेकर घर लौटा। लोहे का ट्रंक आधा कपड़ों से भरा था और आधा किताबों से। अलग से एक गत्ते की पेटी में भी किताबें थीं। बहुत-सी पत्रिकाएँ भी थीं और कुछ अख़बार। बहुत-सा सामान तो वही था जो वह घर से ले गया था। एक नयी चीज़ थी अलमूनियम की बालटी जिसमें रखकर कवि अपने चार-छः बर्तन लौटा लाया था, तश्तरी, भगौना, दो चम्मच, चाय की चलनी और दो कटोरियाँ।

विद्यावती ने कहा, "जे बालटी तो बहुत हल्की है, कै दिना चलेगी?"

"दो साल से तो मैं चला रहा हूँ, अभी साबुत है।" कवि हँसा।

घर में लोहे की भारी बाल्टियाँ थीं जिन्हें उठाकर पानी भरने में हाथ थक जाते; चोट लगने का अलग ख़तरा रहता। जीजी तो अपने पैर के कारण बोझ उठा नहीं सकती थीं। भग्गो और इन्दु ही पानी भरतीं। गुसलखाने के दरवाज़े पर एक ईंट की दहलीज़ थी जिससे पानी कमरे में न आये। एक बार भग्गो दहलीज से ठोकर खाकर गुसलखाने में गिरी। ज़मीन पर रखी टीन की साबुनदानी से उसके माथे पर चोट लग गयी जिसका निशान चौथ के चाँद-सा अभी भी दिखता था।

भग्गो ने कहा, "अब इसी बालटी से पानी भरा करेंगे, है न भाभी?"

हालाँकि यह तय माना जा चुका था कि कविमोहन दुकान पर नहीं बैठेगा, नत्थीमल बेटे के लौटने से प्रसन्न थे। उन्हें लगा जैसे घर का भार उन पर आधा रह गया। उन्हें भरोसा था कवि का एम.ए. का नतीजा अच्छा आएगा। अपनी तरफ़ से उन्होंने दो विद्यालयों में बात कर रखी थी साथ ही यह भी कहा था कि 'वह तो कॉलेज में पढ़ाना चाहे है, स्कूल की नौकरी जने करैगो कि नायँ।'

कवि की वापसी से इन्दु तो साक्षात कविता बन गयी। उसके चेहरे पर रंग लौट आया, चाल में लचक। उसने आँगन से तुलसीदल लेकर अदरक-तुलसी की चाय बनायी। सबने साथ बैठकर चाय पी, मठरी खायी। आगरे का पेठा और दालमोठ भी खायी गयी। जीजी की आदत थी चाय पीने के बाद प्याले की तली में चिपकी चीनी उँगली से

निकालकर चाटतीं। आज उन्होंने ऐसा किया तो नत्थीमल बोले, "भागमान इत्तौ मीठौ न खाया कर, डॉक्टर ने मना की थी कि नायँ।"

"डागडर का बस चले तो न मीठा खाऊँ न नोनो। वा डागडर तो ऊत है। वैदजी ने तो मना नायँ कियौ।"

"पेशाब की जाँच डॉक्टर ने की थी, उसी में खराबी निकली है, वैदजी को का मालूम।"

कवि चिन्तित हो गया, "जीजी को डायबिटीज़ हो गयी क्या? अब क्या होगा?"

जीजी बोली, "तू फिकर न कर। ये तो मेरा मीठा बन्द कराने के लिए बोला करें हैं। बाकी इन्हें कोई फिकर नायँ। जे पीठ पर इत्तौ बड़ौ फोड़ो हो रह्यै है। उसका इलाज नायँ करैं बस मीठे के पीछे पड़ जायँ।"

"डॉक्टर ने कहा था फोड़े-फुन्सी भी डायबिटीज़ से हो रहे हैं।"

जीजी उखड़ गयीं, "जे कहो इलाज तो तुम्हें करवानो नायँ। सारे दोष मेरे मूड़ पे डाले जाओ।"

कवि ने बात बदलने की गरज़ से कहा, "हमारे प्रोफेसर साब के यहाँ चाय ऐसे नहीं बनती। ट्रे में बाक़ायदा चाय का पानी, दूध, चीनी अलग-अलग आती है। जिसे जितनी चाहिए उतनी बनाए।"

"पत्ती रंग कैसे छोड़ेगी?" इन्दु ने पूछा।

"बिल्कुल छोड़ेगी। केतली में चाय की पत्ती डालो, ऊपर से खौलता पानी। फौरन उसे रुई की टोपी से ढक दो। दूधदानी में गरम दूध डालो और चीनीदानी में चीनी।"

बेबी और भग्गो अभी तक बैठी रिबन से खेल रही थीं। अचानक भग्गो ताली बजाने लगी, "लो बोलो चाय को भैयाजी टोपी पहनाएँगे।"

"टोपी नहीं उसे टी-कोज़ी कहते हैं। कागज़ ला तो काटकर दिखा दूँ।"

"हमें नहीं देखनी। आजा बेबी छत पर चलें।"

जीजी ने घुडक़ा, "टाँग तोड़ दूँगी जो छत पर गयी। बैठ यहीं पर।" भग्गो का मूड ख़राब हो गया।

सभी को कुछ अरसे पहले हुई दुर्घटना कसक गयी। सिवाय कवि के। कवि को पता ही नहीं था। इन्दु ने डर के मारे बताया नहीं कि पति एक-दो दिन को आते हैं। घर के बखेड़े सुनकर उनका ध्यान ही बँटेगा।

मुन्नी कुछ हफ्तों की थी, शायद छह। इन्दु ने सुबह के काम से खाली होकर मुन्नी के बदन पर तेल मला और दूध पिलाकर छत पर खटोले पर लिटा दिया कि थोड़ी देर में नहला देगी। अभी उसे दोपहर की कच्ची रसोई बनानी थी जिसका ज्यालदा ही झंझट होता था।

उसने सोचा वह जल्दी से अँगीठी जलाकर दाल का अदहन चढ़ा दे। उसने पास खेलती भग्गो से कहा, "भग्गो बीबी तुम ज़रा मुन्नी का ध्यान रखना, मैं अभी दो मिनट में आयी।"

चौके में इन्दु को पाँच मिनट से ज्या,दा लग गये। जब वह दुबारा पहुँची तो क्या देखा खटोले पर बिटिया तो है ही नहीं। इन्दु के मन में आया भग्गो कितनी बेअकल है, नंग-धड़ंग मुन्नी को गोदी लेकर बाहर निकल गयी है। उसने नीचे मुँह कर आवाज़ लगायी, "भग्गो बीबी।"

भग्गो अन्दर के कमरे से आयी, "भाभी जीजी ने मुझे चने पीसने को बुला लिया।

"मुन्नी कहाँ है?" इन्दु ने पूछा। उसका मुँह कुछ उतर गया।

"वहीं तो रही," भग्गो बोली, "हे राम मुन्नी तो यहाँ है ही नहीं।"

थोड़ी देर में घर भर छत पर इकट्ठा हो गया।

'मुन्नी कहाँ गयी?' 'मुन्नी कहाँ गयी?' सब एक-दूसरे से कहें और हैरान हों। सैंतालीस दिन की छोरी न बोले न चाले, गयी तो कहाँ गयी।

इन्दु पगलायी-सी घर भर में डोल रही थी। हाय उसके तन पर न कपड़ा न गहना, किसके मन में क्या आयी, कौन उठा ले गयौ।

जीजी ने तभी इधर-उधर नज़र दौड़ाई। सामने के तिमंजिले मकान की पतली मुँडेर पर एक बन्दर धीरे-धीरे चला जा रहा था। उसने मुन्नी को पेट से चिपका रखा था।

इन्दु बुक्का फाडक़र रो पड़ी, "हे हनुमानजी यह कौन परीक्षा ले रहे हो। जो ज़रा छूटी तो खम्म से गिरेगी तिखने से। हाय कोई मुन्नी को बचाओ।"

पड़ौस की रामो मौसी ने कहा, "जे तो भौत बुरी भई। पर येई सोचो साच्छात भगवान आकर ले गये बिटिया को। याही जनम में तुझे मोच्छ मिल गयौ और का चाही।"

इन्दु रोते-रोते बोली, "मोच्छ का मैं का करूँगी, मोय मेरी मुन्नी दिलाय दो। कौन जोन कब बन्दर वाय बुडक़ा मार दें, पटक दें या ओझल हो जायँ। हाय मुन्नी अब गिरी तब गिरी।"

तब तक आस-पड़ोस की कई औरतें इकट्ठी हो गयीं। लाल मुँहवाले बन्दर के लिए तरह-तरह के लालच सुझाये गये।

"कलाकन्द मँगाय के दोना खटोलिया पे रख दो। हनुमानजी मुन्नी दे जाएँगे, दोना ले जाएँगे।" एक ने कहा।

जीजी बोली, "जे मुन्नीए पटककर भाजै तो?"

"हाँ यह भी होय सकता है।"

"का पता कौन दशा करें।"

एक औरत ने कहा, "ऐसा करो अपनी मटरमाला उतारकर हनुमानजी को दिखाओ। बन्दरों को माला पहरिबे का बड़ा सौख (शौक) होता है। का पता मुन्नी को कलेजे से चिपकाकर आ जायँ और मटरमाला ले जायँ।"

इन्दु कोठरी में मटरमाला निकालने को भागी।

तब तक नत्थीमल भी ख़बर पाकर आ गये।

मुहल्ले में शोर हो गया लाला नत्थीमल की धेवती को बन्दर ले भगा और तीन तिखने की मुँडेरिया पर बैठा है।"

लोग गली में इकट्ठे होने लगे।

बन्दर अब कूदकर दो मंजिलों के बीच की पतली-सी पटिया पर चलने लगा। फिर वह कोने तक जाकर नुकीले कोने के मोड़ पर बैठ गया। बच्ची को उसने पेट से हटाकर वहीं लिटा दिया।

"मुन्नी मर गयी! हे भगवान!" इन्दु चीत्कार कर उठी।

तकरीबन सात-आठ छत-पार दो लडक़े सवेरे से पतंग उड़ाने में मशगूल थे। सयाने थे पर काम से लगे बंधे नहीं थे। इन्दु की चीत्कार से उनका ध्यान बँटा। छत से नीचे गली में नज़र डाली तो काफी लोगों का मजमा दिखाई दिया। बन्दर, बच्चा और हाय-तोबा देख-सुनकर वे समझ गये क्या हुआ है। बस वे डोर-लटाई फेंककर उधर चल दिये। उनमें से एक लपककर घर से केला ले आया।

बन्दर दाँत निपोरता हुआ आगे आया।

लडक़ा केला दिखाते हुए उसे दूसरे कोने तक ले गया, फिर उसके आगे मुँडेर पर केला रखा।

बन्दर उचककर मुँडेर पर आया और इनसानों की तरह छीलकर केला खाने लगा।

मुन्नी वहीं निचली मुँडेर के कोने पर पड़ी हुई थी।

दूसरा लडक़ा बाँस का आसरा लेकर छत पर से मुँडेर के नीचे उतर गया। वहाँ इतनी भी जगह नहीं थी कि एक पैर टिका ले। पर जान पर खेल गया छोरा। उसने मुँडेर की पतली जगह के दो कोनों पर बाँस टिकाया। टिकने के बाद भी बाँस थर-थर काँप रहा था। बिल्कुल नट की तरह वह छोरा बाँस पर पैर धरकर आगे बढ़ा और एक हाथ से बच्ची को उठा लाया। दूसरे हाथ से मुँडेर साधे वह ऊपर चढऩे का जतन करने लगा। तब तक लोगों ने ऊपर आकर उसके हाथ से बच्ची को लपक लिया और बगलई देकर छोरे को ऊपर उठा लिया। उसका साथी तब तक बन्दर को खदेड़ चुका था। लोगों ने छोरों की खूब पीठ थपथपायी।

इन्दु को कोई होश नहीं था वह क्या कर रही है। 'मुन्नी', 'मुन्नी' पुकारती वह सारी भीड़ को चीरती हुई गयी और बच्ची को झपटकर कलेजे से लगा लिया। उस पर चुम्मियों की बरसात करते हुए वह कभी रोये, कभी हँसे।

बेबी भी माँ के पास जाने को मचलने लगी।

जीजी ने तेज़ आवाज़ में कहा, "बहू अपनी छत पर आओ।"

"बड़ी खैर हुई जी। बंसीवाले ने बिटिया लौटा दी।" कहते हुए भीड़ तितर-बितर हो गयी।

इन्दु ने कई बार इधर-उधर ताका। वह एक नज़र उन लडक़ों को देखना, सिहाना चाहती थी जो उसकी बच्ची के रक्षक बनकर आये थे। पर लडक़े वहाँ दिखाई नहीं दिये।

इन्दु बच्ची को छाती से चिपकाये-चिपकाये नीचे उतर गयी। छाती में दूध घुमड़ रहा था। कमरे में दीवार की तरफ़ मुँह कर उसने स्तन मुन्नी के मुँह लगा दिया।

कुछ देर बाद उसकी एकाग्रता, सास-सुसर के बीच बहस के तेज़ स्वर से भंग हुई। बीच में सिटपिटाई हुई भग्गो खड़ी थी। जीजी ने छत से नीचे आते हुए कहा, "जाने कौन के छोरे रहे, बड़े हिम्मती जवान निकले।"

भग्गो बोली, "जीजी जो आचार्यजी खादी बेचते हैं, उन्हीं का छोटा भाई रहा वह केलेवाला छोरा। दूसरे की मैं न जानूँ कौन था।"

पीछे से नत्थीमल ने बेटी के सिर पर एक चपेड़ मारी, "तू क्या नगर नाईन है?"

जीजी ने कहा, "कान खोलकर सुन ले भग्गो, कल से तेरा छत पर जाना बन्द। आज बहू जैसी भागती डोली, हमें पसन्द नायँ। नंगे सिर, उघाड़े बदन सारी खलकत के सामने बावली-सी रोये-हँसे। भले घर की औरतों के लच्छन नहीं हैं ये।"

मुन्नी दहशत के मारे सो गयी थी।

इन्दु दूसरे कमरे में आयी। जीजी उसे देखकर चंडी बन गयीं। बोलीं, "बहुत हो चुकी आज की नौटंकी। तुझे लपककर छत फलाँदने की कौन ज़रूरत थी? आने दे बब्बू को आगरे से, उसे बताऊँगी। मुन्नी को कमरे में तेल मलने में कौन हरज होता। पर नहीं ऊपर छत पर जाना है। जब तेरा कमरा तिखने पर किया तब तूने भतेरी फैल मचायी कि वहाँ नहीं रहना।"

नत्थीमल ने कहा, "सारी गलती तुम्हारी है। तुम जो ये औरतों की मीटिंगों में बेटी को लेकर जाती हो उससे सबकी शर्म खुल रही है। तुम सूधे से घर बैठो तो बहू-बेटी भी बैठें।"

"तुम्हें बस मैं ही बुरी लगूँ। मेरा निकलना तुम्हें बुरौ लगै। मेरी इत्ती उमर हो गयी। न कहीं गयी न आयी। मैं तो या घर की चूल्हे की लकडिय़ों में ही होम हो जाती, वह तो कहो, गाँधीबाबा की सीख कानों में पड़ गयी।"

नत्थीमल ने फैसला सुनाया, "बड़ी आयी गाँधीबाबा की मनैती। जहाँ जाना है, इकल्ली जा, इकल्ली आ। भगवती सयानी हो रही है। वह तेरे साथ फक्का मारती नहीं डोलेगी।" लालाजी को पता था, पैरों से लाचार, विद्यावती अकेली कहीं जाएगी ही नहीं।

17

'चम्पा अग्रवाल कॉलेज' मथुरा का नामी शिक्षण संस्थान था। नगर के तीन-चौथाई बच्चे यहाँ से पढक़र उच्चतर शिक्षा के लिए बाहर जाते थे। कविमोहन को जब यहाँ पढ़ाने के लिए कच्ची नौकरी मिली, घर भर में ख़ुशी की लहर फैल गयी। बहुत दिनों के बाद लाला नत्थीमल के चेहरे पर भी हँसी आयी। उनकी छाती चौड़ी हो गयी। गली-

मुहल्ले में उनकी इज्ज़त बढ़ी। लडक़ा माट्टरसाब बन गया। यहीं, इसी गली में सुथन्ना पहने दौड़ता फिरता था, यही बल्ला-गेंद खेलता था और यहीं उसका ब्याह हुआ था।

इन्दु के तो पैर ज़मीन पर नहीं पड़ रहे थे। उसे लग रहा था जैसे उसे ख़ज़ाने की चाभी मिल गयी। एक तो अब कन्ता घर में आँखों के सामने रहेंगे, दूसरे कमाई भी करेंगे। अब उसे छोटी-छोटी ज़रूरतों के लिए सास के आगे हाथ नहीं फैलाना पड़ेगा।

कॉलेज लेक्चरर की सिर्फ एक सौ बीस रुपये महीने तनख़ा थी लेकिन उसका ओहदा समाज में बहुत ऊँचा था। विद्यार्थी अपने अध्यापक की इज्ज़त करने के लिए लेक्चरर को भी प्रोफेसर साब कहते। वे कॉलेज में तो पढ़ते ही, घर आकर भी मार्गदर्शन लेना चाहते। कुछ एंग्लोइंडियन शिक्षक भी वहाँ थे जिनके कारण सभी में अँग्रेज़ी के सही उच्चारण की होड़ लगी रहती।

पहली तनख़ावाले दिन घर में जश्न मना। दोपहर में विद्यावती ने खोमचेवाला बुलाकर आँगन में बिठा दिया। सबने जी भरकर चाट खायी। उसके बाद मलाई-बरफ़ की बारी आयी। लकड़ी की सन्दूकड़ी में मलाई-बरफ़ लेकर फेरीवाला आया तो इकन्नी की जगह चवन्नी-चवन्नी की बरफ़ मोल ली गयी। उस दिन लीला भी बच्चों समेत आयी हुई थी। सबने छककर चाट और मलाई की बरफ़ खायी। विद्यावती ने तृप्त होकर कहा, "छोरे ने सबके मुँह हरे कर दिये।"

लाला नत्थीमल ने कहा, "मेरी पूछो तो अभी एक कसर रह गयी।"

"क्या दादाजी?" कवि ने पूछा।

"कलाकन्द नायँ खवायौ।"

फौरन छह रुपये देकर छिद्दू को बृजवासी हलवाई के यहाँ दौड़ाया गया।

सबको पता था कि लाला नत्थीमल को कलाकन्द बहुत पसन्द था। एक ही बात बताते वे कभी थकते नहीं, "मेरौ मन करै कलाकन्द की बिछात अपने पलंग पे करवा लूँ।"

भग्गो ताली बजाकर हँसी, "दादाजी जो बिस्तर में चींटे लग गये तो?"

लालाजी बोले, "मैं बोई गाना सुना दूँगा जो रंगी धोबी ने जैकसन साहब को सुनाया था-

एक आँख बाकी कूआ कानी

एक में घुस गयौ चैंटो।

अरी मेरौ ससुर कनैटो।"

इस सुनी-सुनाई कहानी में सबकी दिलचस्पी थी। इसका आगे का हिस्सा इस प्रकार था कि रंगी धोबी डिपटी जैकसन साब के अर्दल में रहता था। जैक्सन साब रोज़ रात उसे बुलाकर गाना गाने के लिए हुक्म करते। रंगी

तरह-तरह के गाने सुनाता। डिप्टी साहब को भाषा समझ न आती लेकिन उन्हें रंगी का अन्दाज़ अच्छा लगता। कभी वे अपने सहयोगी से अर्थ पूछ लेते कभी बिना अर्थ जाने झूमने लगते। एक रात रंगी गाना सुनाने के मूड में नहीं था। डिप्टी साब का चपरासी आकर हुक्म सुना गया, "रंगी धोबी शाम सात बजे साहब-कोठी के सामने हाजिर हो।"

रंगी ने कई बहाने सोचे। उसने चपरासी से कहा, "जाकर कह दो रंगी धोबी के पास गाने खत्म हो गये।"

चपरासी ने कानों पर हाथ लगाकर तौबा की, "तू हमें बेफजूल मरवाएगा। अरे कुछ भी सुना दीजियो। गाने कभी खतम नहीं होते।"

रंगी की घरवाली मुन्नी ने कहा, "उनको कौन समझ आने हैं। पहले वाला गाना फिर से सुना देना।"

"तू साथ चलना। जहाँ मैं भूल जाऊँ तू सँभालना।" रंगी ने कहा।

शाम को धोबी-धोबिन साहब-कोठी पहुँचे। बड़ी देर बरामदे में बैठे राह देखते रहे। जैक्सन साब क्लब से न लौटे थे। रंगी ने दो एक बार भगेलू चपरासी से घर जाने की बात की। भगेलू ने उसे डरा दिया, "बच्चू, डिप्टी साब का किल्लाना सुना है। तेरी कुठरिया ही गिरवाय देंगे।"

जब जैक्सन साहब वापस लौटे रात घिर आयी थी। रंगी और मुन्नी ने खड़े होकर, बरामदे की ज़मीन छूकर उनका अभिवादन किया। साहब अन्दर चले गये। काफी देर बाद वे कपड़े बदलकर, ड्रेसिंग गाउन में बाहर बरामदे में आये और मूढ़े पर बैठ गये। उन्होंने गाने की फ़रमाइश की। उनके साथ मिस्टर हैरिसन भी थे जो थोड़ी हिन्दी समझते।

रंगी ने गले पर हाथ रखकर गला ख़राब होने की मजबूरी बतायी। जैक्सन साहब ने गर्दन हिलाई। हैरिसन इशारा समझकर बोले, "जैसा भी गाने सकता, गा।"

रंगी ने खरखरे गले से आवाज़ उठाई-

सहर के सोय रहे हलवाई

घर में सोय रही है लुगाई

कलाकन्द लायौ हूँ प्यारी

नैक कुंडी खोले री नारी।"

साहब लोग गर्दन हिला रहे थे। कुछ पता नहीं चल रहा था कि उन्हें गाना भा रहा है या नहीं। लेकिन आलम यह था कि रंगी के रुकते ही वे उसे और गाने के लिए कहने लगते।

रंगी ने एक-दो आधे-अधूरे भजन गाये, आरती गायी और जाने को उद्यत हुआ। साहब लोग उसे रोकने लगे। मुन्नी बोली, "चलो जाते-जाते एकाध बोल सुना दो, उनकी भी बात रह जाएगी।"

अब तक रंगी खीझ चुका था। उसने खड़े-खड़े गाया-

"मोहे मार-मार ससुरा गवावत है,

मोहे मार-मार ससुरा गवावत है।"

मुन्नी ने डरकर उसे बरजा। कहीं हैरिसन साहब की समझ में आ गया गाना तो गज़ब हो जाएगा। साहब लोग शायद नशे में थे। वे खुश होकर गर्दन हिलाते हुए रंगी को बढ़ावा दे रहे थे, "और गाओ, और गाओ।"

रंगी ने फिर गाया-

"मोहे मार-मार ससुरा गवावत है।"

मुन्नी ने फिर टोका।

रंगी चिढ़ गया। वह बोला-

"ऊ ससुरा तो समझत नाहीं,

ई ससुरी समुझावत है।"

कविमोहन इस नौकरी से पूरी तरह सन्तुष्ट नहीं था। उसे लग रहा था मथुरा में उसकी प्रतिभा का उचित मूल्यांकन नहीं हो सकेगा। उसका पढ़ाई का रिकार्ड बढिया था। उसकी तमन्ना थी कि उसे दिल्ली के किसी कॉलेज में नौकरी मिल जाए, वह भी पक्की।

जहाँ की भी नौकरी का विज्ञापन निकलता, कवि वहाँ अपना आवेदन-पत्र ज़रूर भेजता। इसके साथ ही उसकी कल्पना को पंख लग जाते। दिन और रात के स्वप्नों में कभी वह दिल्ली घूम लेता तो कभी बम्बई। ये शहर उसने देखे नहीं थे किन्तु अख़बारों, रेडियो और किताबों के ज़रिए इनकी तस्वीर उसकी कल्पना में खिंच चुकी थी। मथुरा उसे छोटी लगने लगी थी। उसे लगता छोटे शहर हमारे सपने भी छोटे कर देते हैं। किताबों की सीमाहीन दुनिया से यथार्थ की सँकरी धरती पर लौटना उसे हताशा से भर देता।

अगर कभी इन्दु घर में हुई किसी नोंक-झोंक का हवाला देते हुए शिक़वा करती, कवि एकदम भडक़ जाता, "जैसे ही मैं घर आऊँ तुम बर्र की तरह काटने दौड़ती हो, इससे तो मैं हॉस्टल में सुखी था।"

इन्दु सहमकर चुप हो जाती और घंटों न बोलती। बेबी चार साल की हो गयी थी और मुन्नी डेढ़ साल की। दोनों को सँभालना अकेली इन्दु के बस का नहीं था। जिस दिन विद्यावती चरखा-समिति नहीं जातीं, दोनों बच्चियाँ उनके गले का हार बनी रहतीं। वे बिस्तर पर बैठतीं तो उनकी गोद में बैठने की बेबी-मुन्नी में होड़ लग जाती। तब विद्यावती अपने एक-एक घुटने पर उन्हें बैठा लेती और बारी-बारी से उनकी नन्ही हथेली पर आटे-बाटे करती। दादी-पोतियाँ खूब खिलखिलातीं, घर में उजीता हो जाता।

कवि के समझाने पर भग्गो ने इधर फिर से पढ़ाई शुरू कर दी। पड़ोस की सहेली मीनू के साथ वह वृषभान सर की कक्षाओं में पढने़ जाती। साल के अन्त में वह मिडिल की परीक्षा देनेवाली थी। उसका दिमाग तेज़ था। थोड़े ही दिन ट्यूशन पढक़र उसे पिछला पढ़ा-सीखा याद आता गया और वह पोथियाँ रटने में जुट गयी।

लाला नत्थीमल परिवार में हो रहे बदलावों से पहले सशंकित होते, फिर विस्मित। अन्त में वे कहते, "कबी के रहने से सब होश में आय गये हैं। घर में दो मर्द हों तो औरतें कायदे से रहें।"

वे कवि से कहते, "बेटा इन माँ-बेटी के सिर पर से नैक गाँधीबाबा का भूत और उतार दे तो घर में सुखसम्पत आय। मेरे रोके से ये रुकैं नायँ।"

"कोशिश करूँगा," कवि ने अनमने भाव से कहा और पिता के सामने से हट गया।

शनिवार की दुपहर चरखा-समिति से भाईजी का चपरासी आकर सन्देशा दे गया कि इतवार नौ बजे ज़रूरी बैठक है, भाईजी ने सब चरखा-बहनों को बुलवाया है। इधर कई दिनों से विद्यावती का चरखा कातना कम हो रहा था। कवि के सामने चरखा लेकर बैठने में उन्हें झिझक लगती। बच्चों के उठ जाने के बाद विद्यावती का दिन उनकी कारगुज़ारियों के साथ बँध जाता। उधर भग्गो ने भी तकली चलाना कुछ कम कर दिया। उसका मन पढ़ाई में लगा हुआ था।

लेकिन भाईजी ने बुलाया है तो जाना तो ज़रूर पड़ेगा। माँ-बेटी ने आपस में तय कर लिया। जाना है। अगले दिन सुबह-सुबह गुसलखाने में खुटुर-पुटुर की आहट से कवि उठ बैठा।

तभी आँगन के नल का बैरी, हैंडपम्प बजने लगा, "नल बन्द करके नहीं सोतीं," कवि ने गुस्से से पत्नी से कहा।

इन्दु ने समझाया, "माताजी और बीबीजी नहा रही हैं।"

दोनों ने खादी की धोती पहनी और ताँगे का इन्तज़ार करने लगीं।

इस बीच बाबा जाग गये।

इतनी सुबह पत्नी और बेटी को नहा-धोकर तैयार देखकर उनका मूड उखड़ गया, "कौन कमाई करने जा रही हैं माँ-बेटी?" उन्होंने ताना कसा।

विद्यावती ने तुनककर जवाब दिया, "कमाई और दुकान से अलग भी कछू होय सकत है। हम जाय रही हैं चरखा-समिति। भाईजी ने सबको बुलवाया है।"

"कोई ज़रूरत नहीं। चुप्पे से घर में बैठो। सयानी लडक़ी को लेकर कहाँ भचकती फिरोगी?"

"धीरे बोलो, छोरियाँ जग जाएँगी। घंटे-दो घंटे में अभाल आ जाएँगे। एक बार जाकर देख लें। क्या पता बापू का कोई नया सन्देसा आया हो?"

"बलिहारी है तुम्हारी अकल की। सारी कांग्रेस को छोडक़र गाँधीबाबा तुम्हीं को सन्देसा भेजेंगे।" कहते हुए लालाजी निबटने के लिए जाजरू में घुस गये।

इन्दु ने सुबह का काम धीमी रफ्तार से किया। सास की निगाहों की पहरेदारी आज मौजूद नहीं थी इसलिए आज काम तो था, तनाव नहीं था। बल्कि चाय बनाते हुए इन्दु गुनगुना भी रही थी : 'ए री मैं तो प्रेम दिवानी मेरा दरद न

जाने कोय।'

आठ बजे तक बेबी-मुन्नी भी उठ गयीं। बेबी ने फौरन कहा, "दादी पास जाना," और सारे घर का चक्कर लगाया। यहाँ तक कि उसने तख्त के नीचे भी दादी को ढूँढ़ा। इन्दु उसे लाख समझाये कि दादी और बुआ बाहर गयी हुई हैं, बेबी को विश्वास ही न हो। मुन्नी भी उसके पीछे-पीछे 'आदी, आदी' करती डोलती रही।

इन्दु परेशान हो गयी। उसने कविमोहन की तरफ़ इसरार से देखा। आज इतवार था और कवि कुछ देर बच्चियों को पकड़ ही सकता था।

कवि ने कभी ठुनकता हुआ बच्चा नहीं सँभाला था!

इस वक्त वह लेटकर तॉलस्ताय का उपन्यास 'अन्ना कैरिनिना' पढ़ना चाहता था। वैसे भी जब से वह हॉस्टल से लौटा था उसे बच्चों के हर वक्त हंगामे से चिढ़ हो रही थी।

"मेरी चाय ऊपर दे जाना," कहते हुए वह दूसरी मंजिल पर चला गया।

ससुर ने बहू की मुश्किल पहचानकर कहा, "लाओ बहू बच्चों को मुझे दे दो, तुम नाश्ते में बेड़मी और आलू की तरकारी बनाओ।"

यह उनके यहाँ हर इतवार का नाश्ता था। इन्दु ने रात को ही दाल भिगो दी थी। उसने एक कटोरी में दालसेव डालकर बेबी-मुन्नी को दादाजी के तख्तत पर पहुँचाया। फिर वह आँगन में रखे सिल-बट्टे पर पिट्ठी पीसने में लग गयी।

तभी दो लड़कियाँ भागी-भागी आयीं और घर का दरवाज़ा जोर से खटखटाने लगीं।

इन्दु धोती से हाथ पोंछती हुई उठी और दरवाज़ा खोला। लड़कियों की साँस फूल रही थी। एक ने कहा, "यह लाला नत्थीमल की कोठी है न।"

"हाँ, कहो कौन काम है? माताजी और बीबीजी तो सबेरे ही चली गयीं चरखा-समिति।" लड़कियों की खद्दर की पोशाक देखकर इन्दु ने कहा।

"सो तो पता है। बात यह है कि माताजी बीच बाज़ार में बेहोश हो गयी हैं। डॉक्टर बुलाया गया है पर आपमें से कोई साथ चले तो अच्छा होगा।"

तभी नत्थीमल कमरे से बाहर आकर दहाड़े, "बहू, पूछो इन छोरियों से यहाँ का करबे को आयी हैं।" वे लड़कियों की बात सुन चुके थे।

इन्दु लपककर दूसरी मंजिल से कवि को बुला लायी। माँ की बेहोशी की बात सुनकर वह एकदम घबरा गया। पता चला आज होली दरवाज़े पर विदेशी वस्त्रों की होली जलनी थी। सब जनी वहीं इकट्ठी हुई थीं। अचानक विद्यावती को दौरा पड़ गया। दाँत भिंच गये और हाथ-पैर ऐंठ गये।

"हम तो भागी-भागी आयी हैं। आप जल्दी से चलें।"

"कौन घर से पूछकर निकरी हैं जो हम जायँ," लाला नत्थीमल बमके, "कबी तू जा तेरी मइया है। और उस आफत की पुडिय़ा भग्गो को भी गरदनिया देकर लेकर आ।"

कविमोहन ने अपनी साइकिल दौड़ा दी।

वह पिता के दुर्वासा पक्ष से परिचित था। उनसे बहस में उलझना बेकार था।

जब तक वह होली दरवाज़े पहुँचा, विद्यावती होश में आ चुकी थी। राधे बहनजी की गोद में सिर रखे वह खुली आँखों से चारों तरफ़ अनबूझ ताक रही थी। भगवती पास बैठी पंखा झल रही थी।

कवि को देखते ही भीड़ छँट गयी। भाईजी ने कवि के अभिवादन का उत्तर देते हुए कहा, "लगता है माँजी पर धूप का असर हो गया। राधे बहनजी, रामो मौसी और लोहेवाली ने कहा, "जनै सुबह कुछ खायौ भी था कि निन्ने मुँह चली आयीं?"

"हमने तो चा भी नायँ पी कि देर न हो जाय" भग्गो बोली।

"गोपालजी बैद को दिखा दिये हैं। बाने अमरतधारा दी और कहा, 'आज ठंडी-ठंडी चीज़ें देना इन्हें'।"

कवि को देख विद्यावती का कलेजा भर आया। सब कहने लगे, "देख लो छोरा महतारी की ख़बर पर भजा चला आया; विद्यावती के पुन्न हैं और का।"

ताँगेवाले को समझाया गया, "भइया धीमे चलाना, मरीज को ले जाना है।"

भगवती ने माँ को सँभाला। कवि साइकिल पर साथ-साथ चला।

घर का दरवाज़ा उढक़ा हुआ था। धक्का देने पर खुल गया। माँ को तख्त पर लिटा दिया गया। इन्दु तो नहीं दिखी, बेबी-मुन्नी 'दादी आ गयी, दादी आ गयी' करती उनके पास चक्कर लगाने लगीं।

भगवती चौके में पानी लेने गयी तो देखा इन्दु अँगीठी पर बेड़मी छान रही है और दादाजी सामने पट्टे पर बैठे खा रहे हैं।

"आय गयीं, जीजी ठीक हैं अब?" इन्दु ने पूछा।

भग्गो ने लोटे में पानी भरा और बिना जवाब दिये चल दी। उसका जी भन्ना उठा।

उसने माँ के कान में बताया, "चौके में खवाई चल रही है। गरम-गरम बेड़मी खाई जा रई है।"

माँ-बेटी को कसकर भूख लगी थी लेकिन विद्यावती को बुरा लगा कि उसकी तबीयत पूछे बिना लालाजी खायबे को बैठ गये।

कवि ने आँगन में खड़े होकर ज़ोर से कहा, "दादाजी थोड़ी देर बाद खा लेते तो का हो जातौ। जीजी आय गयी हैं।"

"आय गयीं तो का करैं, ढोल बजवायँ?" पिता ने कहा। उनकी आवाज़ में गहन उपेक्षा थी। पिता शायद खा चुके थे। थाली में हाथ धोकर धोती की खूँट से पोंछते हुए बाहर आये। वे तृप्त और प्रसन्न लग रहे थे। सीधे कमरे में जाकर देखा विद्यावती के तख्तू पर बाल-बच्चों की महफिल लगी है। "आ गयीं नौटंकी दिखाय के।" उन्होंने कहा।

विद्यावती कुछ नहीं बोली। भग्गो ने कहा, "दादाजी जीजी को दौरा पड़ गया, मैं तो इत्ती डर गयी कि पूछो मति।"

"अपनी मैया से पूछो कौन ज़रूरत रही जाने की। वो तो कबी चलौ गयौ मैं तो कब्बी न जातौ। मर जाती तो वहीं फूँक-पजार आतौ।"

"तुम तो येई चाहो मैं मर जाऊँ," विद्यावती ने कहा। "तब भी तुम चौका में बैठ खायबे को खाते रहते।"

अब तक कढ़ाही उतारकर इन्दु भी आ गयी थी। कवि ने उसे झिडक़ा, "जीजी वहाँ मरासु पड़ी थी और तुम्हें पकवान बनाने की जल्दी थी।"

इन्दु ने मुँह फुला लिया, "हमें बता दो हम कौन का कहा माने, कौन का नहीं। दादाजी ने कही तो हमने कढ़ाही चढ़ा दी।"

लालाजी ने फ़ैसला सुनाया, "आज गयी सो गयी, अब मैं कभी तुम दोनों को गाँधीबाबा के नाम पर नंगनाच करते ना देखूँ नहीं वहीं खोदकर गाड़ दूँगा।"

मुँह फुलाये-फुलाये ही इन्दु ने सबकी थाली लगायी। बच्चों को खिलाया। जूठे बरतन नल के नीचे खिसकाकर वह अपनी कोठरी में जाकर पड़ रही।

सास की बड़बड़ चालू हो गयी।

"ये महारानीजी खटपाटी लेकर पड़ गयीं। दोनों छोरियाँ मेरे मूड़ पर। जूठे बरतन भग्गो के मत्थे। भरतार कमाने लगा तो नखरा देखो सातवें आसमान पर। भग्गो तू भी भिनकने दे आज चौका, इसको चंडी चढ़ी है तो आपैई उतरेगी।"

कवि को माँ की बड़बड़ सुनाई पड़ी तो वह भडक़ गया, "जीजी उस बेचारी के पीछे क्यों पड़ी हो। इनसान ही तो है। लेटने का जी कर गया होगा।"

विद्यावती भूल गयी कि सुबह उन्हें दौरा पड़ा था। वह हाथ नचाकर बोली, "लुगाई के लिए तू मो पै किल्लावे गौ। मैंने क्या कही जो तेरे मिरचें लग गयी।"

भग्गा बोली, "भैयाजी आप ऊपर जाओ, आपका दिमाग ठिकाने नायँ।"

कविमोहन को गुस्सा आया। माँ-बहन पर तो वह हाथ उठा नहीं सकता था, उसने अपना कुर्ता आगे से चीर डाला, "का करूँ, कलेजा चीरकर दिखाऊँ मैं तुम्हारा छोरा हूँ। मैंने लाख मनै करी, मेरे पाँव में बेड़ी बाँध दी। कहो तो उसे जिन्दी जला दूँ, तुम्हें चैन आये।"

विद्यावती लडक़े के गुस्से से सहम गयी। उसने कहा, "तू हमपे क्यों गुस्से कर रह्यै है।"

कवि ने हताश स्वर में कहा, "यह मेरा गुस्सा नहीं, मेरा वैराग्य है।"

वास्तव में कवि का मन विरक्त होता जा रहा था। कॉलेज में आठवीं से दसवीं के छात्र एकदम मूढ़ थे। उन्हें पढ़ाने के लिए एम.ए. डिग्री की नहीं, सिर्फ एक शब्दकोश की ज़रूरत थी। घर रणक्षेत्र बना हुआ था जहाँ हर व्यक्ति अपने को योद्धा और दूसरों को दुश्मन समझता था। इसलिए जब उसे दिल्ली के कॉमर्स कॉलेज से लेक्चररशिप की इंटरव्यू का बुलावा आया, उसने खैर मनाई। टिन के छोटे बक्से में उसने अपने प्रमाण-पत्र, अंकपत्र और दो जोड़ी कपड़े सँभाले और दिल्ली के लिए रवाना हो गया।

परिवार का ताना-बाना उसे जंजाल दिखाई दे रहा था। हॉस्टल से आये अभी कुछ ही दिन हुए थे, उसे लग रहा था कि इस माहौल में उसका दम घुट जाएगा। माता-पिता की जकड़बन्दी से घबराकर जब भी वह पत्नी की ओर उन्मुख होता वह पाता इन्दु तो स्वयं शिकायतों का पुलिन्दा बनी बैठी है। कवि का मन होता वह धुएँ की तरह इन सबसे ऊपर उठ जाए और तभी वापस आये जब वे उसके लिए तरस जाएँ।

18

लीला की तबियत इन दिनों भन्नायी हुई थी।

पति के घर आने न आने से तो उसने बहुत पहले समझौता कर लिया था। वह चक्की का हिसाब जियालाल से ले लेती और तीनों बच्चों का ध्यान रखती। बिल्लू-गिल्लू को उसने आदर्श पाठशाला में भरती करवा दिया था। दिन के एक घंटे वह उन दोनों को अपनी देख-रेख में पढऩे बिठाती। छोटा दीपक भी अब साल भर का होने जा रहा था।

पिछले दिनों घर में बक्सों की साज-सँभाल में लीला को लगा जैसे बक्सों में कपड़े कुछ कम हो गये हैं। उसने बड़े बक्से का सामान निकाला। उसका शक़ सही था। उसके भारी लहँगे, ओढऩी, जम्पर उसमें थे ही नहीं। बीचवाले बक्से में से भी उसकी टिशू और रेशम जरी की साडिय़ाँ ग़ायब थीं।

लीला ने बहुत याद करने की कोशिश की। ऐसा कोई मौका ही नहीं आया जब उसने अपने कपड़े किसी को दिये हों।

मन्नालाल आठ दिन बाद वृन्दावन से लौटे। उनकी आँखों में काजल की कलौंस नज़र आ रही थी और बाल लम्बे व बेतरतीब लग रहे थे।

क़ायदे से लीला को पहले उनकी राजी-खुशी लेनी चाहिए थी।

इतना सन्तुलन उसके स्वभाव में नहीं था।

उसने सीधे कहा, "सुनो जी हमारे लहँगे, जम्पर, ओढऩी बक्से में से ग़ायब हो रहे हैं। तुमने तो नहीं देखे।"

मन्नालाल दीपक को गोदी में कुदा रहे थे। खेलते-खेलते उन्होंने जवाब दिया, "नहीं तो।"

"फिर कहाँ गये?" लीला की आवाज़ में खीझ और शक था।

मन्नालाल उखड़ गये, "इसका क्या मतलब है। मैं आकर खड़ा हुआ नहीं कि तू खिबर गयी।"

"अरे हमारे कपड़े धरती निगल गयी कि बक्सा लील गयौ, हम का बताएँ। ऐसे भारी लहँगे, ओढऩे जाने कहाँ चले गये।"

"अच्छा मान लो हम ले गये तो क्या कर लेगी तू। हमने दिये थे, पीहर से तो लायी नायँ थी।"

"इससे क्या अब तो वो मेरे थे। सुहागिनों के कपड़े खोना बड़ा अशुभ होता है।"

"देख कन्हाई रास मंडली के तम्बुअन में बड़ी जोर की आग लग गयी थी। बेचारन का सब सामान फुँक गयौ। बड़े गोसाईं तो छाती पीट के रोबै लगे। पाँच-पाँच जगह का न्योता था। मैंने कही तम्बू-कनात तुम सँभारो, बाकी कपड़े-गहने हम इकट्ठा करें।"

लीला चीखने लगी, "मेरे गहने-कपड़े सब गोसाईं को दे आये तुम?"

"किल्लाओ मति। हमने बनवाये, हमने लुटा दिये। हम फिर बनवा देंगे।"

"व्यापार पर कोई दिना ध्यान देते नहीं हो, कहाँ से बनवाओगे?" लीला का मुँह फूल गया।

"इत्ते दिना बाद आया हूँ, कोई खातिर-बातिर नहीं बस तू विलाप करने बैठ गयी।" मन्नालाल बोले।

लीला ने मुँह फुलाये-फुलाये चाय बनायी। खाना बनाने तक भी उसका मुँह सीधा नहीं हुआ था।

गिल्लू उसके पास आकर बोला, "अम्मा हमारी गुल्लक में 110 रुपय्या है, वो तुम लेके कपड़े ले आओ। मैं अभाल गुल्लक तोड़ रहा हूँ।"

लीला ने उसे कलेजे से सटा लिया, "मैं तेरे से नहीं रूसी हूँ गोलू।"

शाम तक, घर का तनाव झेलना मन्नालाल के लिए दूभर हो गया। चक्की पर जाकर उन्होंने जियालाल से अब तक हुए पिसान, पोंछन का हिसाब समझा और घर आ गये। उन्होंने पिछले कोठे में रखी काठ की आलमारी में से लोहे की एक सन्दूकची निकाली। लीला के पास ले जाकर बोले, "भागमान ये सँभारो अपने कुनबे की जमा पूँजी। कायदे से बरतोगी तो सौ साल चलेगी।"

लीला का गुस्सा अभी उतरा नहीं था। उसने हाथ से बरजा, "मेरे मूड़ पर क्यों धर रहे हो, जाके दे दो गोसाईंजी को।"

मन्नालाल की बरदाश्त जवाब दे गयी। उन्होंने दीवार पर हाथ मारकर कहा, "बेवकूफ कहीं की, गोसाईं का मेरौ यार लगे है। एक आदमी लुट-पिट गयौ, मैंने बाकी मदद कर दी तो तुम्हारौ म्हौंड़ो सूज गयौ। गोसाईं नौटंकी करवानेवाला आदमी, वह भला इन अशरफियों का क्या करेगा।"

अशरफी शब्द सुनकर लीला का सख्तक चेहरा नरम पड़ा। उसने कहा, "देखें कहाँ हैं अशरफी?"

मन्नालाल ने सन्दूकची का पल्ला उठाया तो जैसे कमरे में झाड़-फानूस जल उठे। सन्दूकची अशरफी, हीरे, मोती और सोने की ईंटों से ठसाठस भरी थी।

लीला मगन मन अशरफियाँ हाथ में लेकर देख रही थी।

मन्नालाल बोले, "जाऊँ नेक राधेश्याम कथावाचक की कथा सुन आऊँ। तुम साँकल लगा लेना। मैं खडक़ा करके खुलवा लूँगा।"

लीला को उनकी बात अजीब नहीं लगी। इस तरह सात-आठ बजे शाम वे अक्सर कथा सुनने चल देते थे।

ख़ज़ाने से जी-भर खेलने-गिनने के बाद लीला ने सन्दूकची वापस पति की आलमारी में बन्द कर दी। अब कपड़ों के चले जाने की चिलक कुछ कम हो गयी थी।

"चलो, वो सब पुराने लत्ते थे। मैं अब कौन लहँगा पहनती हूँ। रही रेशम-जरी की साडिय़ाँ तो सब पुरानी चाल की थीं। एक दिन इनके साथ जाकर नये कपड़े लाऊँगी।" लीला ने मन-ही-मन कहा।

यह नौबत ही कहाँ आयी। मन्नालाल, उस दिन के निकले लौटे ही नहीं। रात भर लीला पति का इन्तज़ार करती रह गयी, पति का कहीं अता-पता ही नहीं मिला।

सवेरे उसने सबको दौड़ाया, बच्चे, मुनीमजी। जिससे पूछा उसने यही कहा, "वे यहाँ नहीं दिखे शाम को।"

छोटे दीपक को गोद में दबाकर लीला धूप में हर जगह घूम आयी। बुज़ुर्गों ने कहा, "लली घबरा मत, जो रिसाने हैं तो गुस्सा उतरने पर लौट आएँगे। तू घर-दुआर लेकर बैठ।"

बिल्लू ने घर के मन्दिर में किशन कन्हाई की मूरत के पीछे हाथ डालकर देखा। वह पहली बार रो पड़ा, "अम्मा दाऊ अब नहीं आने के। उनकी गुटका रामायण, भागवत दोनों नहीं हैं।"

लीला भी चीत्कार कर उठी, "हे भगवान मेरे बच्चन को यह कौन-सी सजा दीनी। मैं तो लड़ी भी नहीं थी। मैंने तो बस येई पूछी थी घर की चीज-बस्त कहाँ गयी।"

उसे याद आया कई बार मन्नालाल कहते थे, "ज्यादा गुस्सा तो मोय दिला मति, सुन लई न। जो मोय गुस्सा आ गयौ तो उठा अपनी गुटका रामायण, भागवत, कहीं जाकै बाबाजी हो जाऊँगौ।"

पर कल शाम तो ऐसा कुछ हुआ ही नहीं था।

क्या बुरा किया जो अपने कपड़ों के बारे में पूछ लिया।

दिन कल-परसों होते गये। मन्नालाल की कहीं से न चिट्ठी-पत्री आयी न ख़बर।

हारकर लीला ने बच्चों के हाथ माँ को सन्देशा भेजा।

सब घबरा गये। शहर की हर दिशा में लोग दौड़ाये गये। मन्नालाल कहीं हों तो मिलें।

छिद्दू को वृन्दावन भेजा गया। वह पूरी परकम्मा कर आया, मन्नालाल कहीं नहीं मिले।

कविमोहन अभी दिल्ली से लौटा न था।

19

कवि ने अब तक किताबों में जिस दिल्ली के विषय में पढ़ा था वह पुरानी दिल्ली थी। पुरानी से भी ज्याबदा प्राचीन, मुगलकालीन। नये समय में दिल्ली में इतने मौलिक स्थापत्य, भवन और मार्ग बन गये थे कि अपनी दो आँखों में उसे सँभाल पाना उसे मुश्किल लग रहा था। उसे इतना पता था कि उसके नरोत्तम फूफाजी फतहपुरी में अख़बारों का स्टॉल लगाते थे। स्टेशन पर उतर वह फतहपुरी चल दिया। काफ़ी माथापच्ची के बाद पता चला कि नरोत्तम फूफाजी ने तो कब का यह धन्धा बन्द कर दिया, अब तो उनका लडक़ा लड्डू चौराहे पर मजमा जुटाकर बालजीवन घुट्टी की दवा बेचता है। किसी तरह कविमोहन बुआ के घर तक पहुँचा। बुआ की आँखें मोतियाबिन्द से प्रभावित थीं। वे कवि को पहचान नहीं पायीं। कवि ने आखिरी उपाय आज़माया। उसने बुआ के पास जाकर कान में कहा, "काना बाती कुर्र।"

बुआ कवि के बचपन में लौट गयीं जब इन्हीं तरीकों से नन्हे कवि को हँसाया करती थीं। बुआ पहले हँसीं फिर रोयीं और अन्त में कवि को गले लगा लिया।

फूफाजी ने नीचे से लाकर खस्ता कचौड़ी और आलू की रसेदार तरकारी का नाश्ता करवाया और घर के एक-एक सदस्य की कुशल मंगल पूछी।

कवि ने बताया उसे मंगलवार को आर्टस एंड कॉमर्स कॉलेज में इंटरव्यू देना है।

"तू इत्तो बड़ौ हौं गयौ कि दूसरों को पढ़ावैगौ," बुआ खुश होकर बोलीं।

दिन भर में कवि ने पाया कि बुआ एक भी मिनट आराम नहीं करतीं। चौके से फ़ारिग होते ही वे खरबूज़े के बीज छीलने बैठ जातीं। एक सीले अँगोछे में मोया लगे बीजों को बाँस की छोटी नहन्नी से दबाकर वे गिरी अलग करतीं और एक ही थाली में गिरी और छिलका डालती जातीं। शाम छः बजे तक यह काम करने के बाद वे उठतीं। फूफाजी थाली फटककर छिलके और गिरी अलग कर लेते और दोनों को अलग पोटली में बाँध देते। कवि का अन्दाज़ा सही था कि यह काम दिहाड़ी का था। फूफाजी देर रात तक प्रूफ़ देखने का काम करते। कवि को लगा इस परिवार में कुल तीन सदस्य हैं, तीनों ने मिलकर घर की अर्थव्यवस्था को साधा हुआ है। सब एक-दूसरे के प्रति कितने संवेदनशील हैं।

लड्डू देर शाम लौटकर आया। कन्धे पर काले रंग का बड़ा-सा झोला था। उसने झोले में से कत्थई रंग की एक थैली निकाली। सारी रेजगारी गिनने पर

35/- रुपये निकली।

कवि ने कहा, "कमाई तो अच्छी हुई है पर मेहनत बहुत ज्यासदा है।"

लड्डू हँसा, "भैया जोर-जोर से बोलने से गला बैठ गया है।"

बुआ ने अदरक-तुलसी की चाय बनायी। कवि ने कहा, "अच्छा-ख़ासा नाम है तुम्हारा विजेन्द्र। यह लड्डू नाम कैसे पड़ गया। क्यों बुआ क्या इसे लड्डू बहुत पसन्द है?"

बुआ बोलीं, "अरे नहीं, जब ये पैदा भया घर में यही बात हुई लड्डू बँटने चाहिए छोरा भयौ है। पर इसकी रही तबियत खराब।"

"पीलिया हो गया था इसे।" फूफाजी ने याद किया।

बस इसी परेशानी में आजकल-आजकल होती रही और लड्डू बँटे ही नहीं। घर में सबने कहा, "यह लड्डू गोपाल सुस्थ हो तो लड्डू बँटें। बस तभी से इसे लड्डू कहने लगे।"

"पढ़ाई बीच में छोड़ दी क्या?" कवि ने लड्डू से पूछा।

लड्डू ने सिर झुका लिया।

फूफाजी बोले, "पढ़ाई से इसका जी उचाट हो गया। एक बार सातवीं में फेल हो गया था। तभी से इसने ठान ली अब स्कूल नहीं जाना। पूछो इससे कित्ता समझाया।"

बुआ उसे बचाने लगीं, "ठीक है वोही किस्सा लेकर न बैठ जाया करो।"

"ऐसे ही भग्गो की पढ़ाई छूट गयी थी। मैंने फिर से शुरू करवाई है। तू भी लड्डू मिडिल का इम्तहान प्राइवेट दे ले। मैं तैयारी करवा दूँगा।" कवि ने कहा।

रात में बारजे पर खड़े होकर देखने पर फतहपुरी की सडक़ चौड़ी लग रही थी जबकि दिन में सँकरी। दिन भर यहाँ से इतने रिक्शे, ताँगे और ठेले, साइकिल गुज़रते। एकदम पास में खारी बावली बाज़ार था, मेवे मसाले का बड़ा व्यापार अड्डा। इसीलिए फतहपुरी के इस मकान में हर समय मसालों की गन्ध आती रहती थी, जैसे मिर्चों की धाँस हवा में समायी हो। लड्डू ने दिखाया, "यह देखिए सीधी सडक़ यहाँ से लाल किला जाती है। लाल किले से आपको दरियागंज की बस मिल जाएगी।"

दस बजे तक सब नींद में लुढक़ गये। कवि को देर तक नींद नहीं आयी। मन उद्विग्न था। यह महज़ एक नौकरी का इंटरव्यू नहीं था जिसका सामना उसे करना था। यह एक नयी जीवन-पद्धति का भी घोषणा-पत्र था। उसे लग रहा था, संयुक्त परिवार में यदि सामंजस्य न हो तो वह पागलख़ाना साबित होता है। एकल परिवार की कल्पना से उसे रोमांच हो आया। वह ऐसा घर बनाएगा जहाँ पिता की दाँताकिलकिल का दख़ल न होगा। माँ के लिए उसे लगाव महसूस हो रहा था, उन्हें पास रखकर वह उनका इलाज करवाए, उन्हें आराम दे पर इसमें अभी बहुत वक्त था। पहले नौकरी तो मिले।

कवि को यह सोचकर ग्लानि हो रही थी कि बुआ ने कितने चाव से उसके सारे घरबार की बात की जबकि उसने अपने घर में बुआ का जिक्र आते ही कलह-कोहराम देख रखा था। दादाजी ख़ुद अपनी बहन को पसन्द नहीं करते थे, जिसकी वजह आज तक उसे पता नहीं चली। अब उसे ऐसा लग रहा था कि उनकी शादी के बाद यह नापसन्दगी और बढ़ गयी थी। दरअसल फूफाजी अपने घर के विद्रोही लडक़े थे जिन्होंने हिंडौन में पत्थर के

पुश्तैनी व्यापार से इनकार कर अपने लिए नया रास्ता चुना। वे बनना चाहते थे पत्रकार लेकिन समुचित डिग्री और सम्पर्क न होने की वजह से अख़बारों के हॉकर बनकर रह गये। सुबह चार बजे रोज़ उठकर उस क़ारोबार को भी सँभाल न पाये और अब इधर-उधर के छुट्टा कामों से गुज़ारा चला रहे थे।

यही सब याद करते, न जाने कब कवि की आँख लग गयी।

20

सवेरे नौ बजे जब बुआ के हाथों, कविमोहन, दही-बूरा खाकर इंटरव्यू के लिए निकला उसका मन उत्साह और ऊर्जा से भरा हुआ था। दरियागंज में आर्टस एंड कॉमर्स कॉलेज ढूँढने में ज़रा भी दिक्कत नहीं हुई। इंटरव्यू शुरू होने में अभी दस मिनट शेष थे।

हॉल में ग्यारह उम्मीदवार उपस्थित थे। इनमें कवि के अलावा और दो लडक़े सेंट जॉन्स आगरा के थे। इनमें से नदीम ख़ान से उसका परिचय मात्र था जबकि कुबेरनाथ कुलश्रेष्ठ की गिनती तेजस्वी छात्रों में रही थी। लेकिन चपरासी ने सबसे पहले पुकारा, "अपूर्व मेहरोत्रा।"

बेहद स्मार्ट और खूबसूरत यह अभ्यर्थी दिल्ली विश्वविद्यालय का ही था और बाकी लडक़ों से पता चला कि इसकी नियुक्ति की काफ़ी सम्भावना थी। दिल्ली में स्थित कॉलेज, दिल्ली विश्वविद्यालय के पढ़े हुए अभ्यर्थियों को ज्यामदा तरजीह देते थे। ऐसे में आगरा विश्वविद्यालय का नम्बर डाँवाडोल ही लग रहा था।

अपूर्व मेहरोत्रा का साक्षात्कार आधा घंटे चला। जब वह बाहर आया, काफ़ी प्रसन्न लग रहा था। बाकी अभ्यर्थी उसे घेरकर खड़े हो गये, "क्या पूछा उन्होंने?", "सेलेक्शन बोर्ड में कितने सदस्य हैं?", "कोई खूसट और ख़ब्ती तो नहीं है?" जैसे सवाल लडक़े दाग रहे थे और अपूर्व मेहरोत्रा बड़ी खुशमिज़ाजी से जवाब दे रहा था।

अँग्रेज़ी वर्णानुक्रम में कवि का नम्बर जब तक आया, दोपहर के एक बज चुके थे।

क्लर्क ने आकर सूचना दी, "साहब लोग लंच करनेवाले हैं, दो बजे से इंटरव्यू फिर चलेगा। जाइए, आप सब भी कैंटीन में चाय पी लीजिए।"

चाय के बहाने चहलक़दमी हो गयी। कॉलेज की बड़ी-सी इमारत, चौड़े गलियारे और लम्बे व्याख्यान-कक्ष देखकर रोमांच हो आया कि अगर हमारा चयन हो गया तो इन्हीं गलियारों से होकर हम व्याख्यान-कक्ष में पहुँचा करेंगे। कवि मन-ही-मन पिछले दिनों का पढ़ा-लिखा घोख रहा था। प्रकट वह नदीम और कुबेर के साथ बैठा हुआ था। नदीम कुबेर से कह रहा था, "मेरे अब्बा तो दयालबाग में जमे हुए हैं, इसलिए मैं आगरे में पढ़ा, तुम दिल्लीवाले होकर आगरे क्या करने गये थे? यहाँ कहीं दाखिला नहीं मिला क्या?"

कुबेर ने आँख दबाकर कहा, "मत पूछो दोस्त। इस बात का एक रोमांटिक इतिहास है।"

कवि को इस बात से झेंप आ रही थी कि उसके हमउम्र ये सहपाठी अभी अविवाहित थे जबकि वह दो बच्चों का बाप बन बैठा था। परिवार की कचर-पचर में पडक़र वह वक्त से पहले बड़ा हो गया और वक्त से पहले ही बूढ़ा हो जाएगा।

"आगरे के पानी का असर है या ताज के साये का, वहाँ जो भी आता है मजनूँ बनकर आता है।"

"मेरा मामला ताज के साये का नहीं, मुमताज़ की मुहब्बत का था। उसी के पीछे-पीछे पहुँच गया।"

एक गहरी नि:श्वास लेकर कविमोहन ने घड़ी देखी। दो बजने ही वाले थे। 'एक्सक्यूज़ मी' कहकर वह उठ खड़ा हुआ। उसे पता था इन दोनों का बुलावा उसके बाद आनेवाला था।

सब कुछ प्रत्याशित कहाँ हो पाता है। हम लाख योजना बनाएँ एक एक्स-फैक्टर होता है जो हमारे गणित को ध्वस्त करता चलता है।

जैसे ही कविमोहन ने इंटरव्यू-कक्ष में प्रवेश किया, पैनल के एक सदस्य ने तड़ से उस पर सवाल फेंका, "मिस्टर कविमोहन वॉट डू यू थिंक इज़ मोर क्रूशल टु इंडिया एज़ ए नेशन, वर्ल्ड वॉर टू ऑर फ्रीडम स्ट्रगल? (कविमोहन तुम्हारे विचार से भारतवर्ष के लिए कौन-सा मसला ज्या,दा अहम है, द्वितीय विश्वयुद्ध अथवा स्वाधीनता का संघर्ष।)

ऐसे सवालों का सामना रणनीति से नहीं नीति से करना होता है। उसी के अधीन कवि के मुँह से निकला, "सर, फ्रीडम स्ट्रगल।" (सर, स्वाधीनता संघर्ष)।

"क्यों?"

"क्योंकि द्वितीय विश्वयुद्ध एक नकारात्मक आन्दोलन है जिससे हमारी गुलामी की जड़ें और मज़बूत होंगी जबकि आज़ादी एक सकारात्मक संघर्ष है।"

"अगर जनता में संघर्ष चेतना न हो तो आज़ादी का संघर्ष क्या कर लेगा।"

"अस्तित्व और संघर्ष-चेतना समानान्तर विकास पाते आये हैं।"

एक सदस्य ने वार्तालाप अँग्रेज़ी साहित्य की तरफ़ मोडने का प्रयत्न किया, "ई. एम. फॉस्टर के इस बयान से आप कहाँ तक सहमत हैं कि उपन्यास में पात्र टाइप होते हैं अथवा विशिष्ट।"

कविमोहन को ई. एम. फॉस्टर की पुस्तक 'एसपेक्ट्स ऑफ़ द नॉवल' पूरी कंठस्थ थी। उसने चाल्स डिकेन्स का हवाला देकर इस टिप्पणी की व्याख्या कर दी।

कवि के उच्चारण, ज्ञान और शब्द भंडार से सभी सदस्य प्रभावित हुए।

एक बुज़ुर्ग सदस्य ने पूछा, "आप साहित्य के सवालों से ओत-प्रोत हैं। किन्तु आपको यहाँ बी.ए., बी.कॉम. के विद्यार्थियों को अँग्रेज़ी का सामान्य पाठ्यक्रम पढ़ाना होगा। आपके अन्दर बहुत जल्द हताशा पैदा हो जाएगी, तब आप क्या करेंगे।"

"मैंने सोच-समझकर यहाँ के लिए आवेदन किया है। अँग्रेज़ी भाषा का ज्ञान प्रसारित करना भी ज़रूरी काम है।"

एक सदस्य ने डब्ल्यू. बी. येट्स पर प्रश्न पूछे।

कवि के जवाबों से सभी सदस्य प्रभावित हुए।

बाहर आने पर कवि को बताया गया कि उसका इंटरव्यू पूरे चालीस मिनट चला। नदीम ख़ान ने कहा, "हमने सोचा तुम अन्दर जाकर सो गये हो।"

सभी अभ्यर्थियों के इंटरव्यू होने के बाद भी परिणाम घोषित होने में देर थी।

पाँच बजनेवाले थे। उकताकर लडक़ों ने ऑफिस में जाकर पूछा, "हम रुकें या जाएँ?"

क्लर्क ने बताया, "कल फिर आप सबको ग्यारह बजे आना होगा?"

"क्यों?"

"इस कॉलेज की यही परम्परा है। यहाँ दो बार इंटरव्यू देना होता है। एक्सपर्टस ने आपको जाँच लिया। अब मैनेजमेंट के लोगों से मिलिएगा।"

सबका मूड उखड़ गया। इसका मतलब था कॉलेज में मैनेजमेंट का हस्तक्षेप बहुत ज्यारदा है। दो-एक अभ्यर्थी तो एकदम बिदककर बोले, "रखना है तो घर पर ख़बर कर दें। हम तो दो-दो बार इंटरव्यू देने से रहे।"

कवि के पास नखरा दिखाने की गुंजाइश नहीं थी। हाँ, उसे यह ज़रूर लगा कि उसे बुआ की मुश्किल एक दिन के लिए और बढ़ानी पड़ेगी।

दो-दो बार इंटरव्यू का सरंजाम सुनकर फूफाजी को ज़रा भी ताज्जुब नहीं हुआ। उन्होंने कहा, "भई यह भी लालाओं का कॉलेज है। यहाँ तो चपरासी भी रक्खा जाता है तो उसे लालाजी के सामने पेश होना पड़ता है। शिक्षक रखने से पहले तो वे दो बार ठोक-बजाकर ज़रूर देखेंगे।"

कवि ने चिन्तित होकर कहा, "अब इस दूसरी इंटरव्यू की क्या तैयारी करनी होगी?"

"कुछ नहीं, तुम चुप ही रहना। यह जो तुम्हारी जाति है न वही फ़ैसला करवाएगी। आर्टस एंड कॉमर्स कॉलेज में वैश्य भाइयों का बोलबाला है।"

कवि को बड़ा अजीब लगा। मथुरा के चम्पा अग्रवाल कॉलेज में भी उसे यही पता चला था कि उसे नियुक्ति महज़ इसलिए मिली क्योंकि वह अग्रवाल जाति का था। अर्थात वह नियुक्ति उसके अब तक के पढ़े-गुने पर ज़ोरदार तमाचा थी। दिल्ली जैसे बड़े नगर में भी यही तर्क कारगर होगा, इसकी उसने कल्पना भी नहीं की थी।

कविमोहन विस्तृत आकाश की तलाश में दिल्ली आया था। उसने चाहा था अपनी योग्यता के बल पर वह एक झटके में न सिर्फ नौकरी वरन् जीवन-शैली बदल डाले। उसे याद आया चम्पा अग्रवाल कॉलेज के इंटरव्यू के वक्त प्रबन्धक भरतियाजी ने कहा था, "अपने लाला नत्थीमल का छोरा है क्या नाम कविमोहन। भई इससे तो पढ़वाना ही पड़ेगा।"

चम्पा अग्रवाल कॉलेज के अनेक आन्तरिक पचड़ों के बीच, पुराने अध्यापकों के विवाद और संवाद में कभी उस जैसे रंगरूट की बात शान्ति से सुन ली जाती तो सिर्फ इसलिए कि वह प्रबन्धकजी की नवीनतम पसन्द था। किन्तु इस तथ्य पर इतराने से ज्यालदा वह घबराने लगा था। उसे लगता ज़रूर शहर का पिछड़ापन इस मानसिकता के लिए जिम्मेदार है। कवि के सपनों का भारत जातिवर्ग रहित समतामूलक समाज देखने का आकांक्षी था।

21

एक-से-एक शानदार अभ्यर्थियों के बरक्स जब कविमोहन का चयन आर्टस एंड कॉमर्स कॉलेज में प्राध्यापक पद के लिए हो गया, कुछ देर तो ख़ुद कवि को भी विश्वास नहीं हुआ। कुल तीन पंक्तियों का नियुक्ति-पत्र था, "आप कॉलेज में इंग्लिश लेक्चरर की नियुक्ति के योग्य पाये गये हैं। आपका वर्तमान वेतनमान 120-20-240 तथा अनुमन्य भत्ता होगा। आप सोलह जुलाई की पूर्वाह्न आकर कार्यभार ग्रहण करें।"

कवि ने इन्दु को पुकारा, "इनी सुनो ज़रा।"

इन्दु रसोई में थी जहाँ आवाज़ नहीं पहुँची। अलबत्ता बेबी ने आकर कहा, "पापा ता बात है?"

उमंग से कवि ने कहा, "हमारी बिबिया दिल्ली के स्कूल में पढ़ेगी, क्यों बिबिया।"

बेबी ने मुँह बनाया, "नईं, दिल्ली गन्दी, बेबी यहाँ पढ़ेगी, यहीं।"

तभी उसने माँ को दूध का गिलास हाथ में लिये आते देखा और वह बाहर की तरफ़ भागी।

कवि ने इन्दु से नयी नौकरी के बारे में बताया। उसकी निस्तेज आँखें चमकने लगीं, "हमें भी दिल्ली ले चलोगे न?"

कवि ने कहा, "तुम्हारे बिना तो मैं एक दिन भी नहीं रह सकता।"

तभी जीजी कमरे में आयीं, "बहू तुझे ज़रा फिकर नहीं है। वो खाने के लिए चौके में कब से आये बैठे हैं और तू यहाँ बातें बना रही है।"

"आयी" कहकर इन्दु बेमन से उठी।

कवि चारपाई पर अधलेटा सोचता रहा, माता-पिता को यह ख़बर कैसे दी जाए।

ख़बर का धमाका बेबी ने ही कर डाला जब शाम चार बजे मलाई बरफ़ बेचनेवाले की आवाज़ पर वह दादी के कन्धे पर झूल गयी, "दादी बलप थायेंगे, दादी बलप।"

दादी धोती की खूँट से खोलकर अधन्ना निकालने ही जा रही थी कि लालाजी ने कहा, "छोरी की नाक बह रही है, बरफ़ खिलाकर इसे बीमार करनौ है का।"

दादी वहीं रुक गयी। उन्होंने बेबी को फुसलाया, "बरफ़ गन्दी, बेबी दालसेव खाएगी।"

बेबी ज़मीन पर बैठकर पैर रगडऩे लगी, "बरफ़ अच्छी, दादी गन्दी।

दादी ने झूठे गुस्से में उसे थप्पड़ दिखाया, "जिद्द करेगी तो बायें हाथ का खेंच के दूँगी।"

बेबी ऊँचे सुर में रोने लगी, "दादी गन्दी। जाओ तुम्हें हम दिल्ली नईं ले जाएँगे।" रोती-रोती वह माँ के पास चली गयी।

विद्यावती के कान खड़े हो गये। दोपहर में बेटे-बहू के बीच खुसपुस हुई बात का ध्यान आया। उसने पति से कहा, "सुन रहे हो, बेबी का कह रही है। जनै दिल्ली जाय रहे हैं कबी लोग।"

लालाजी भी धक् से रह गये। हालाँकि उन्हें इतनी ख़बर थी कि कवि ने कई जगह अपनी अर्जी भेज रखी है, इकलौते बेटे के पिता की तरह उन्हें विश्वास था कि खूँटे से बँधे-बँधे बछड़ा थोड़ी उछल-कूद भले कर ले पर खूँटा तुड़ाकर भागने की नौबत नहीं आने की। वे अपना विशाल तिमंजिला मकान देखते, तिज़ोरी में रखे चौड़े-चौड़े नोटों की गड्डियों का ध्यान करते, गृहस्थी में रची-बसी अपनी बहू के हाथ का बना भोजन करते, उन्हें लगता सुखी जीवन की यही तस्वीर है। नौकरी को वे हीनतर काम समझते। उनका ख़याल था दो-चार साल में ही कवि नौकरी से इतना अघा जाएगा कि सूधे रस्ते दुकान सँभालनी शुरू कर देगा।

विद्यावती का उतरा हुआ मुँह देखकर उन्हें अपने अन्दर कुछ पिघलता-सा लगा। उन दोनों के जीवन में कवि और उसका गृहस्थ चौमुख दीये की तरह आलोक भर रहा था, उन्हें इस वक्त एक साथ इसका अहसास हुआ। इसमें अगर बच्चों की पें-पें, मैं-मैं थी तो उनकी किलकारियाँ भी थीं। इनके बिना घर का कोई स्वरूप उनके ज़ेहन में दूर-दूर तक नहीं था।

उन्होंने विद्यावती से कहा, "तू बैठ चुप्पे से। मैं कबी से बात करूँगौ। बहू पे किल्लाने की ज़रूरत नहीं है समझी।"

"तुम सोचो, मैं बहू पे किल्लाती रहूँ हूँ।" विद्यावती ने दुखी होकर कहा।

"मोय कबी से बात कर लेने दे, मेरे सामने बोले तो जानूँ।"

"कहीं रात-बिरात बोरिया-बिस्तर बाँध के न चल दें।" विद्यावती ने अपना खटका ज़ाहिर किया।

"बावली है का," लालाजी प्रेम से बोले, "इत्तौ सहज नायँ बाप-महतारी के कलेजे पे, पाँव धर के निकर जाना। मैं सबेरे बात करूँगौ छोरे से।"

सारी रात माँ-बाप करवटें बदलते रहे। विद्यावती को बड़े अपराध-बोध से वे समस्त घटनाएँ याद आती गयीं जब वे नगण्य बातों पर इन्दु से कलह में पड़ी थीं। लालाजी को भी ग्लानि होती रही कि उन्होंने कभी अपने इकलौते का वैसा लाड़-प्यार नहीं किया जैसा करना चाहिए था; पता नहीं क्यों वे सींग लड़ाने में ज्यावदा भिड़े रहे। फिर भी कवि ने कभी उनसे मुँहजोरी नहीं की। उनकी पसन्द की लडक़ी से ब्याह करवाया, जितनी किफ़ायत या कंजूसी से उसे रखा वैसे रह लिया। उनके साथ के लालाओं के छोरे कैसे छैलचिकनियाँ बनकर घूमने निकलते हैं, चुन्नटदार तनजेब के कुरते पहरते हैं, उन्होंने अपने बेटे को मोटा झोटा जो पहराया, उसने पहरा। बहू भी देखो कैसी आज्ञाकारी है। कभी मुँह खोलकर एक छल्ला तक नहीं माँगा।

ये समस्त स्वप्न केवल रात्रिकालीन चित्रपट थे जो सुबह सवेरे की महाभारत में न सिर्फ विलीन हो गये वरन् क्षत-विक्षत भी हुए जब लालाजी ने चाय के समय कवि से पूछा, "क्यों लाला, हमने बेबी से सुनी तू दिल्ली-बिल्ली जाये वारा है का।"

तनावग्रस्त तो कवि था ही। नयी नौकरी जॉयन करने में मात्र तीन दिन बचे थे और यहाँ जाने की सूरत और साइत ही समझ में नहीं आ रही थी।

चाय का प्याला एक तरफ़ सरकाकर वह बोला, "आपको पता ही है मैं इंटरव्यू देने दिल्ली गया था। वहीं से बुलावा आया है।"

"हमें तो तूने बतायौ ही नायँ।"

"अभी कल तो चिट्ठी आयी है। और क्या डुग्गी पिटवाकर बताऊँ।"

"तू बहू और बच्चन को भी ले जायगौ?"

कवि चुप रहा। मन में उसने कहा, 'नहीं उन्हें तुम्हारी चाकरी के लिए छोड़ जाऊँगा, यही न।'

"कित्तौ मिलेगौ?"

कवि ने बताया।

"जे बता, यहाँ चम्पा अग्रवाल कॉलेज के सवा सौ रुपये तोय काट रहे हैं जो परदेस जाकर टक्कर मारेगौ।"

"यहाँ के दूने मिलेंगे, फिर ओहदे की भी बात है। वह पक्की नौकरी है।"

"जे तो सोची तूने जे नहीं सोची, यहाँ मकान, खाना, कपड़ा सब घर की घर में है। दिल्ली में खर्चा सँभलैगा!"

कवि ने बिना माता-पिता की तरफ़ देखे कहा, "जहाँ नौकरी हो वहाँ सौ रास्ते निकलते हैं।"

लाला नत्थीमल को बड़ा तेज़ गुस्सा आया। वे चिल्लाये, "ससुरा हमारा जाया हमीं से बर्राय रहा है, हमने कह दी हमारी मर्जी के बगैर कहीं जाने की जरूरत नायँ।"

"मैं तो हामी भर चुका हूँ, तुम्हें जो करना है कर लो," कवि ने अन्तिम फ़ैसला सुना दिया।

अब विद्यावती से नहीं रहा गया। उसने कहा, "तू बहू और बेबी-मुन्नी को भी लिवा ले जायगौ?"

"और क्या?"

दादाजी ने माथे पर हाथ मारकर कहा, "जन्मी थी औलाद। अबे घनचक्कर। अभी न वहाँ तेरा घर न दुआर, बीवी-बच्चे क्या धरमशाला में रहेंगे?"

यह तो कवि को सूझा ही न था। अब तक हमेशा अपने घर में रहा या हॉस्टल में। मकान ढूँढना उसकी कल्पना में था ही नहीं।

माँ ने कहा, "मैं तो कहूँ यहीं करता रह नौकरी।"

"तुम समझती नहीं हो जीजी। ये कच्ची नौकरी है। किसी भी दिन मुझे निकाल बाहर करेंगे ये लोग।"

"कैसे निकालेंगे, मैं भरतियाजी से बात करूँगा।" पिता ने कहा।

"मुझे किसी भरतियाजी और पिताजी की मेहरबानी नहीं चाहिए। मैं वहीं काम करूँगा जहाँ मेरी पढ़ाई-लिखाई की क़द्र हो।"

"तो कान खोलकर सुन ले। जाना है तो अकेला जा। बहू और बच्चन को हम नायँ भेजने के। महीना-दो महीना रहकर तेल देख, तेल की धार देख। फिर मकान ढूँढ़। इसके बाद भैया ले जा जिसे ले जाना हो।"

माँ ने धोती की खूँट मुँह में दबाकर बिसूरा, "पहले मेरा किरियाकरम कर जा लाला बाके बाद जहाँ जाना है जा। छोरियाँ तो सुखी नहीं, छोरा दिल्ली में ठोकरें खायगौ, बंसीवारे हमें उठायलो।"

"जीजी मेरा कलेजा दरकाओ ना। एक बार घर मिल जाए तो मैं तुम्हें भी ले जाऊँगौ।"

"यों कह तू अलग संसार बसा रह्यै है। इत्ती बड़ी कोठी में मैं मसान का भूत बन के डोलूँगौ।"

"भगवती आपके धौरे है।"

"वह कै दिना की।" सहसा नत्थीमल को ध्यान आया। वे बोले, "च्यों रे कविमोहना तूने एक बार नई पूछी तेरी लीला जीजी का क्या हाल है। मैंने तुझे चिट्ठी लिखी ही, मन्नालालजी घर नायँ लौटे।"

"मैं तो हरिद्वार, ऋषिकेश, कनखल सारी जगह फिर आया। उनका कोई अता-पता नायँ लगौ। महामंडलेश्वरन से भी पूछी। सबने कही या नाम का कोई जातक आया ही नहीं।"

"अरे तो बाय धरती लील गयी या आसमान निगल गयौ, पता तो चलै। तेरी बहन दिन-रात कलप रही है।"

"जब उसका ब्याह आपने जीजा से किया तब आपने किसी से पूछा था। अपनी मर्जी से सब सरंजाम किया। नतीजा सामने देख लिया न।"

"तेरा मतलब हमीं गधे हैं।"

"मेरी सारी बहनों के बेमेल ब्याह किये आपने। अपने आगे किसी की चलने ना दी।" असह्य आक्रोश से कवि का बदन थरथरा रहा था। विद्यावती सन्न् भाव से पिता-पुत्र का वार्तालाप सुन रही थी। कवि ने गुस्से से कहा, "ओर सुन लो दादाजी, जैसे ही मुझे घर मिलेगा मैं जीजी के साथ-साथ भग्गो को भी ले जाऊँगौ। पड़े रहना अकेले अपनी तिमंजिली कोठी में।"

पिता ने लडक़े की तरफ़ से मुँह मोडक़र विद्यावती की तरफ़ कर लिया, "देख लिया तूने क्या औलाद जनी है। अभी कोई कमाई नहीं है तब तो ये ऐसी पत उतार रहा है। जब इसके पास चार पैसे हो जाएँगे तब देखना। तुझे तो बहू की कहारिन बनाएगा। जाई मारे ले जाने की कह रहा है। इस बत्तमीज पे गुस्सा तो मुझे ऐसी आ रई है कि ससुरे के हाथ में एक दरी-तकिया देकर बाहर कर दूँ, नईं चइये हमें ऐसी औलाद। पर बहू और बच्चों को तो मैं सडक़ पर नहीं खड़ा करूँगौ नहीं तो लोग जगहँसाई करेंगे कि लाला नत्थीमल से अपना कुनबा सँभारा नहीं जा रहौ। जा भइया जहाँ तेरे सींग समाएँ। समझ ले तेरा-मेरा तिनका टूट गयौ।"

"जीजी सुन लो, बाप होकर ये कैसी-कैसी बोल रहे हैं।"

विद्यावती हताश स्वर में बोली, "मोय तो तूने बोलबे काबिल छोड़ाई नायँ कबी।"

कवि धम्-धम् पैर पटकता ऊपर चला गया।

>>पीछे>> >>आगे>>

शीर्ष पर जाएँ

दुक्खम्-सुक्खम्
ममता कालिया

अभी सारी गृहस्थी उठाने की बात इन्दु के मन में नहीं थी। उसने रात में एक ट्रंक में अपने और बच्चों के कुछ कपड़े अचक से जमा लिये थे कि अगर पति अचानक कहें चलो तो हाथ-पैर न फूल जाएँ। कवि की सफेद पैंट और दो कमीज़ें मैली लग रही थीं। कमरे के बाहर पानी की बाल्टी रखकर वह उन्हें धो रही थी। यहाँ बैठकर नीचे की आवाज़ें उसके कानों में पड़ रही थीं और वह मन-ही-मन यही मना रही थी कि चिल्ल-पौं इत्ती न बढ़ जाए कि पड़ोस की तोते अपनी छत पर आकर पूछने लगे, "भाभी सबेरे-सबेरे मिरचें कूटकर खिला दीं क्या?"

थोड़ी देर को कवि मूढ़े पर अवसन्न-सा बैठा रहा, दोनों हाथों में अपना सिर थामे।

कपड़े धोना बीच में छोडक़र इन्दु कमरे में आ गयी।

कवि ने थकी आवाज़ में कहा, "इनी सुनो, कल सुबह की गाड़ी से मैं अकेला जाऊँगा। जॉयन करने के बाद पहला काम मकान ढूँढऩे का करूँगा। तुम हिम्मत और समझदारी से यहाँ रहना। तुमसे दादाजी का कोई बैर नहीं है। शिकायतें तो सारी मुझसे हैं।"

इन्दु का मुँह उतर गया। नये शहर और जीवन के उसने अनगिनत स्वप्न देख डाले थे। उसे लगा दिल्ली जैसे बड़े शहर में मकान ढूँढऩा असम्भव काम होगा।

कविमोहन ने कहा, "तुम दिल क्यों छोटा करती हो। मैं अपने साथ काम करनेवालों से कहूँगा, कोई-न-कोई रास्ता निकल ही आएगा।"

अकेली जान की थोड़ी-सी तैयारी थी। रात में निपटा ली गयी। बक्सा तो वही छोटावाला था, तकिये के साथ दो चादरें लपेट लीं। हाँ, किताबों भरी एक पेटी ज़रूर भारी थी।

अगले रोज़ मुँहअँधेरे उठकर कवि ने अपना सामान नीचे उतारा और दायें कमरे में प्रवेश कर माँ के पैर छुए। माँ ने रुलाई अन्दर भींचकर कहा, "जा बेटा, राजी-खुशी रहना, बच्चन की फिकर न करना।"

पिता काफी रात करवटें बदलने के बाद सो पाये थे। लेकिन उनकी आँख खुल गयी।

"कबी तू जा रहा है! चिट्ठी डालियो। और सुन वहाँ पे जो जरा भी फजीहत हो तो वापस आ जइयो। या घर में अच्छा-बुरा सब तेरा ही है भैया।"

बच्चे अभी सो रहे थे। भगवती की नींद खुल गयी। वह दरवाज़े से लगकर सुबकने लगी।

माँ ने घुडक़ा, "इसमें रोबे की कौन बात है। छोरा बड़ी नौकरी पर जा रहा है।"

पिता बोले, "बेटे आते-जाते रहना।"

इन्दु से तो रात भर कवि ने विदा-राग सुना था। उसका धीरज रह-रहकर टूटता और आँखों की कोर से झरने लगता। कवि ने कहा भी था, "मैं तो पहले भी आगरे में था, अब इतनी बेचैन क्यों हो रही हो!"

इन्दु ने कहा था, "तब तो तुम्हारी मजबूरी थी।"

कवि ने ढाँढस बँधाया था। इन्दु ने उससे मनुहार की थी, "इस बार सलूनो पर हम आगरे जरूर जाएँगे, हमें कोई रोके ना, हाँ नहीं तो।"

जब ताँगा आ गया और अब्दुल ताँगेवाला सामान उठाकर ताँगे में रखने लगा, कवि ने धीरे से कहा, "राखी पर ये बच्चों के साथ मायके जाए तो जा लेने देना, जीजी।"

मन-ही-मन विद्यावती खिंच गयीं। इन्दु के अन्दर ये परिवर्तन उन्हें ग्राह्य नहीं थे। पहले वह पति या श्वसुर से कुछ कहना चाहती तो सास के माध्यम से अपनी बात पहुँचाती। इधर जब से कवि घर में रहने लगा था वह सीधे कवि से या दादाजी से बात कर लेती। उसका सिर पर पल्ला भी अब ऊँचा रहने लगा था। ऊपर से गज़ब यह कि सास से मनवानेवाली बातें वह पति के ज़रिये उनके सामने रखने लगी थी।

आज तो यह दुखी है, कल से इसे ठीक करूँगी, विद्यावती ने तय किया।

इन्दु अपने कमरे की तरफ़ चली तो लाला नत्थीमल ने कहा, "बहू रात का दूध बचा हो तो मोय चाय पिला दे, नेक सी कुटकन भी देना।"

भगवती बोली, "दादाजी मैं बनाऊँ।"

"चाय तो बस इन्दु जाने है बनानी या फिर कवि।"

"भैयाजी लाटसाहबों वाली चाय बनाते हैं, मोपै नायँ बने वैसी चाय।"

इन्दु ने स्टोव जलाकर जल्दी से चाय बनायी और कटोरी में दो मठरी सहित ससुर को दी।

विद्यावती ने करवट पलटकर पूछा, "मेरे लिए बनायी?"

"नैक-सा दूध रहा जीजी। अभी दूधवाला आता होगा। ताजे दूध की बना दूँगी।" इन्दु ने कहा।

विद्यावती को बुरा लगा। उन्होंने धोती का पल्लू फैलाकर मुँह ढँक लिया और मुँह ढँके-ढँके बोली, "हाँ अब जीजी की फिकर च्यौं करेगी? जे तो दिल्लीवारी हो गयी ना।"

"अच्छा अब सब चुप हो जाओ मोय पाँच पन्नों का रट्टा लगाना है। सर ने कहा आज परीक्षा लेंगे।" भग्गो ने कहा और लालटेन लेकर बरामदे में पहुँच गयी।

लाला नत्थीमल ने पत्नी से कहा, "मेरे गिलास से ले-ले चाय।" विद्यावती ने कोई जवाब नहीं दिया। उसका चित्त घर से उचाट अपने कताई-संघ की तरफ़ चला गया। इधर कई महीनों से वह गृहस्थी के खटराग में न चरखा चला सकी, न संघ की किसी बैठक में जा पायी। उसे लगा घर-गृहस्थी उसके लिए जाल भी है और जंजाल भी। इसमें कोई काम कभी सीधे से न होता है, न हुआ। कवि तो सारी जिम्मेदारी उनके मूड़ पर डाल दिल्ली चल दिया। वह बेटियाँ सँभाले या बहू। ऊपर से उसके खुरपेचू लाला। उसने तय किया कि अब से लालाजी के दुकान चले जाने के बाद वह बैठकर चरखा काता करेगी और जब-तब दुपहर में चरखा-समिति का भी चक्कर लगा लिया करेगी। बल्कि वह लीला से कहेगी कि वह भी चरखा-समिति में संग चला करे। उसका मन बहल जाएगा।

मूर्ख नहीं थी विद्यावती। सीमित शिक्षा के बावजूद उसमें सहज व्यावहारिक ज्ञान था कि स्त्री के लिए घर-परिवार एक क़िस्म का आजीवन कारावास होता है। उसने चरखा-समिति की सभाओं में सुना था कि आज़ादी के मतवालों को अँग्रेज़ पुलिस जेल में ठूँसकर उनसे कैसा बर्ताव करती है। सी-क्लास कैदियों को तो भरपेट खाना-लत्ता भी नसीब नहीं होता। ऊपर से उनसे हाड़-तोड़ मशक्कत ली जाती है। कोल्हू में बैल की तरह जोत दिया जाता है, रातों में सोने नहीं दिया जाता और अगर वे ज़रा भी प्रतिवाद करें तो उन्हें लात-घूँसों से पीटकर अधमरा कर दिया जाता है। विद्यावती को लगा क्या घर-परिवार में फँसी स्त्री की दशा भी सी-क्लास क़ैदी जैसी नहीं है! आज़ादी के मतवालों का तो नाम-गाम जेल के इतिहास में लिखा मिल जाएगा। औरतों का तो नाम-निशान न मिले। ज्यौदा-से-ज्यावदा कुछ दिन यही चर्चा रहेगी कि फलाने की औरत चूल्हे की आग से भुरसकर मर गयी, ढिकाने की माँ का पैर जमुनाजी में रपट गयौ, तुमुक को कंठमाला हो गयी रही और अमुक को बीच बाज़ार साँड़ ने सींग मार दिया।

सोचते-सोचते मन भरभरा गया। इसी गृहस्थी में बामशक्कत क़ैद, डंडा बेड़ी, तनहाई जाने कौन-कौन सजा काट ली। अब हिम्मत बाकी नहीं। बस भगवती का ब्याह हो जाए तो नैया पार लगे।

ज़रूर विद्यावती की आँख लग गयी होगी। अचानक बादलों की गडग़ड़ाहट और मोरों की आवाज़ से वह जाग गयी। इन्दु आवाज़ लगाती रह गयी, "जीजी चाय उबल रही है, पीकर जाओ।"

विद्यावती दानों की पोटली बगल में दबा, छड़ी के सहारे छत की सीढियाँ चढ़ गयीं। सौंताल से उडक़र आये मोर मुँडेर पर बैठे सावन को न्यौत रहे थे : 'मेह आओ, मेह आओ।' इनमें बड़ेवाला मोर विद्यावती से इतना हिला हुआ था कि उनके हाथ से चुग्गा लेकर चुगता।

थोड़ी देर में बारिश की बूँदें पडऩे लगीं। विद्यावती का हृदय आह्लालाद से भर गया। हालाँकि मोर नाच नहीं रहा था, विद्यावती का मन-मोर नाच उठा। मन में मंसूबे बनाने लगी। सावन लगते ही घर-घर में झूला डल जाएगा। इस बार सबको बुलाऊँगी लीला, कुन्ती। भग्गो तो घर में है ही। कुन्ती को सावन के गीत बहुत आते हैं। 'शिवशंकर चले कैलाश, बुँदियाँ पडऩे लगीं' गीत तो वह इतना अच्छा गाती है और वह वाला भी 'झूला झूले रे कदम तले, राधे भीगे संग नन्दलाल।' उसके सहारे सारी जनी गा उठती हैं। इस बार मेंहदी भी लगायी जाए। बेबी-मुन्नी तो

निचावली बैठती नहीं, उनके मेंहदी लगाकर मुट्ठी पर कपड़ा बाँध देंगे। जब हाथ रच जाएँगे तब कैसी खुश होंगी। शाम को ताँगा कर मन्दिरों की झाँकी देखी जाए। आजकल रोज़ नयी घटा सजाते होंगे, कभी नीली, कभी हरी, कभी गुलाबी। कहीं फूलडोल सजे होंगे। फूलडोल से वृन्दावन के बाँकेबिहारीजी का मन्दिर याद आ गया। विद्यावती ने कुल जमा तीन-चार बार देखा होगा पर बाँकेबिहारी मन्दिर की छवि उनके मन में बसी थी। मन्दिर की भक्तिनें सवेरे चार बजे जाग, बेले की कलियाँ तोडक़र, उनके गहने बनातीं। राधाकृष्ण का कुल सिंगार बेले की कलियों से होता, मोर मुकुट, झालर, शीषफूल, बेणी, कँगना, बाजूबन्द, पहुँची, तगड़ी, बैजन्तीमाल, यहाँ तक कि ठाकुरजी की मुरली पर भी बेले के हार लपेटे होते। कैसी भीनी महक आती मन्दिर भर में।

यादें ही तो हैं। आगे-पीछे होती रहती हैं। बड़े आवेग से वह धुँधली छवि विद्यावती की स्मृति में कौंध गयी जब वह छह साल की थी और उसका दूल्हा मुरारी पाँच साल का। दोनों को वृन्दावन राधा-मोहन का सिंगार बनाकर लाया गया था। तब उसका पैर एकदम ठीक था। मुरारी था तो पाँच का लेकिन विद्या से लम्बा था। देखने में भी बड़ा लगता था। पीताम्बर में साक्षात् कन्हैया जँच रहा था। मन्दिर में दोनों को जब राधा-गोविन्द की तरह खड़ा कर दिया गया, कितने ही भक्तों ने उन्हें चढ़ावा चढ़ाया। मुरारी ने कहा, "अम्मा मेरे तो पैर पिरा गये खड़े-खड़े।" तब उन दोनों को गोद में लेकर अम्मा और बाबा बाहर आ गये।

अपने पहले पति की बस इतनी-सी स्मृति बनी रही विद्यावती को। बाद का तो इतना याद है कि एक दिन बाबू दुकान से घर लौटे तो उनका मुँह उतरा हुआ था। उन्होंने अम्मा को बताया कि मुरारी तो हैजा से चल बसे। अम्मा सिर पर हाथ मार रोने लगी, "अरे मेरी छोरी का अभी गौना भी नहीं हुआ, कैसे उसे विधवा मानूँ।"

पास-पड़ोस में ख़बर फैलते देर न लगी। रिश्ते की चाचियों ने उसे जबरन सफेद फ्रॉक पहना दी और समझा दिया, "देख लाली, अब तुझे घर में रहना है, छोरों से बात नईं करनी और निर्जला एकासी पर पानी नहीं छूना।"

बाबू ने विरोध किया था, "भाभी, यह अयानी छोरी क्या समझे अमावस और एकासी।"

चाचियों ने तर्जनी दिखाकर बरज दिया, "हम समझाएँगी नेमधरम।" सिर्फ विद्यावती के कल्याण के लिए उसके पिता गौरीशंकर सनातन धर्म से आर्यसमाज में आये जहाँ उन्हें लाला नत्थीमल में सुपात्र नज़र आया। जिस समय विद्यावती का पुनर्विवाह हुआ, उसकी उम्र केवल 14 साल थी।

जिस साल ब्याह हुआ उसी साल की दिवाली की बात है। विद्यावती के पैर में लोहे की ज़ंग लगी कील चुभ गयी। बहुतेरी मल्हम, पुल्टिस लगायी, कील मिली ही नहीं। गयी तो कहाँ गयी। पैर में दर्द इतना कि धरती पर धरा न जाए। तीसरे दिन पैर सूज गया। डॉक्टर ने बदल-बदलकर दवा दी। कोई असर नहीं हुआ। लीला उन दिनों पेट में थी। नत्थीमल इतने घबरा गये कि विद्यावती को मायके छोड़ आये। वहाँ भी जर्राह वैद्य सबने देखा, रोग किसी को समझ न आया। अलीगढ़ के अस्पताल में बाबू ने एक्सरे करवाया, कील पंजे में एड़ी की तरफ फँसी थी। ऑपरेशन से कील निकल गयी पर पैर में हमेशा के लिए कज आ गया। बायाँ पैर कुछ छोटा और कमज़ोर हो गया।

विद्यावती प्रसव के बाद सवा माह की बच्ची को लेकर पति-गृह आयी उसे नये सिरे से अपनी बदली हुई काया को स्वीकार करना पड़ा। नत्थीमल तीर की तरह लम्बे, पतले और वेगवान थे। पैदल चलते तो पीछे मुडक़र न देखते कि संग चलनेवला साथ है या पिछड़ रहा है। गेहुँआ रंग, तीखे नैन-नक्श, सुन्दर नाक और आँखें ऐसी तेज़ कि जिस पर नज़र पड़े उसे बेधकर रख दें। नत्थीमल ने पत्नी की देह-विषमता को गहरी चिढ़ और अस्वीकार से

जीवन में प्रवेश दिया। उन्होंने आर्यसमाजी सुधारवाद की झोंक में पुनर्विवाह के लिए बाल-विधवा विद्यावती को चुना था तो सिर्फ इसलिए कि उनसे दस साल छोटी लडक़ी भाग-दौडक़र घर-गृहस्थी के काम सँवारकर अपने को धन्य समझेगी। सभी वणिक-पुत्रों की भाँति उनका गणित भी यही था, पैसा कमाने और खर्च करने का अधिकार उनका है, मेहनत, बचत और किफ़ायत का कर्तव्य उनकी पत्नी का है। विद्यावती ने एक बार दबी ज़ुबान में पति से कहा, "कहो तो बर्तन माँजने के लिए महरी रख लूँ, तीन रुपये महीने पर राजी हो जाएगी।"

नत्थीमल ने त्यौरी चढ़ाकर कहा, "फिर तुम क्या करोगी सारा दिन?"

"लीला छोटी है और मुझे फिर दिन चढ़े हैं, ऐसौ लगे है। नल के पास घुटने मोडक़र बैठनौ भारी पड़ जाय है।"

"चाहे जैसे बैठकर माँज, माँजने तो तुझे ही हैं, मायके की लाटसाहबी यहाँ नहीं चलेगी।"

बेटे के चक्कर में बेटियाँ पैदा होती गयीं इसे भी नत्थीमल विद्यावती का दोष मानते रहे।

नत्थीमल का गणित माना होता तो कविमोहन पैदा ही न होता। लीला, कुन्ती के बाद जब विद्यावती को दिन चढ़े किसी ने लाला नत्थीमल को सुझाया कि जब लड़कियाँ पैदा होती हैं तो तला-ऊपर तीन तो ज़रूर ही होती हैं। उस दिन नत्थीमल ने दुकान से लौटकर एक पुडिय़ा विद्यावती को दी।

"जे का है?" विद्यावती ने पूछा।

"कुनैन है। दिन में तीन बार फंकी लगाकर पानी पी ले। पेट की सफाई हो जाएगी।"

विद्यावती को बहुत बुरा लगा। ये बाप है या कंस। फिर इस बार उसे सारे लक्षण बदले हुए लग रहे थे। उसने पुडिय़ा लेकर धोती की खूँट में बाँध ली और कहा, "अभी मोय प्यास नायँ। पानी पिऊँगी तब फंकी ले लूँगी।"

इधर नत्थीमल की आँख बची उधर उसने खूँट से खोलकर आँगन की मोरी पर कुनैन झाडक़र बहा दी। हफ्ते भर यह सिलसिला चला। विद्यावती का पेट तो नहीं, आँगन की मोरी ज़रूर सफाचट हो गयी। जाने कब कब की इल्ली-गिल्ली सब मरमरा गयीं और मोरी से फल-फल पानी निकलने लगा। नत्थीमल ने अगले महीने पत्नी के फूलते पेट को देख हताशा से हाथ मले, "शर्तिया खंखा आनेवाली है। इत्ती कुनैन पी गयी और जीती रह गयी।"

समस्त भय, आशंका और तनाव को निर्मूल कर जब कविमोहन प्रकट हुआ नत्थीमल खुशी से नाच उठे। सलोनी सूरतवाला शिशु साक्षात् मृत्युंजय था। नत्थीमल को कोई अपराध-बोध नहीं हुआ कि इस गर्भ को मिटाने के लिए उन्होंने कैसे-कैसे जतन किये। सभी मथुरावालों की तरह उन्होंने इसे श्यामसुन्दर की इच्छा कह अपने को क्षोभ-मुक्त कर लिया। चौथी सन्तान भगवती, कवि के आठ साल बाद बस ऐसे ही लड़ते-झगड़ते दाम्पत्य के बीच क्षणिक युद्धबन्दी के दौरान जीवन पा गयी।

छोटे बच्चों को सँभालना विद्यावती के लिए अकेले हाथ आसान काम नहीं था, ख़ासकर बायें पैर की कमज़ोरी के कारण। इसीलिए उसे आदत पड़ गयी थी हर समय टोका-टाकी और क्षेपक जड़ देने की। वह एक बार चौके में बैठ जाती, फिर उठ-उठकर कोई चीज़ उठाना, सँभालना उसके बस की बात नहीं थी। वह लड़कियों को बार-बार

कोंचती, "लीली नेक लोटे में पानी दे दे। कुन्ती, हींग की डिबिया कहाँ हेराय गयी, ढूँढ़। अरे लीली, लल्ला को सँभार गिर जाएगौ।"

पढऩे की कौन कहे, दोनों बहनों का खेलना तक दूभर रहता। जैसे ही वे गली में अक्कड़-बक्कड़ खेलने जाने को पैर बाहर धरतीं, विद्यावती पीछे से कहती, "अपने भइया को भी नैक घुमाय लाओ दोनों जनी।"

गोलमटोल और भारी था कवि। उसे लेकर ज्योदा दूर चलना उनके लिए मुश्किल था। वे वहीं किसी मन्दिर के चौंतरे पर उसे बिठा देतीं और गिट्टे खेलने लगतीं।

लीला और कुन्ती की किताबों से विद्यावती ने अपना बिसरा हुआ अक्षर-ज्ञान ताज़ा कर लिया। फिर तो उसे स्कूल की पढ़ाई में इतना रस मिलने लगा कि लड़कियों से भी पहले पाठ उसे याद हो जाता। लीला कहती, "रट्टा तो कोई भी लगा ले। इमला लिखकर दिखाओ तो जानें।"

विद्यावती चौके में, चूल्हे से कोयला निकाल, पानी में छन्न से ठंडा करती और वहीं धरती के पत्थर पर या दीवार पर लिखना शुरू कर देती। वह सुन्दर अक्षर बनाती और उन्हें थोड़ा-सा मोड़ देती। लीला-कुन्ती हाथ जोड़ देतीं, "बस-बस उस्तानीजी, अब हमें तो पढ़ाओ ना।"

इस दीवाल-लेखन पर पूर्णविराम लग गया जब एक दिन नत्थीमल ने कोयले से चिथी हुई दीवालें देखकर पूछा, "च्यों री लीली, तेरे पास पट्टी नहीं है या स्लेट टूट गयी जो मार दीवालें रंग डारी हैं।"

लीला फिक् से हँस पड़ी, "जीजी से पूछो, कोऊ का काम है जे।"

कुन्ती ने बताया, जीजी हमसे बढिय़ा लिखना जानती हैं।

नत्थीमल ने त्योरी डालकर कहा, "मार दीवालें पोत मारीं, जे नहीं सोचा कि दीवाली के पहले सफेदी कैसे होगी?"

विद्यावती ने कहा, "चूना हो तो मैं ही ठीक कर दूँगी। एक पट्टी मुझे भी ला दो।"

बदामी रंग की लकड़ी की पट्टी आ गयी। उसे पोतकर तैयार करने के लिए लीला-कुन्ती के पास मुलतानी मिट्टी थी ही। वे दो की जगह तीनों पट्टी पोतकर सूखने रख देतीं। कभी जल्दी होती तो मुड्ढ पर से पकड़ तख्ती झुलातीं और गातीं-

"सूख सूख पट्टी चन्दन बट्टी, कट्टी तो कट्टी

ला तू मेरा पैसा

जा तू अपने घर को।"

बच्चे बड़े हो गये लाला नत्थीमल का स्वभाव न बदला। लेकिन अब उनके बर्ताव से उतनी चोट नहीं लगती। विद्यावती ने अपनी दुनिया में मगन रहना सीख लिया था। बच्चों के हँसने-खेलने, पढऩे और मचलने के साथ, एक अलग संसार था। फिर मथुरा के मोहल्लों का रागरंग भी ऐसा था कि कोई भी ज्या-दा देर लसौढ़े-सा मुँह

बनाकर रह नहीं सकता। अचानक लहर उठती, चलो आज सब लोग चलें रामलीला देखें, चलो आज परकम्मा लगा आयँ। आज तो सारी लुगाइयाँ हरी चूडिय़ाँ पहनने जाएँगी। आज अन्नकूट है आज सारी तरकारियाँ मिलाकर अन्नकूट का परसाद बनेगा। आज बसौढ़ा मनाया जाएगा। कोई आज चूल्हा न बाले। हर दिन किसी-न-किसी वजह से ख़ास दिन होता और पर्व की तरह मनाया जाता। बच्चे भी पोथी-बस्ते से छुटकारा पाते ही स्वाँग और मेले की रौनक में रम जाते।

मथुरा के निवासियों में उत्सवधर्मिता कूट-कूटकर भरी थी। वे अपने जीवन की समस्त तकलीफ़ें, तनाव और तडफ़ड़ाहट को इसी तरह जीतते। इस तरह यह आमोद-प्रमोद उनके जीवन का रास भी था और संन्यास भी। मनोरंजन था तो पलायन भी। कृष्ण कथाएँ उन्हें जीने का साहस देतीं। निरक्षर जनता भी कथावाचन का श्रवण कर अपने आपको शिक्षित अनुभव करती।

बाकी कमी महात्मा गाँधी की सर्वहारा छवि ने पूरी कर दी थी। उनकी रूखी-सूखी कृश काया से मथुरावासी उन्हें अपने जैसा एक व्यक्ति मानते जिसने अपनी खरी बात से सबको क़ायल किया और भय-मुक्त जीवन जीने का मार्ग दिखाया। साधारण-जन इस वक्त आज़ादी के लिए सन्नद्ध था और कटिबद्ध। गाँधीजी में उसे तमसो मा ज्योतिर्गमय साकार दिखा था।

23

दिल्ली के घर भी क्या घर। कोठरियाँ बनाम कमरे और कमरे बनाम बरामदे। एक तरफ़ दीवार में जड़ी हुई आलमारियाँ, दूसरी तरफ़ सडक़ की ओर खुलनेवाली कतारबद्ध खिड़कियाँ। खिड़कियों की नीचाई और सडक़ पर चलते आदमियों की ऊँचाई में अद्भुत तालमेल, कुछ ऐसा कि बेसाख्ता अन्दरवालों की आँख बाहर और बाहरवालों की आँख अन्दर टिकी रहे। न न पर्दे कैसे लगाए जा सकते हैं, घर में हवा का एकमात्र रास्ता हैं ये खिड़कियाँ, हवा और मनोरंजन का। जिन्होंने पर्दे लगा रखे हैं, वे भी सरके ही रहते हैं। भला हो विद्युत-व्यवस्था का, खिडक़ी-दरवाज़े, दिन-रात खुले रखने पड़ते हैं, चोरी और गर्मी, इन दोनों आशंकाओं की भिड़न्त में गर्मी हर बार जीतती है।

दिल्ली-एक नगर। नगर में कितने नगर-रूपनगर, कमलानगर, प्रेमनगर, शक्तिनगर, मौरिसनगर, किदवईनगर, विनयनगर, सन्तनगर, देवनगर, लक्ष्मीबाई नगर। मज़ा यह कि कोई चाहे कितनी भी दूर रहता हो, बसों में धक्के-मुक्के खाता अपने दफ्तर पहुँचता हो, उसे मुग़ालता यही रहता है कि वह दिल्ली में रहता है। जब गाँव-कस्बे से उसके रिश्तेदार मेहमान बनकर आते हैं वह उन्हें प्रदर्शनी दिखाता है, लाल किला और बुद्धजयन्ती पार्क घुमाता है, और एक के बाद एक टूटते दस-दस के नोट देखते हुए दिन गिनता है कि मेहमान कब जाएँ और वह वापस अपनी पटरी पर फिर बैठ जाए-दफ्तर से घर, घर से दफ्तर। सच पूछो तो दिल्ली का मतलब है दस-पाँच नेताओं की दिल्ली। दिल्ली की असली मलाई बस वही चाट रहे हैं, बाकी सारे घास काट रहे हैं।

कवि ने अपने इकलौते कमरे का इकलौता दरवाज़ा बन्द किया और ताला डालने की रस्म पूरी की। यह ताला किसी भी चाभी से खोला जा सकता है। है तो किसी उम्दा कम्पनी का पर जब से कवि ने होश सँभाला इसे घर में इस्तेमाल होते देखा। घिस-घिसकर चिकना लोहे का बट्टा जैसा हो गया है। जीजी ने यह ताला और इस जैसी कई कंडम चीज़ें उसे भेंट कर दीं जब वह मथुरा से चला। ताला बदलने का इरादा रोज़ करता है कवि, पर ताला ख़रीदने की बात उसे हास्यास्पद लगती है। पहले उसे कुछ ऐसा सामान ख़रीदना होगा जो ताले का औचित्य साबित कर सके।

कवि रोज़ रात दस बजे के बाद घर लौटता है। तब वह इतना थका होता है कि कई बार बिना कपड़े बदले, बिना चादर झाड़े, बिना बत्ती बुझाए तुरन्त सो जाता है। कमरे की बदरंग दीवारें, घिसी चादर, तिडक़े प्लेट-प्याले और टूटा स्टोव उसे सिर्फ तब नज़र आते हैं जब कोई दोस्त अचानक छुट्टी के रोज़ चला आता है। काम के बाद वह कॉफ़ी-हाउस चला जाता है। वहाँ शोर का एक अंश बनना उसे अच्छा लगता है, सिगरेट पीना भी और कभी-कभार कॉफ़ी। इन तीनों चीज़ों की तासीर ऐसी है कि इनके रहते भूख महसूस नहीं होती, न अकेलापन, न उदासी।

वह इन तीनों में से दो से हमेशा घबराता आया है। वह न अकेलापन बर्दाश्त कर सकता है न उदासी। कई बार सुबह चार-पाँच बजे के बीच मकान-मालकिन की नवजात लडक़ी के रोने से उसकी नींद टूटी है और फिर देर तक उसे नींद नहीं आयी है। अपनी बेबी-मुन्नी याद आने लगी हैं। कवि अपने आसपास के घरों की प्रारम्भिक आवाज़ें सुनता है-दूधवालों की साइकिलों की खडख़ड़ाहट, महरियों की खटखट, किसी-न-किसी घर या मन्दिर से अखंडपाठ की रटंत, बूढ़ों के गलों की खर्राहट। हर आवाज़ के साथ आराम एक असम्भव प्रक्रिया बन जाता। कहीं पड़ोस की युवा गृहणी का बिन्दी पुँछा चेहरा दिख जाता तो गज़ब अकेलापन, उदासी और सन्त्रास उसे दबोच लेते। ऐसे मौकों पर इन्दु की याद इतने ज़ोर से आती कि उसे लगता वह भागता हुआ मथुरा लौट जाए। इसीलिए कवि को ऐसे दिन पसन्द हैं जब वह सुबह आठ बजे उठे और उठते ही कॉलेज जाने की हड़बड़ी हो जाए।

कॉलेज के साथ सबसे अच्छी बात यह है कि एक बार इसके परिसर में दाखिल हो जाओ, शेष जगत और जीवन की परेशानियाँ भुला दी जाती हैं। एक ओढ़ा हुआ व्यक्तित्व यहाँ इतना कामयाब होता है कि उतनी देर अपना असली व्यक्तित्व सामने ही नहीं आता। कवि अभी नया है इसलिए कोई उसके साथ ज्या दा आत्मीय नहीं हो पाया है। कक्षाओं के विद्यार्थी ज़रूर उसके पढ़ाने के ढंग से उसकी ओर खिंचे हैं। कॉमर्स, इकनॉमिक्स और एकाउंट्स की नीरस पढ़ाई से उकताकर वे जब इंग्लिश का पाठ्यक्रम देखते हैं वह उन्हें प्रिय लगता है। पढ़ाते हुए बीच-बीच में कविताओं के अंश उद्धृत करना कवि का शौक है। इससे व्याख्यान में ताज़गी बनी रहती है और विद्यार्थी एकाग्र रहते हैं।

दरियागंज में आवास की समस्त सम्भावनाएँ टटोलने के बाद ही कविमोहन ने कूचापातीराम में यह आधा कमरा लेने की मजबूरी स्वीकार की। दरियागंज प्रकाशकों, मुद्रकों और कागज़ के थोक विक्रेताओं का इलाक़ा है। किसी ज़माने में यहाँ पिछवाड़े की गलियों में जनता रहती थी। अब तो इसके चप्पे-चप्पे में व्यवसाय का जाल फैला हुआ है। यथार्थवादी लोगों ने यहाँ तलघर भी बना लिये हैं जो बिजली के भरोसे जगमगाते रहते हैं।

अपने विभाग के अब्दुल राशिद के साथ वह दरियागंज के सामने की गली का चक्कर भी लगा आया। चितली कबर यों तो देखने में ऐसी लगती थी जैसी शहर की कोई भी गली। इस लम्बी और सँकरी गली में रहना और कमाना साथ-साथ चलता था। छोटे दरवाज़ों वाले ऐसे मकान थे जो बड़े सहन में खुलते और कई मंजिला साफ़-सुथरा ढाँचा नज़र आता। अब्दुल राशिद हर जगह कहते, "बड़ी बी, इन्हें सिर छुपाने की जगह दरकार है। माशाअल्ला शादीशुदा हैं, बाल-बच्चे वाले हैं, जो किराया आप वाजिब ठहराएँगी, दे देंगे। मेरे साथ ही कॉमर्स कॉलेज में तालीम देते हैं।" बड़ी बी कहलाई जानेवाली महिला कोई जर्जर, उम्मदराज़ ऐसी औरत होती जो हालात से हिली होती। वह कानों को हाथ लगाकर कहती, "लाहौल बिला कूवत, बेटा देखते नहीं, क्या तो माहौल है दिल्ली का। कल को अगर किसी दंगाई ने आकर इन्हें कतल कर दिया तो मैं क़यामत के रोज़ किसे मुँह दिखाऊँगी।" एक

और बड़ी बी ने कहा, "इनसे कहो, पुरानी दिल्ली के मोहल्लों में मकान तलाश करें। यहाँ तो आदमजात का भरोसा नहीं।"

कविमोहन मन-ही-मन डर गया। उसने मकान के बाहर दुकानों में जरी और रेशम की ताराक़शी होते देखी और सोचा, 'यहाँ न रहना ही अच्छा है। मुल्क़ के हालात की सबसे ज्या दा तपिश यहीं पहुँची लगती है।'

इसी तरह भटकते-भटकते वह चाँदनी चौक पहुँच गया। यहाँ बाज़ार एकदम रौशन था। ऐसा लगता था कुल दिल्ली यहीं उमड़ आयी है। एक ख़ास बात उसने यह देखी कि कपड़ों की दुकानों के शोकेस में साड़ी के साथ फ्रॉक या स्कर्ट-ब्लाउज़ का मॉडल ज़रूर सजा था। एक तरफ़ अँग्रेज़ों को मुल्क़ से बाहर कर देने का संकल्प था तो दूसरी तरफ़ उनसे व्यापार की उम्मीद। दरीबा कलाँ की चकाचौंध बस देखते बनती थी। कविमोहन के मन में चाह हुई कि कुछ महीनों बाद वह यहाँ इन्दु को साथ लाकर सोने की अँगूठी दिलाये। उसने आज तक इन्दु को कोई उपहार नहीं दिया था। चाँदनी चौक मुख्य बाज़ार था जिसके दायें-बायें मशहूर गलियाँ फूटती थीं। हर गली के नुक्कड़ पर खाने-पीने की कोई-न-कोई दुकान। चाट की दुकानों की भरमार थी। पानी के बताशे कई किस्म के मिलते, आटे के, सूजी के, हर्र के और सोंठ के गोलगप्पे। इसी तरह यहाँ आलू टिकिया सेंकने के अलग अन्दाज़ थे। कविमोहन को यहाँ आकर बुआ की याद ने सताया। उसे ग्लानि हुई कि इतने महीनों में उसने सिर्फ एक बार बुआ को याद किया। घंटेवाले हलवाई से उसने एक सेर सोहनहलवा पैक करवाया और फतहपुरी की तरफ़ बढ़ गया।

24

फतहपुरी के घर 13/39 में गज़ब गहमागहमी थी। मकान की पुताई हो रही थी। कई मज़दूर लगे हुए थे।

फूफाजी ने उसे देखते ही कहा, "अच्छा हुआ तुम आ गये। हम यही सोच रहे थे कवि को किसके हाथ कहाँ खबर भेजें। पता तो तुमने छोड़ा नहीं!"

"क्या ख़ुशख़बरी है?" कवि ने पूछा।

जवाब बुआ ने दिया, "तुम्हारे छोटे भाई लड्डू का ब्याह तय हो गया है। लडक़ीवालों ने माँगकर रिश्ता लिया है। साड़ी के ब्यौपारी हैं। कहते हैं लड्डू को कपड़े का ब्यौपार खुलवाएँगे। चलो रोज की खिचखिच से जान छूटेगी उसकी।"

"लडक़ी कैसी है?"

"वह तो हमने देखी नायँ। नाऊ ने बताया साच्छात फूलकुमारी है। पान खाय तो गले में पीक का निशान देख लो। उमर बस इक्कीस। लड्डू तो छब्बीस उलाँककर सत्ताईस में पड़ गयौ।"

"बुआ एक नज़र खुद डाल लेतीं लडक़ी पर तो अच्छा था।"

"लो बोलो, नाऊ हर हफ्ते पचासों बयाह करावै। वह क्या झूठ बोलेगा। तू अपनी नीयत बता। बरात में चलेगौ कि नायँ।"

"जरूर चलूँगौ, मेरे भाई का ब्याह है।"

फूफाजी खुश हो गये। अचानक उनके चेहरे पर उदासी के बादल घिर आये, "मथुरा से बस यही भर रिश्ता बचा है कवि। दादाजी से हमें कोई उम्मीद नायँ कि वो आवेंगे या जीजी को भेज देंगे।"

"उन्हें ख़बर की?"

"हाँ, सबसे पहले! वहाँ से इक्कीस रुपये का मनीऑर्डर आया। फॉर्म के नीचे लिखा था "दुकान छोडक़र आना मुश्किल है। बेटे की शादी की बधाई लो।"

कवि को अन्दर-ही-अन्दर एक अव्यक्त सुख मिला। कम-से-कम पिता ने पारिवारिक औपचारिकता तो निभायी।

"मेरा काम क्या रहेगा, फूफाजी आप अभी बता दें।"

"बेटा तुम्हारे जिम्मे हमारे पढ़े-लिखे बराती रहेंगे। किसको क्या चाहिए, कैसे आएगा, सब तुम्हारे जिम्मे। मैं विमला से कह दूँगा, तुम्हें फिज़ूल के कामों में न फँसाये।"

कुछ दिन के लिए फूफाजी के मकान की दशा बिल्कुल बदल गयी। जमादार सुबह-शाम मकान के आगे और पिछवाड़े झाड़ू लगाता रहा। बचनी धोबन रोज़ सुबह आकर कपड़े पछाड़ जाती। फिर भी बुआ के सामने कामों का अम्बार लगा था।

सबसे बड़ा काम था नीचे ड्योढ़ी में फाटक लगने का। फाटक वर्षों पहले गलकर टूट गया था। तब से ड्योढ़ी छाबड़ीवालों, खोमचेवालों और ठेलेवालों की आम रिहाइश बन गयी थी। खुली, खाली जगह देखकर छोटे-छोटे फेरीवाले यहीं टिककर सुस्ताते। बहती सडक़ और बाज़ार होने के कारण, यहीं उनकी फुटकर बिक्री भी होती रहती। फूफाजी को ये सब लोग आते-जाते सलाम कर देते, इसके अलावा और कोई लेन-देन नहीं था। शुरू में जब एक-दो दुकानदारों ने वहाँ बैठना शुरू किया था, फूफाजी ने सोचा चलो अच्छा है, मकान की चौकीदारी रहेगी। देखते-देखते यहाँ खोमचे और छाबड़ीवालों का ठिकाना ही बन गया। अपने घर का ज़ीना चढऩे के लिए भी परेशानी होने लगी। फाटक लगाने का इरादा तो कई बार किया। ड्योढ़ी की दोनों तरफ़ की दीवार में ज़ंग खाये मज़बूत कुन्दे अभी भी लटके दिख जाते थे। लेकिन बुआ का पूरा परिवार कमाई की जद्दोजहद में इस काम के लिए फुर्सत नहीं निकाल पाया।

"इस काम में तो काफी खर्च आएगा?" कवि ने कहा।

"लडक़ीवालों ने वरिच्छा में इक्कीस सौ रुपये चढ़ाये हैं, कुछ मेरे पास धरे हैं, फाटक लगने से समझो, मकान की शान बन जाएगी।" बुआ ने कहा।

परिवार का हौसला अन्त तक बना रहा। फाटक लग गया, वार्निश हो गयी, नया निवाड़ का पलंग आ गया, मकान की पुताई, दरवाज़ों का रंग-रोगन सब पूरा हो गया। वही घर अब कुछ बड़ा और कायदे का लगने लगा।

ऐसा तभी तक था जब तक कम्मो का सामान नहीं आया था। लड्डू की बहू कामिनी के साथ विदाई की बेला में सिर्फ एक बक्सा और एक आलमारी आयी। दोनों सामान लड्डू के कमरे में स्थापित कर दिये गये। फिर शुरू हुआ दहेज का सामान भेजने का सिलसिला तो कमरे छोड़ दालान और बरामदा भी भर गये, सामान ख़त्म न हुआ।

गहने-कपड़े तो पहले ही, बक्से में आ चुके थे। अब गृहस्थी का बाकी सरंजाम आया। सर्दी-गर्मी के अलग बिस्तर, खाने, पकाने के अलग-अलग नाप के बर्तन, पंखा, रेडियो, साइकिल, यहाँ तक कि स्टोव और अँगीठी भी भेजी गयी। नरोत्तम अग्रवाल ने बार-बार मना किया कि गृहस्थी का कुल सामान उनके यहाँ इफ़रात में है पर कम्मो के पिता और चाचा नहीं माने।

आखिरकार रहस्य का उद्‌घाटन इस प्रकार हुआ जिसके लिए विमला बुआ और नरोत्तम फूफा तैयार नहीं थे। विजेन्द्र गिरधारी चक्रधारी साड़ी भंडार में बैठकर काम समझने लग गया था। उसके आने से कम्मो के पिता गिरधारी और चाचा चक्रधारी को आराम हो गया था। घर का आदमी पाँच ओपरे आदमियों पर भारी पड़ता है। फिर विजेन्द्र की नज़र और बुद्धि तेज़ थी। वह इशारे से बात समझता। ग्राहकों से बात करना, गल्ले का मिलान और दुकान बढ़ाना ऐसे काम थे जिनमें गिरधारी और चक्रधारी कई बार चकरा जाते। दोनों के ही परिवार में बेटा नहीं था, हाँ बेटियों की भरमार थी।

एक दिन विजेन्द्र ने कहा, "माँ मुझे दुकान बढ़ाते-बढ़ाते दस बज जाते हैं। मन तो करता है वहीं लुढक़कर सो रहूँ। तुम्हारी फिकर में गिरते-पड़ते घर आ जाता हूँ। यहाँ कम्मो के आने से घिचपिच भी बहुत हो गयी है।"

माँ ने कहा, "नहीं, बहू से क्या घिचपिच।"

"तुम्हारी राजी हो तो मैं वहीं रह लिया करूँ। दुकान के ऊपर, छत पर बहुत बढिय़ा दो कमरों का सैट खाली पड़ा है, चौका, गुसलखाना सब है वहाँ।"

माँ को पहले बात की गम्भीरता समझ नहीं आयी। उसने कहा, "मुँह खोलकर उन लोगों से माँगना पड़ेगा। वे पहले ही इत्ता देकर घर भर चुके हैं।"

लड्डू के मुँह से औचक निकल गया, "वे तो शुरू से कह रहे हैं, यहीं आकर रहो, इसे अपना ही समझो।" माँ सन्न रह गयी। बेटा जाएगा तो बहू भी यहाँ क्यों रहेगी!

अब उसे समझ आया कि उसके बेटे को घर-जमाई बनाया जा रहा है।

नरोत्तम और विमला ने बेटे को समझाने के सभी जतन किये। विजेन्द्र ने कहा, "मैं कहीं दूर थोड़ेई जा रहा हूँ। जब तुम्हारा जी चाहे आ जाना।"

कामिनी तो जैसे तैयार ही बैठी थी। जिस रफ्तार से उसका सारा सामान फतहपुरी आया उससे दस गुनी रफ्तार से सब वापस चाँदनी चौक चला गया। कमरे खाली लगने लगे। कम्मो ने सास-ससुर के पाँव छूते हुए कहा, "जीजी हम आते रहेंगे, आप कोई फिकर न करें।"

25

आगरे की तरह दिल्ली में भी कविमोहन का कविता-प्रेम बरक़रार था। उसके अन्दर ऊर्जा और ऊष्मा का विस्फोट शब्दों में होता। तब जो भी कागज़ उसके सामने आता उस पर वह अपनी कविता टाँक देता। उसे शेक्सपियर का नायक ऑर्लेंडो याद आ जाता जो अपनी कविताएँ लिखकर पेड़ों पर लटका देता था। कविमोहन डायरी के पृष्ठों पर, अख़बार के कागज़ों पर, चीनी के लिफ़ाफों पर, कहीं भी अपने काव्योच्छवास लिख डालता। कॉलेज लायब्रेरी

में उसे पत्रिकाओं की जानकारी मिल जाती। उसने दो पत्रिकाओं में अपनी एक-एक कविता भेजी। एक तो तत्काल वापस आ गयी। दूसरी तीन माह बाद छप गयी। कविमोहन को आश्चर्य और आह्लालाद की अनुभूति हुई। छपने पर कवि उसे कई बार पढ़ गया। यह रचना कागज़ से पहले उसके मन के पृष्ठों पर कई बार लिखी जा चुकी थी। कविता इस प्रकार थी-

होने सवार ज्यों बढ़े चरण

चमका एड़ी का गौर वर्ण

कर नमस्कार, कुछ नमित वदन

जब मुड़ीं हो गये रक्त कर्ण।

चल दी गाड़ी घर घर घर घर

खिंचता ही गया सनेह-तार

धानी साड़ी फर फर फर फर

उड़-उडक़र दीखी बार-बार

पल भी न लगा सब क्लान्त शान्त

मैं खड़ा देखता निर्निमेष,

लो फिर सुलगा यह प्राण प्रान्त,

बस प्लेटफॉर्म की टिकट शेष।"

कॉलेज के हिन्दी-विभाग की गोष्ठी में कविमोहन ने अपनी इस सद्य:-प्रकाशित कविता का सस्वर पाठ किया तो वहाँ ज़लज़ला आ गया। लड़कियों ने घोषणा की कि प्रेम की स्थिति की यह सर्वोच्च अभिव्यक्ति है। वे कवि की प्रेरणा का स्रोत जानना चाहती थीं। कवि अपनी छात्राओं से उतना खुला हुआ नहीं था। होता तो वह कहता जो तुम समझ रही हो यह वैसी अनुभूति नहीं है। कविमोहन ने जीवन की पाठशाला में पहला प्रेम का पाठ इन्दु के ज़रिये ही पढ़ा था। दूर रहते हुए उसके लिए पत्नी ही प्रेयसी थी जिसे सम्बोधित कर वह कभी उत्तप्त तो कभी सन्तप्त कविता लिखा करता। यह अजीब लेकिन सत्य था कि जब कवि घर से दूर रहता तो घर उसके बहुत क़रीब रहता। घर उसकी धमनियों में ख़ून की तरह सनसनाता। घर से दूर उसे न पिता गलत लगते न माँ। भग्गो और बेबी-मुन्नी में भी उसे ब्रह्मंड नज़र आता। लेकिन घर के पास फटकते ही समस्त अपवाद, ऐतराज़, अवरोध और असहमतियाँ एक-एक कर सिर उठातीं और वह भन्ना जाता कि अब छुट्टियों में भी वह घर नहीं आया करेगा। इन्दु का भुनभुनाना, बड़बड़ाना उसे दाम्पत्य से विमुख करने लगता। तब उसे कूचापातीराम का वह अँधेरा, अधूरा कमरा ज्याधदा आत्मीय और अपना लगता जहाँ बैठ वह हफ्ते में छह-सात कविताएँ रच लेता।

कुहेली भट्टाचार्य यों तो अँग्रेज़ी विभाग में कविमोहन की सहकर्मी थी लेकिन कवि को सुनने वह हिन्दी-विभाग में आ जाती। हिन्दी-विभाग के प्राध्यापक उसे हिन्दी-प्रेमी के रूप में पहचानते थे। कैम्पस पर सब उसे कुहू कहते थे। कुहू का छोटा भाई देवाशीष इंग्लिश में कमज़ोर था। पढ़ाई के लिए वह कुहू के हाथ के नीचे आता नहीं था। भट्टाचार्य परिवार चाहता था कि देवाशीष अँग्रेज़ी में पारंगत हो जाए तो ख़ानदान की इज्ज़त बची रहे। पिता डॉ. आनन्दशंकर भट्टाचार्य ने कहा, "देख लेना देवू अगर तुम अँग्रेज़ी नहीं पढ़े तो दर-दर की ठोकरें खाओगे। बांग्ला किस्से-कहानियाँ पढने से नौकरी नहीं मिलेगी।"

देवाशीष मार्लो के उबाऊ नाटक 'डॉ. फॉस्टस' के ऊपर शरत्बाबू का 'श्रीकान्त' रखकर पढ़ता रहता।

कुहू ने कविमोहन से आग्रह किया, "आप बस देवू के अन्दर पढ़ाई के लिए लगन पैदा कर दीजिए, आगे का काम मैं सँभाल लूँगी।"

"मैं तो अब ट्यूशन करता नहीं।"

"आप गलत समझे। आपसे ट्यूशन करने को कौन कह रहा है। हफ्ते में एक बार आकर उसकी दिलचस्पी देख-सुन जाइए।"

"आप उसी के स्कूल का कोई टीचर क्यों नहीं ढूँढ़तीं।"

"टीचर यह काम नहीं कर सकता। आप उसे सही प्रेरणा देंगे, मुझे भरोसा है।"

"देखूँगा। कह नहीं सकता कब आऊँ।"

कविमोहन ने प्रसंग टाल तो दिया पर मन से निकाल नहीं पाया। अपने पर थोड़ा घमंड भी हुआ। इतने कम समय में वह छात्रों का प्रिय शिक्षक बन गया था। कॉलेज में वह छात्रों से घिरा रहता। कॉलेज में पिकनिक रखी जाती तो हर क्लास का आग्रह होता कवि उनके साथ चले। शहर में कोई नयी किताब चर्चित होती तो छात्र उस पर कविमोहन की राय जानना चाहते।

स्टाफ़-रूम में युवा प्रवक्ताओं के बीच बहस छिड़ी हुई थी। राशिद, किसलय और कुहू इस बात पर अड़े हुए थे कि पंडित नेहरू हमारे देश के लिए गाँधी से ज्याहदा ज़रूरी हैं। कविमोहन और सुनील सेठी का कहना था महात्मा गाँधी न होते तो नेहरू भी न होते। पंडित नेहरू के लिए स्वाधीन भारत का स्वप्न गाँधीजी ने ही साकार कर दिखाया।

राशिद बोला, "कुछ भी कहो, गाँधीजी घनघोर इम्प्रेक्टिकल तो रहे हैं। उन्होंने पार्टिशन के लिए हाँ न भरी होती तो इतनी मारकाट और हिंसा जो हुई वह न होती।"

उसके यह कहते ही कविमोहन उत्तेजित हो गया, "किसने कहा पार्टिशन महात्माजी का विचार था! तुम अख़बार नहीं पढ़ते, रेडियो नहीं सुनते या तुम एकदम ठस्स हो।"

राशिद बुरा मान गया, "माइंड यौर लेंग्वेज। मैं अख़बार भी पढ़ता हूँ और रेडियो भी सुनता हूँ। कौन नहीं जानता कि गाँधी और जिन्ना के बीच डैडलॉक (गतिरोध) की वजह से ही पार्टिशन हुआ। आज जो पंजाब और सिन्ध से लुटे-

पिटे लोगों के काफिले दिल्ली पहुँच रहे हैं उसने इस आज़ादी को भी धूल चटा दी है।"

कुहू ने उसे टोका, "आपकी बात राजनीतिक हो सकती है, इतिहास-सिद्ध नहीं है। हमारे देश के टुकड़े गाँधी-जिन्ना डैडलॉक से नहीं बल्कि अँग्रेज़ों की फूट डालो, राज करो नीति के कारण हुए। आप जो आज इतनी आसानी से बापू के खिलाफ़ बोल रहे हैं, यह हक़ भी आपको बापू की उदारता ने ही दिया है। यह उन्हीं का फ़ैसला था कि आप यहाँ नज़र आ रहे हैं।"

किसलय ने कहा, "यह सारी बातचीत ऑफ द मार्क हो रही है। बहस का मुद्दा गाँधी-नेहरू था न कि गाँधी-जिन्ना। विभाजन हम सबके लिए एक सेंसिटिव इश्यू है। हम जानते हैं गाँधीजी ने जिन्ना से इतनी मुलाक़ातें सिर्फ इसलिए कीं ताकि विभाजन रोका जा सके। कौन चाहता है कि उसके देश का नक्शा रातोंरात छोटा हो जाए। फिर अपने मुल्क में रह रहे ज्या दातर मुसलिमों के पूर्वज हिन्दू थे। उन्होंने हिन्दू धर्म त्याग कर मुसलिम बनना मंजूर किया। हम सब राशिद को दोस्त मानते हैं कि नहीं?"

"बिल्कुल, बिल्कुल" कई आवाज़ें उठीं।

वास्तव में 1947 में हो यह रहा था कि पिछले छह महीनों की उथल-पुथल में हर मुसलिम घर में एक विभाजन घटित हुआ था। घर के कुछ सदस्य यहीं अपने वतन, अपने शहर में रहना चाहते थे जैसे वर्षों से रहते आये थे। कुछ सदस्यों का मन उखड़ गया था, वे नये मुल्क से नयी उम्मीद पाले हुए थे। उन्होंने अपना सामान तक़सीम कर पाकिस्तान जाना कबूल कर लिया। एक ही घर में एक भाई हिन्दुस्तानी बन गया तो दूसरा पाकिस्तानी। कहीं माँ-बाप हिन्दुस्तान में रह गये, सन्तानें पाकिस्तान चली गयीं। दिल को समझाने को वे कहते, 'अरे मेरे बच्चे कहीं दूर नहीं गये हैं, यहाँ से बस थोड़े घंटों की दूरी है, जब मर्जी आकर मिल जाएँगे' पर जानेवाले जानते थे कि कोई भी जाना बस जाना ही होता है, एक बार जड़ें उखड़ गयीं फिर न गाँव अपना मिलता है न गली। फिर भी लोग लगातार जा रहे थे कि वे अपनी जिन्दगी में तब्दीली लाना चाहते थे।

"यह मसला इक्की-दुक्की का नहीं, मामला पूरी क़ौम का है।"

"क़ौम भी तो इनसानों से बनती है।"

कवि ने कहा, "राशिद तुम्हारी बातों से तकलीफ़ पहुँच रही है। अगर तुम हमारे बीच एक घायल रूह की तरह रहोगे, हमें कैसे चैन आएगा!"

कवि देख रहा था कि राशिद के सोच-विचार में पिछले छह महीनों में बुनियादी बदलाव आया था। उसके अन्दर से सहज विश्वासी बेफिक्र नागरिक विदा हो गया। उसकी जगह एक जटिल, शक्की और शिक़ायतों का पुलिन्दा आ बैठा। अभी कल तक वह कवि को चितली कबर के मुहल्ले में कमरा दिलाने के लिए उसके साथ घूम-भटक रहा था।

सभी ने राशिद के स्वभाव में आये इस परिवर्तन पर ग़ौर किया। वे सोचने लगे कि स्टाफ़ में मौजूद बाकी ग्यारह-बारह लोग भी क्या ऐसी उथल-पुथल से गुज़र रहे होंगे। कहने को ये सभी पढ़े-लिखे लोग थे।

आज़ादी हासिल होते ही गाँधीजी का व्यक्तित्व एक लाचार ट्रेजिक हीरो की शक्ल में सामने आया था। कहाँ तो उन्होंने कहा था, 'अगर कांग्रेस बँटवारे को स्वीकार करना चाहती है तो उसे मेरी लाश पर से गुज़रना होगा। जब तक मैं जिन्दा हूँ, कभी हिन्दुस्तान का बँटवारा स्वीकार नहीं करूँगा।' कहाँ उनके साथी और समर्थक कब अलग राह चल पड़े उन्हें पता ही नहीं चला। एक घनघोर उदासी उन पर छा गयी और वे अँग्रेज़ों की साठ-गाँठ पहचानते हुए भी इसे रोक नहीं पाये। शातिर लोग उन्हें काशी या हिमालय चले जाने की सलाह देने लगे। गाँधीजी ने कहा- "मैं तो शायद यह सब देखने को जीवित न रहूँ लेकिन जिस अशुभ का मुझे डर है, वह यदि कभी देश पर आ जाए, आज़ादी ख़तरे में पड़ जाए तो आनेवाली पीढ़ियों को मालूम होना चाहिए कि यह सब सोचना इस बूढ़े के लिए कितना यातनाकारी था।"

26

इतवार की शाम पाँच बजे जब ढूँढ़ता-ढाँढता कविमोहन कुहू के घर बंगाली मार्केट के पिछवाड़े पहुँचा तो बाहर फाटक तक उनके रेडियो से क्रिकेट कमेंट्री सुनाई दे रही थी। फाटक पर नेमप्लेट के पास ही कॉलबेल लगी थी। कॉलबेल दबाने पर पाजामा और टीशर्ट पहने एक किशोर लडक़ा बाहर आया। उसने हँसते हुए दोनों हाथ जोड़े और कहा, "गुड ईवनिंग सर।"

"तुम देवू हो, देवाशीष?"

"बेशक! आइए आप बाबा के पास बैठिए।"

अन्दर बैठक में बेंत के सोफे पर देवू के पिता आनन्द शंकर भट्टाचार्य रेडियो के पास बैठे थे। उनके घुटनों के पास क्रिकेट का बल्ला रखा था और हाथों में गेंद थी। कविमोहन के अभिवादन पर उन्होंने ज़रा-सा सिर हिला दिया लेकिन ध्यान उनका कमेंट्री पर ही रहा।

तभी कुहू अन्दर के दरवाज़े से आयी और कवि को 'आइए' कहकर साथ ले गयी।

बाहर बड़ा-सा आँगन था जिसके चारों ओर तरह-तरह के पौधे लगे हुए थे।

सलवार-कुरते और दुपट्टे में कुहू एकदम स्कूली लडक़ी नज़र आ रही थी। कॉलेज में उसके बाल जो जूड़े में बँधे रहते थे, इस वक्त कमर के नीचे तक लहरा रहे थे। उसका साँवला रंग यौवन की आभा में दमक रहा था। सबसे सुन्दर उसकी आँखें लग रही थीं जिनमें काजल की लकीर के सिवा, चेहरे पर प्रसाधन का और कोई चिह्न नहीं था।

अन्दर के कमरे में कुहू की माँ किताब पढ़ रही थीं। उन्होंने कवि का परिचय मिलने पर उसका मुस्कराकर स्वागत किया। किताब उन्होंने पलटकर रख दी। वे कुहू से बोलीं, "मैं चाय भिजवाती हूँ।"

अब तक कुहू ने अपनी उत्तेजना पर क़ाबू पा लिया था। मूढ़े पर कवि को बैठाकर बोली, "क्रिकेट मैच वाले दिन ड्राइंगरूम में बैठना मुश्किल हो जाता है।"

"पिताजी को क्रिकेट का शौक रहा है?"

"देख रहे हैं न। हाथ में गेंद ओर पास में बल्ला रखकर कमेंट्री सुनते हैं। कभी छक्का पड़ता है तो इतने जोश में आ जाते हैं कि गेंद उछाल देते हैं।"

"ख़ुद भी खिलाड़ी रहे होंगे।"

"वह तो थे। कॉलेज में इतने इनाम जीते बाबा ने। अब घुटनों में दर्द रहता है, खेलना बन्द हो गया।"

देवाशीष ट्रे में चाय और बिस्किट लेकर आया।

कुहू ने कहा, "देव, ये कविमोहनजी तुम्हारे लिए आये हैं।"

"पता है दीदी, मैं फाटक पर ही आपसे मिल लिया।"

कवि को कुहू-घर दिलचस्प लगा। पिता खेल-प्रेमी, माँ पुस्तक-प्रेमी और बेटा, दोनों।

"इन दिनों क्या पढ़ रहे हो?"

"श्रीकान्त।"

"बस कहानी-उपन्यास पढक़र टाइम वेस्ट करता है ये। कॉलेज का कोर्स कौन पूरा करेगा?"

"अभी परीक्षा में बहुत समय है। हो जाएगा।"

"आप इसकी कॉपियाँ देखें। हर पेज पर लिखता है वन्स अपॉन अ टाइम (एक बार की बात है) और कोरा छोड़ देता है। पूछो तो कहता है, अभी सोच रहा हूँ।"

"तुम तो कहानी-लेखक बन जाओगे।" कवि ने हँसकर देवू से कहा।

"लेकिन यह तो कोई कैरियर नहीं है। बाबा चाहते हैं यह भी पढ़-लिखकर प्रोफेसर बने।"

"रास्ता तो सही है। उसे पढऩे का भी शौक है और लिखने का इरादा। किस इयर में हो देवू?"

"फस्ट इयर।"

"इसकी पढ़ाई थोड़ी पिछड़ गयी है। मैंने तो उन्नीस साल में बी.ए. पूरा कर लिया था।"

कुहू की माँ एक प्लेट में सन्देश लेकर आयीं। उन्होंने कवि और कुहू के आगे प्लेट कर देवू से कहा, "खोकन मिष्टी खाबे?"

"नहीं माँ, भूख नहीं है।" देवाशीष बोला।

"आमार हाथी खेएनौ।" कहते हुए माँ ने अपना हाथ बेटे के मुँह की तरफ़ बढ़ाया। उनके लिए उन्नीस साल का लडक़ा भी शिशु था जिसे वे अपने हाथ से खिलाना चाहतीं। घर भर के लाड़ले से पढ़ाई की सख्ती कौन करे, यह भी

एक समस्या थी।

"जिसे पढऩे का शौक हो उसके लिए कोर्स की किताबें पढऩा मुश्किल नहीं होता। और एक बात बताएँ देवाशीष। एक बार बी.ए. पार हो जाए तो एम.ए. आसान होता है क्योंकि तब एक ही विषय रह जाता है।"

"यही तो मैं दीदी से कहता हूँ। इंग्लिश तो मैं पढ़ लूँ पर फिलॉसफी और पोलिटिकल साइंस का क्या करूँ।"

"ये दोनों भी दिलचस्प विषय हैं। किस कॉलेज में हो?"

"हिन्दू कॉलेज।"

"गुड। वह तो अच्छा कॉलेज है।"

बातों-बातों में सात बज गये। कवि जब जाने को उद्यत हुआ, कुहू की माँ ने आग्रह किया, "खाना खाकर जाओ।"

"आज इजाज़त दीजिए, फिर कभी।"

देवाशीष उसे बस स्टॉप तक छोडऩे आया। कवि ने उसे सुझाव दिया कि वह कभी-कभी वापसी में उसके कॉलेज की तरफ़ आ जाया करे।

देवाशीष ने कहा, "दादा, मैंने भी दो-चार कविताएँ लिखी हैं। आपको दिखाऊँगा।"

27

रक्षाबन्धन पर बस एक ही छुट्टी थी। लेकिन कवि का मथुरा पहुँचना ज़रूरी था। इसलिए वह तडक़े की गाड़ी में सवार हो गया। उस समय भी गाड़ी ठसाठस भरी हुई थी। खड़े और बैठे हुए लोगों के चेहरों पर आज के त्योहार का कोई चिह्न नहीं था। पता नहीं सवेरे-सवेरे सब कहाँ जा रहे थे।

मथुरा स्टेशन पर उतर कविमोहन आह्लालादित हो उठा। स्टेशन के प्लेटफॉर्म से ही सौंताल के मोरों का समवेत स्वर 'मियाओ, मियाओ' सुनाई दे रहा था। गर्मी ने भी मानो कुछ देर की छुट्टी ले रखी थी। यह कहना मुश्किल था कि धूप, आज के साथ कैसा सलूक करेगी लेकिन इस कुनमुनाती सुबह का मिज़ाज अच्छा था।

घर स्टेशन से दूर नहीं था फिर भी कवि ने रिक्शा कर लिया। उसे इन्दु और बच्चों को देखने की भीषण उत्कंठा हो रही थी।

उसके आने से माता-पिता और दो बहनों के चेहरे खिल उठे। तीसरी बहन कुन्ती ने डाक से राखी भेज दी थी कि माँजी की तबियत ख़राब होने के कारण वह आ नहीं सकेगी। कवि का ध्यान बार-बार सीढिय़ों की तरफ़ जा रहा था।

जीजी बोलीं, "बहू तो हफ्ता भर पहले ही आगरा चली गयी। कौन जाने कब लौटेगी।"

कवि के मन में यकायक कोई बल्ब बुझ गया।

लीला ने कहा, "हम तो जब आयँ बहू हमें दिखती ही नायँ। कभी वह चौके में होय कभी नहानघर में। उसे पता ही नहीं बड़ी ननद की इज्ज़त कैसे की जाए।"

भग्गो ने प्रतिवाद किया, "नहीं दीदी, भाभी तो तुम्हारी बहुत इज्ज़त करती है। बिल्लू-गिल्लू के कमीज़-पजामे उन्होंने ही सींकर भेजे थे।"

जीजी ने कहा, "अरे कवि कब-कब आता है। उसे आज यहाँ होना चाहिए था।"

कवि को अचानक ख़याल आया, "जीजी, उसे भी तो अपने भाइयों को सलूनो की राखी बाँधनी है।"

"वह ठीक है पर शादी के बाद ससुराल का भी ख़याल रखना चाहिए। कुन्ती को देखो, सास की ज़रा तबियत ख़राब भई तो चिट्ठी पठा दी।"

"तुमसे पूछकर ही गयी होगी।" कवि ने कहा।

"जे तूने भली कही। जब तू जाने लगा तभी याने कह दी थी कि सलूनो पर वह जरूर जाएगी। सो रानी साहेबा अपनी कुमारियों को लेकर चल दीं।"

"अकेली?"

"नायँ, छोटा भाई सुरेश आया था लिवाने।"

"कब आने की कह गयी है।"

"हमसे तो कुछ कही नायँ। सुरेश ने कही वह अगले महीने छोड़ जायगा।"

"इत्ते दिनों को चली गयी।"

"देख लो, बाय ज़रा फिकर नहीं जीजी कैसे घर सँभारेंगी।"

अपनी निराशा दबाकर कवि ने कहा, "चलो बहुत दिनों बाद आगरे गयी है इन्दु।"

भग्गो एक तश्तरी में पेठा और दालमोठ लेकर आयी, "सुरेश भैया लाये थे, खाओ।"

विद्यावती ने टोका, "पहले नहा-धोकर राखी बाँधो, तभी मुँह जूठा करना।"

कवि बोला, "भग्गो, पहले चाय तो पिला।"

"अभी लायी" कहकर वह चौके में गयी।

चाय मिली पर कवि को रुची नहीं। चाय में दूध और चीनी भरपूर थी पर पत्ती की ख़ुशबू और रंगत नदारद थी। इन्दु के सिवा कोई भी ढंग से चाय बनाना नहीं जानता था।

यों घर भरा हुआ था पर कवि को खाली लग रहा था। बार-बार उसे पत्नी और बच्चों का ध्यान आता। उसका मन हो रहा था वह आगरे चला जाए लेकिन यह मुमकिन नहीं था। कॉलेज में रक्षाबन्धन की सिर्फ एक छुट्टी थी। शाम की गाड़ी से ही उसे लौटना होगा।

बहनों ने राखी की बड़ी तैयारी कर रखी थी। लीला ने ख़ुद अपने हाथ से कलाबत्तू की राखी बनायी थी। भगवती बाज़ार से सलमे सितारे जड़ी राखी लेकर आयी थी। आरती का थाल भी दोनों ने अलग ढंग से सजाया। लीला उसके लिए पैंट और कमीज़ का कपड़ा भी लायी। कवि ने कहा, "आज के दिन बहनें लेती हैं, देती नहीं।"

लीला बोली, "तू छोटा होकर बड़ी बातें करनी सीख गयौ है। बड़ी बहनों को हक़ होता है छोटे भाई को कुछ भी दें।"

कवि ने बहनों को नेग दिया और बिल्लू-गिल्लू और दीपक को भी रुपये दिये।

फिर उसने दस-दस के दो नोट विद्यावती की गोदी में डालकर कहा, "जीजी, अभी मुझे अच्छा मकान मिला नायँ, मिल जाय तो तुम्हें ले जाकर दिल्ली घुमा दूँ।"

लाला नत्थीमल बच्चों को देखकर प्रसन्न हो रहे थे। बिल्लू-गिल्लू और दीपक के आने से घर-आँगन चहक उठा था। कवि का माँ को दिल्ली ले चलने का चाव देखकर उनके कलेजे में एक हूक उठी कि बेटे ने बाप से एक बार नहीं कहा कि आपको भी दिल्ली घुमाऊँगा। उन्होंने तसल्ली लेने की कोशिश की-चलो यह कहता भी तो मैं दुकान-मकान छोडक़र कैसे चल देता। इसकी महतारी का तो पाँव चरखे के चक्कर में बाहर निकल गया है। अब बहू के न होने से थोड़ी अक्ल ठिकाने आयी है वरना तो मेरी कभी सुनी ही नहीं इसने।

बेटे के प्यार से विद्यावती निहाल हो गयी। कुछ-कुछ मचलकर कह उठी, "अब तू आयौ है तो मोय डागदर के भी दिखाय दे। बायीं आँख से कछू टिपै ही नायँ। बस पनियाई रहै।"

कवि को चिन्ता हुई "आँखें कब ख़राब हुई, तुमने बताया ही नहीं।"

"तू यहाँ हो तो बताऊँ।"

"मैंने तुम्हें बोरिक पाउडर लाकर दिया था कि नायँ। कित्ती बार धोयी तुमने आँख। छोरे के आगे चोचले करने का क्या मतबल है।" लाला नत्थीमल बिगड़ गये। दरअसल उनकी भी आँखों में यही समस्या हो गयी थी। उन्हें एक कम्पाउंडर ग्राहक ने यह इलाज बताया था तो वे दो पुडिय़ा बोरिक पाउडर लाये थे। एक उन्होंने पत्नी को दी थी।

सचाई यह थी कि विद्यावती ने एक भी बार आँख धोयी नहीं थी। कवि को देखकर नसें ऐसी शिथिल हुईं कि सभी शिक़ायतें याद आने लगीं।

शाम की गाड़ी से कवि का वापस आना ज़रूरी था। उसने कहा, "भग्गो, तू जीजी को आँख के डॉक्टर के पास ले जाना। रुपये जीजी के पास हैं।"

विद्यावती का चेहरा पीला पड़ गया। वे डर गयीं। पता नहीं पति क्या सोचे कि कवि ने उन्हें कारूँ का खजाना दे दिया है।

"भैयाजी, बड़े डागदर की फीस सोलह रुपये है।"

"तो क्या हुआ। जीजी देंगी, हैं न जीजी?"

"मैं कहूँ अपनी मैया के इलाज को तू रुपयों की गाँठ बाँधकर दे जाय रहा है, बाप से तोय छँटाँक भर भी प्यार नहीं है कि उसका हाल भी पूछे।" नत्थीमल बोल पड़े।

"दादाजी आप स्वयं समर्थ हो, आपको हम क्या आसरा देंगे, आप तो घर भर का आसरा हो।"

लाला नत्थीमल तारीफ़ से खुश तो हुए पर उन्होंने टेक नहीं छोड़ी।

"कुछ भी कह, सच्ची बात तो यह है कि बच्चे घर से दूर जाकर निठुर हो जाते हैं। माँ-बाप से ज्यादा उन्हें अपनी आज़ादी की फिकर होवै। अब देख ले कुन्ती समसाबाद ब्याही तो वहीं की हो गयीं। तू दिल्लीवाला बन गया। सबको आजादी का चस्का लग गया।"

"इसमें क्या बुराई है। दादाजी यह समझ लो पूरी दुनिया में सारी मारकाट आजादी की खातिर है। आजादी के बिना तरक्की भी नहीं होती।"

"चलो अब तो आज़ादी मिल गयी, अब देखें तू कितनी तरक्की करेगौ।"

"हैं, आजादी मिल गयी का?" विद्यावती चौंकी।

"समझ लो सब तैयारी हो गयी है। गाँधी, नेहरू, पटेल, आज़ाद सबने अँग्रेज़ों के सामने अपनी शर्तें रख दी हैं। वाइसराय राजी हो गये हैं। बस एक बात बुरी है कि हिन्दुस्तान का बड़ा-सा हिस्सा कटकर अलग हो जाएगा।"

"कहाँ चला जाएगा।"

"पराया देश बन जाएगा। पाकिस्तान कहलाएगा। तभी देख रही हो न सिन्ध, पंजाब, कश्मीर से लोग भागे चले आ रहे हैं। इसी तरह यहाँ के लोग वहाँ जा रहे हैं।"

"भैयाजी इससे क्या फायदा। बात तो वही रही।"

लाला नत्थीमल बोले, "वही कैसे रही। हिन्दुओं को हिन्दुस्तान में अच्छा लगता है, मुसलमानों को पाकिस्तान में। इन दोनों जातियों में भाईचारा तो रहा पर रोटी-बेटी का रिश्ता नहीं बना।"

"रही-सही कसर लीग ने पूरी कर दी। जिन्ना जैसे लिबरल आदमी को कठमुल्ला बना लिया। हमारे कॉलेज में कई साथी एकदम कट्टर बन गये हैं।"

"तू उनके साथ मत रहा कर।"

"साथ काम करते हैं, उठना-बैठना तो पड़ता है।"

"ऐसे काम का क्या फायदा। यहाँ घर की घर में काम का ढेर लगा पड़ा है। लीला अच्छी-भली चक्की बन्द करबे की सोच रही है। मेरा हाल भी डाँवाडोल है।"

"दादाजी, मेरी पढ़ाई की कुछ तो कद्र कीजिए। मैं तो कहूँ लीली दीदी चक्की या तो बेच दें या एक मुनीम रख लें। बिल्लू-गिल्लू को पढ़ाई में लगाओ न कि चक्की में।"

लीला को बुरा लगा। कवि खुद तो कोई फ़र्ज के नीचे आता नहीं, बच्चों को भी बाग़ी बना रहा है।

बिगडक़र बोली, "रहने दे बड़ा आया लाटसाब। हमारे मूड़ पे पड़ी, हम काट लेंगे।"

भगवती ने बात बदलने को कहा, "तिमाही इम्तहान में मेरे सबसे ऊँचे नम्बर आये हैं, भैयाजी, कॉपी दिखाऊँ।"

वाकई हर विषय में उसके प्रथम श्रेणी के प्राप्तांक थे।

कवि बहुत खुश हुआ। उसकी पीठ ठोककर शाबासी दी और पूछा, "तब तो तू क्लास में अव्वल आयी होगी।"

"कहाँ," भगवती ने मुँह लटका लिया, "दो लडक़ों के नम्बर मुझसे भी ज्यीदा हैं। मनमोहन और गोविन्द को मैं पछाड़ ही नहीं सकती।"

"अगली बार और मेहनत कर तो अव्वल आ जाएगी। अगर उन लडक़ों को पछाड़ देगी न, तो मैं दिल्ली से तेरे लिए बड़ा-सा इनाम लाऊँगा।"

"सब पढ़ैया-लिखैया लेकर बैठ गये किसी को फिकर नहीं मेरी नैया कैसे पार लगेगी।" लीला सिर पर हाथ मारकर रोने लगी। विद्यावती उसे घपची में भरकर चुप करावें पर लीला का तो जैसे बाँध ही टूट गया।

"देख लिया न भैया जी येई मारे मेरी पढ़ाई चूल्हे में झुँक जाय है।" भगवती ने दबी ज़ुबान से भाई को बताया।

"दीदी, तुम्हारे रोने से तो जीजाजी आ नहीं जाएँगे। ये तो लडऩे से पहले सोचना था न!" कवि ने कहा।

"बताओ जीजी, मैं लड़ी थी या कुबोल बोली। मोय तो दादाजी ने जिस ठौर बैठा दिया वहाँ चुपचाप बैठ गयी। मोय सूधी जान के ही यह सब हुआ। कोई तेज बैयर होती तो आदमी को टस्स से मस्स न होवे देती।"

कवि का जी घबराने लगा। उसे लगा वह फिर एक चक्रव्यूह में समाता जा रहा है। अन्दर से आवाज़ें आने लगीं, 'यहाँ से भाग निकलो, यही वक्त है।'

कवि ने घड़ी देखी, माता-पिता के पैर छुए, बहनों के सिर पर हाथ फेरा, भतीजों को प्यार किया और अपना झोला उठा स्टेशन के लिए चल पड़ा।

बिल्लू-गिल्लू कहते रहे, "मामा लाओ हम झोला ले चलें। स्टेशन पहुँचाकर लौट आएँगे।"

कवि ने कहा, "नहीं भैया, अपनी मैया का ध्यान रखना, वह रोवे न।"

स्टेशन पहुँचकर पता चला कि गाड़ी आधा घंटा देर से आएगी। कवि बेंच पर बैठ गया। उसे घर से निकलकर राहत महसूस हो रही थी। उसे बड़ी ज़ोर से कुहू का घर याद आया। एक वह घर था जहाँ हर आदमी स्वाधीन, मुखर और सुखी था। एक यह घर है जहाँ शुभ से शुभ अवसर की मिट्टी पलीद हो जाती है। बिना लड़ाई-झगड़े, आँसू और अंगारे के बात सिलटती ही नहीं। इन्दु की ग़ैरहाजिरी में यह घर असहनीय हो जाता है। उसे अपने ऊपर खीझ आयी कि उसे यह याद क्यों नहीं रहा कि सलूनों पर इन्दु आगरे गयी होगी। न आता वह मथुरा, बहनों को मनीऑर्डर से रुपये भेज देता।

गाड़ी खचाखच भरी हुई आयी। हर डिब्बे से उतरे इक्का-दुक्का यात्री किन्तु चढ़े कहीं ज्या दा। कवि किसी तरह एक जनरल डिब्बे में सवार हो गया लेकिन वहाँ बैठने की तिल भर गुंजाइश नहीं थी। चार सवारियों की बर्थ पर छह-सात ठस-ठसकर बैठी थीं। बीच-बीच में कई सवारियाँ अपना टीन का ट्रंक रास्ते में खिसकाकर उस पर टिकी हुई थीं। इससे खड़े होनेवाले मुसाफिरों की ज्याकदा मुसीबत थी। हर कोई उनसे कहता, 'कहाँ सिर पर चढ़े चले आ रहे हो, अलग हटकर खड़े हो।' पैर टिकाने की जगह मुहाल थी।

यह रेल का डिब्बा क्या था भारतदेश का जिन्दा नक्शा था। कहीं कुल्लेदार साफे में सजे सिर आपस में पंजाबी में बोल रहे थे कहीं दाढ़ीवाले चेहरे उर्दू में आज के हालात पर तबसिरा कर रहे थे। कवि की तरफ़वाले हिस्से में दो औरतें काले बुर्के में एक-दूसरी से सटकर बैठी थीं। उसी बर्थ पर चार स्त्रियाँ और चार बच्चे भी आसीन थे। इन स्त्रियों ने दुपट्टे से सिर ढँक रखा था। उनके चेहरे निर्विकार थे लेकिन बच्चों को डाँटते और टोकते वक्त उनमें गुस्से का पुट आ जाता।

अलीगढ़ पर दोनों बुर्केवाली सवारियाँ और उनके साथी दो मर्द डिब्बे से उतर गये। खाली जगह पर बैठने की हड़बड़ी में खड़े यात्रियों में काफ़ी खलबली मची। तभी एक मोटी-सी स्त्री उस खाली जगह में लेटकर अपने पेट पर हाथ फेरने और हाय-हाय करने लगी। उसकी तबियत ख़राब लग रही थी। साथवाली स्त्री उसे अख़बार से हवा करने लगी। खड़े हुए लोगों में से एक को भी बैठने की जगह नहीं मिली क्योंकि अब तक ठस-ठसकर बैठे लोग कुछ पसरकर बैठ गये। गाड़ी सरकने को थी कि डिब्बे में चार सवारियाँ और घुस आयीं। बुर्कानशीन स्त्री, दो लडक़े और एक आदमी। आदमी ने अन्दर बर्थ पर पहुँचते ही सवारियों को घुडक़ा, "यहाँ खड़े होने की जगह नहीं और आपको लेटने की सूझी है। ठीक से बैठो, लेडीज़ को बैठना है।" उसकी घुडक़ी में कडक़ थी। लेटी हुई औरत कराहते हुए बैठ गयी। बुर्केवाली स्त्री बैठी और दोनों बच्चों को भी बैठाने लगी। एक तो किसी तरह फँसकर बैठा दूसरा नहीं बैठ पाया। आदमी ने बिगडक़र कहा, "छोटे बच्चों का टिकट नहीं लगता, उन्हें सीट पर क्यों बिठाया है, गोदी लो।" औरतें बोल पड़ीं, "तुम कहाँ के कानूनदाँ हो जी, हमारे बच्चे ऐसे ही बैठेंगे।" आदमी ने जेब से टिकट निकालकर दिखाये, "देखो इन बच्चों का हमने टिकट कटाया है।"

"तो हम क्या करें? हम तो झाँसी से बैठकर आ रहे हैं।"

एक छोटे बच्चे को उठाकर वह आदमी ज़बरदस्ती महिला की गोद में डालने लगा। बच्चा चिल्ला उठा। तभी सामने की बर्थ से एक आदमी उठा और बिगड़ैल आदमी की बाँह झिंझोडक़र बोला, "ख़बरदार जो बच्चे को हाथ लगाया।"

"तुम्हारे बच्चे बैठेंगे, हमारे खड़े रहेंगे क्या? ग़ाजियाबाद तक जाना है।"

"ऐसा ही नखरा है तो फस्ट क्लास में जाते, थर्ड क्लास में क्यों आये हो।"

बिगड़ैल आदमी और भी उग्र हो गया, "जगह तुम्हारे बाप की नहीं है, रेल तो सबकी है, चुप करके बैठो।"

एक स्त्री अपने आदमी से चुप होने का इशारा कर रही थी। बच्चे भी बेचैन हो रहे थे।

आदमी ने जोश में आकर बिगड़ैल आदमी को हल्का-सा धक्का दे दिया।

बिगड़ैल ने कमीज़ की जेब में हाथ डालकर फौरन रामपुरी चाकू निकाल लिया, "साले अभी चीरकर रख दूँगा, सारा मोबिलऑइल निकल जाएगा तेरा।"

सभी बच्चे और औरतें डर के मारे चिल्लाने लगे। कई लोग उठकर खड़े हो गये, "जाने दो भई, क्यों गरम होते हो, बैठना है तो बैठ जाओ।"

बिगड़ैल आदमी ने ख़ूनी नज़रों से प्रतिद्वन्द्वी को देखते हुए चाकू मोडक़र जेब के हवाले किया। यात्रियों ने उसके लिए जगह बना दी। बच्चे सहमकर पहले ही माँओं से जा चिपके थे। बिगड़ैल आदमी का परिवार ठीक से बैठ गया। डिब्बे का माहौल तनावपूर्ण हो गया। पहले की बतकही और शोर थम गया। शिकोहाबाद पर जब गाड़ी में थोड़ी जगह हुई तो सवारियाँ उठकर इस तरह बैठ गयीं कि हिन्दू एक तरफ़ हो गये और बाकी तबके दूसरी तरफ़।

भारत का विभाजन अभी घोषित नहीं हुआ था लेकिन जनता रोज़ विभाजित हो रही थी। विभाजन से ज्या दा विभाजन की ख़बरें लोगों को उद्वेलित कर रही थीं। अख़बारों में कभी कैबिनेट मिशन के उद्देश्य छपते जो पढऩे में मासूम लगते लेकिन लोगों में उनकी मीमांसा का अलग ही रूप निकलता। इन उद्देश्यों में भारत-विभाजन का कोई संकेत नहीं था लेकिन जनता के मन में अँग्रेज़ सरकार के लिए घोर अविश्वास था। उन्हें लगता ऐसा हो ही नहीं सकता कि टोडी बच्चा हमेशा के लिए वापस ब्रिटेन चला जाए।

कुछ लोग महात्मा गाँधी की अहिंसावादी नीतियों को ही विभाजन का जिम्मेदार ठहराते। उन्हें लगता आम सहमति निर्मित करने के चक्कर में गाँधीजी हर निर्णय में ढुलमुलपन दिखा रहे हैं। दूसरी ओर मुहम्मद अली जिन्ना दो टूक शब्दों में कह रहे थे हिन्दुस्तान कभी भी एक राष्ट्र नहीं था। एक हिन्दुस्तान में न जाने कितने हिन्दुस्तान छुपे बैठे थे। एक तरफ़ सभी रियासतों के राजा अपना अलग वर्चस्व बनाये हुए थे, दूसरी ओर मुसलमान यहाँ के समाज में अलग-थलग पड़े थे। जिन्ना ने साफ़ शब्दों में कहा कि हिन्दुस्तान की हर समस्या का हल पाकिस्तान है।

एक समय ऐसा था जब गाँधीजी और जिन्ना दोनों हिन्दुस्तान को अँग्रेज़ शिकंजे से आज़ाद कराना चाहते थे। यह अँग्रेज़ सरकार की सफलता थी कि उन्होंने उदार जिन्ना को अनुदार और संकीर्ण विचारधारा की तरफ़ मोड़ दिया। उन्होंने गाँधीजी को सम्पूर्ण भारत का नेता मानने की बजाय सिर्फ हिन्दुओं का नेता माना क्योंकि इससे उनकी सम्प्रदायवादी नीति को बल मिलता था। जिन्ना ने तो अपने को मुसलमानों का प्रतिनिधि नेता घोषित कर साफ़ कह दिया, "हम दस करोड़ लोग हैं, हम अपने अधिकारों के लिए आखिरी दम तक लड़ेंगे।" उनके ऐसे बयानों से मुसलिम मानसिकता में एक हेकड़ी और आत्मविश्वास पैदा हुआ। पाकिस्तान की स्थापना लोगों के लिए

युटोपिया जैसा स्वप्न बनती गयी। वहाँ जाने के इच्छुक लोगों को हिन्दुस्तान कबाड़घर की तरह लगने लगा जहाँ वे अपना रद्दी सामान और परिवार के अवांछित सदस्य पटककर नये-नकोर देश में जा सकते थे।

विभाजन की वार्ता ऊँचे राजनीतिक स्तर पर चलने से आम जन के मनोविज्ञान पर लगातार प्रतिगामी प्रभाव पड़ रहे थे। लोगों के दिमाग में जैसे चॉक से लकीर खिंच गयी थी, हम यहाँ के, वे वहाँ के; जबकि अभी यह भी स्पष्ट नहीं था कि देश के कौन से हिस्से पाकिस्तान में जाएँगे। अचानक अफ़वाह फैलती कि अलीगढ़ पाकिस्तान में चला जाएगा। लोग अचम्भा करते कैसे अलीगढ़ दूसरे देश में जाएगा, क्या उसके पहिये लग जाएँगे या पाकिस्तान में एक नया शहर बसाकर उसका नाम अलीगढ़ रखा जाएगा। लोग सोचते अगर सारे ताले बनानेवाले कारीगर पाकिस्तान चले गये तो हम हिन्दुस्तानी अपने घरों में ताले कहाँ से लाकर लगाएँगे। तभी ख़बर उड़ती कि अजमेर तो पाकिस्तान ज़रूर चला जाएगा। अजमेर शरीफ़ के बिना उनका गुज़र ही नहीं। यहाँ के लोग कहते, "अजमेर शरीफ़ पर तो हम भी चादर चढ़ाते हैं, ऐसे कैसे वे उठाकर ले जाएँगे।" 1947 के ये दिन बड़ी उलझन, ऊहापोह और असमंजस के दिन थे। स्कूल के बच्चे अपनी तरह के तुक्के लगाते, "अब लाल क़िला और ताजमहल यहाँ नहीं रहेगा। इसकी एक-एक ईंट उखाडक़र ये लोग पाकिस्तान ले जाएँगे।"

सुननेवाले बच्चे कहते, "वहाँ जाकर कैसे जोड़ेंगे?"

पहलेवाले बच्चे कहते, "अरे अपने साथ तस्वीर ले जाएँगे। तस्वीर देख-देखकर जोड़ेंगे।"

औरतें कहतीं, "हमने तो सुनी है फिरोज़ाबाद भी पाकिस्तान में चला जाएगा। सारे मनिहार अपना साँचा-भट्टी वहीं लगाएँगे।"

"हाय राम फिर हमें चूड़ी कौन पहराएगा। हम क्या नंगी-बुच्ची कलाइयाँ रखेंगी?" कुछ और औरतें पूछतीं।

जानकार औरतें अपनी साथिनों की घबराहट बढ़ाने के लिए बतातीं कि बनारसी साड़ी बुननेवाले जुलाहे, बुनकर सब पाकिस्तान जानेवाले हैं।

अबोध औरतें हिन्दुस्तान के भविष्य को लेकर भयभीत हो जातीं। उन्हें लगता उनकी बेटियों के ब्याह में न जामदानी साड़ी आएगी, न मेंहदी लगेगी न शहनाई बजेगी, न चूड़ियाँ पहनी जाएँगी।

औरतें कहतीं, "किसने कहा बँटवारा होना चाहिए। जैसे सब मिलजुलकर इत्ते बरस रहते रहे वैसे ही रहते रहें।"

दिल्ली, बम्बई और लन्दन में बैठे नेताओं को जनता की राय दरकार नहीं थी। एक बार बँटवारे की बात उठी तो उसमें क्षेपक जुड़ते गये। हर उदारवादी नेता के विचार को अतिवादियों ने तोड़ा, मरोड़ा और उसका भुरकस निकाल दिया। मौलाना अबुलकलाम आज़ाद को सिर्फ इसलिए गालियाँ मिलीं क्योंकि वे मुसलमान होते हुए भी एक देश, एक राष्ट्र व एक संघीय सरकार की ज़रूरत पर ज़ोर दे रहे थे। केबिनेट मिशन के सर क्रिप्स ने उनसे कहा कि मुसलिम बहुल प्रान्तों के लिए अलग अधिकार-तालिका बना दी जाए तो आज़ाद ने कहा कि यह विकल्प एक संघीय सरकार की अवधारणा के विरुद्ध होगा। गाँधीजी ने अन्त तक कहा कि वे दो राष्ट्र के सिद्धान्त से एकदम असहमत हैं। इससे किसी का भला नहीं होगा।

सन् 1947 में आज़ादी आते तक गाँधीजी अपनी मान्यताओं में बिल्कुल अकेले पड़ गये। महत्त्वाकांक्षी नेताओं को लगने लगा कि आज़ादी की लड़ाई अनिश्चित काल तक चलती रहेगी, अँग्रेज़ कभी भारत नहीं छोड़ेंगे, गाँधीजी अहिंसा की जिद ठाने, सबको घिसटाएँगे और लीग लोगों में बगावत के बीज डालती रहेगी।

बँटवारे की चर्चा इतने लम्बे समय तक चली कि जनता में बदहवासी फैलती गयी। सडक़ों पर, घरों में, दुकानों में लूटपाट, छुरेबाज़ी और हाथापाई की घटनाएँ आम हो गयीं। कश्मीर, पंजाब और सिन्ध से भागकर लोगों ने दिल्ली और अन्य शहरों का रुख किया। दिल्ली में यकबयक इतनी भीड़ बढ़ गयी कि मकान तलाश करना दुश्वार हो गया। शक़-शुबहे का वातावरण ऐसा कि जो शरणार्थी नहीं था उसे भी शरणार्थी मानकर लोग झट अपना दरवाज़ा बन्द कर लेते।

कवि के सामने समस्या थी कि सीमित आमदनी में से वह आधी तनखा घर भेजे तो आधी से गुज़र कैसे हो। कभी-कभी पैसे बचाने के विचार से वह स्टोव पर ख़ुद खिचड़ी बनाने का उपक्रम करता लेकिन हर बार कुछ-न-कुछ गड़बड़ हो जाती। कभी खिचड़ी कच्ची रह जाती तो कभी जलकर ढिम्मा बन जाती। कभी उसमें नमक ज्याादा पड़ जाता तो कभी बिल्कुल फीकी रह जाती। खाना बनाने के बाद बर्तन-साफ़ करना भी एक समस्या थी। ज्याददा समय उसे सडक़ छाप रेस्तराँ और ढाबों पर मयस्सर रहना पड़ता। उसकी इच्छा होती कहीं एक कमरा और रसोई का भी मकान मिल जाए तो वह इन्दु और बच्चों को यहाँ बुला ले। लेकिन मकान महँगे होते जा रहे थे।

कवि को यह देखकर हैरानी होती कि सिन्ध, पंजाब से आये लोगों में किस हद तक संघर्षधर्मिता और जिजीविषा थी। सीताराम बाज़ार के इधरवाले मोड़ पर एक अधेड़ आदमी चटाई बिछाकर बडिय़ाँ पापड़ बेचने लगा था। उसने एक गत्ते पर लिखकर टाँग रखा था 'अमृतसर की बडिय़ाँ-पापड़'। अमृतसर में स्वर्णमन्दिर के सामनेवाली गली में उसकी बड़ी-सी दुकान थी जिस पर बड़ी-पापड़ के अलावा मसाले और दालें बिकती थीं। दंगों में उसकी दुकान आग के हवाले हो गयी। घर पर थोड़ा माल रखा था, वही लेकर वह अपनी पत्नी के साथ दिल्ली चला आया। उसने गुरुद्वारे में शरण ली लेकिन लंगर में खाना नहीं खाया। अपने शहर में वह दस को खिलाकर खाता था। मुफ्त की रोटी उसे स्वीकार नहीं थी। वह सारा दिन सीताराम बाज़ार में बड़ी-पापड़ बेचता। उसकी पत्नी दुपट्टे से अपना सिर लपेटे पास में बैठी रहती। रात को वे चाँदनी चौक या लाजपतराय मार्केट में ढाबे से ख़रीदकर दाल-रोटी खाते। पटरी पर लगनेवाली दुकानों की संख्या बहुत बढ़ गयी थी। जो लोग अपना थोड़ा-बहुत सामान लाने में कामयाब हो गये थे उन्होंने उसी से अपना धन्धा शुरू कर दिया। ऊँची दुकानों के मुकाबले वे सस्ते में सामान देते। ग्राहक से मीठी बोली बोलते। दिल्ली के लिए यह बिल्कुल नये किस्म का व्यापार-विनिमय था। गोरे रंग और कंजी आँखोंवाले ख़ूबसूरत पंजाबी और सिन्धी विक्रेता ग्राहकों को 'आओजी बादशाहो', 'मालिक' और 'साहब' कहकर सम्बोधित करते। दिल्ली अभी तक ख़ानदानी किस्म के मोटे थुलथुल सेठों से परिचित रही जो गद्दी पर ठस्स बैठे रहते। उनका व्यापार मुनीम और सेल्समैन के जरिए चलता। उनकी सूरत देखकर लगता ग्राहक और मौत बस एक दिन आते हैं। ग्राहक के प्रति कोई स्वागत भाव उनमें न होता। ऊपर से ये व्यापारी दुकान में जगह-जगह लिखकर तख्तियाँ लटका देते 'एक दाम', 'उधार मुहब्बत की कैंची है'। कम आमदनीवाला ग्राहक ऐसी जगहों में घुसने की हिम्मत ही न करता। इनके बरक्स, अपने ठीये-ठिकाने से उखड़े हुए लोग अपने दोस्ताना व्यवहार से ग्राहक का दिल जीत लेते। उन्होंने दिल्ली में कपड़ों को कुछ और रंगीन बना दिया, खाने को कुछ और चटख़ारेदार और व्यापार की रफ्तार में फुर्ती भर दी।

>>पीछे>> >>आगे>>

शीर्ष पर जाएँ

दुक्खम्-सुक्खम्
ममता कालिया

अनुक्रम अध्याय 5 पीछे आगे

आगरे के गोकुलपुरा में रहते हुए, कुछ दिन तो इन्दु और बेबी-मुन्नी का बहुत मन लगा। अगल-बगल होते हुए भी आगरे और मथुरा की सभ्यता, संस्कृति बिल्कुल अलग थी। घर की दिनचर्या भी भिन्न थी। फिर यहाँ इन्दु के ऊपर काम की अनिवार्यता और जिम्मेदारी नहीं थी। मन हुआ तो भाभी के साथ कपड़े धुलवा लिये, तरकारी कटवा दी, नहीं हुआ तो बच्चों को लेकर छत पर चली गयी।

इन्दु के चार भाई थे जिनमें से दो अभी पढ़ रहे थे। बड़े दो भाइयों ने यहाँ बीच बाज़ार में दवाओं की दुकान खोली थी 'फ्रंटियर गुप्ता स्टोर'। बड़े भाई इंटर पास थे और छोटे भाई ने फ़ार्मेसी में डिप्लोमा किया था। पश्चिम पंजाब में अपना समृद्ध सराफ़ा व्यापार छोडक़र दवाओं की शीशी और गोलियों में मन लगाना आसान तो नहीं था पर उन्होंने अपनी सूझबूझ से बहुत जल्द व्यापार जमा लिया। कालीचरण और लालचरण को दवाओं की अच्छी जानकारी हो गयी। वे दवाओं के साथ आया साहित्य और निर्देश पुस्तिका ख़ूब ध्यान से पढ़ते। रोगी को दवा देते समय वे सलाह भी देते, "यह ख़ाली पेट खाना, यह दवा नाश्ते के बाद की है। इस दवा से ख़ुश्की हो जाती है, दूध ज़रूर पीना।"

रोगी अभिभूत हो जाता। उसे लगता बिना फीस दिये यहाँ सेंत में डॉक्टर मिल जाता है। उन दोनों बड़े भाइयों को लोग डॉक्टर साहेब कहते। सुबह दुकान खुलने से पहले लालचरण पिछले कमरे में अक्सर खरल में अनेसिन और एस्प्रो की गोलियाँ पीसते और उनकी छोटी पुडिय़ा बना लेते। यह सिरदर्द, बदनदर्द की पुडिय़ा थी। इसका कागज़ सफेद रहता और हर पुडिय़ा पर नम्बर एक लिखा रहता। इसी तरह बैरालगन और बैलेडिनॉल की गोलियाँ पीसकर वे पीले कागज़ में पुडिय़ा बनाते जिन पर नम्बर दो लिखा रहता। यह पेटदर्द की पुडिय़ा थी। इन दो पुडिय़ों के चलते लालचरण ने बहुत यश और धन अर्जित किया। सीधे-सादे अनपढ़ ग्राहक उन्हें दो पुडिय़ा का जादूगर मानते। कालीचरण ने मिक्सचर बनाना सीख लिया था। उनके मिक्सचरों से खाँसी, जुकाम, बुख़ार और बदहज़मी ठीक हो जाती।

'फ्रंटियर गुप्ता स्टोर' की कमाई अच्छी थी। रात नौ बजे दोनों भाई जब दुकान बढ़ाकर लौटते उनकी जेबें नोटों और फुटकर पैसों से फूली रहतीं। सारा पैसा वे एक रूमाल पर उँड़ेलकर गिनते और कुछ रेजगारी रोककर बाकी पैसे रुपये तिजोरी में रखते जाते। यह रेजगारी वे बीवी-बच्चों में बाँट देते। उनके घर लौटने की बच्चे-बच्चे को

प्रतीक्षा रहती। अक्सर माँ-बच्चों में बहस हो जाती। माएँ चाहतीं कि बच्चे अपनी रेज़गारी उनके पास जमा करें। बच्चे कहते, 'पापा ने हमें दिये हैं, हम अपनी गुल्लक में डालेंगे।'

इन्दु के आने पर रेज़गारी में तीन हिस्से और बनने लगे। बड़े भाई कालीचरण इन्दु, बेबी, मुन्नी को भी पैसे देते। इन्दु निहाल हो जाती। भाई का प्यार और अपनापन वह अपनी आत्मा तक महसूस करती। लेकिन भाभियों के चेहरे कठिन हो जाते। प्रकट में कुछ न कहतीं लेकिन चौके में बैठ खुसर-पुसर करतीं कि बीबीजी जाने कब विदा होंगी!

कालीचरण, लालचरण की एक और आदत थी। रोज़ रात को वे मौसम की कोई-न-कोई खाने की चीज़ घर ज़रूर लाते। कभी लीची तो कभी खुबानी, कभी चैरी। इस तरह वे एबटाबाद के उन दिनों को वापस लौटाने की चेष्टा करते जब उन्होंने ये सब फल इफ़रात में देखे और खाये थे। दालमोठ और तले हुए काजू तथा सेम के बीज भी उन्हें पसन्द थे। फुर्सत के किसी छोटे-से हिस्से में लालचरण, पंछी या अग्रवाल हलवाई के यहाँ से ये नमकीन ख़रीदकर रख लेते। उन सबकी थाली जब परोसी जाती उसमें भोजन के साथ थोड़े-से काजू, सेमबिज्जी और दालमोठ ज़रूर रखी जाती। इन्दु के आने पर भाइयों को न जाने कब के भूले-बिसरे स्वाद याद आने लगे। कालीचरण कहते, "इन्दो तुझे पता है अम्माजी काँजी के बड़े कैसे बनाती थीं?"

इन्दु इन दिनों बच्ची की तरह चहक रही थी, "हाँ भैया, मैं ही तो दाल पीसती थी। इमामदस्ते में राई कूटना, मर्तबान में तले हुए बड़े और पानी डालना सब मेरे काम थे। अम्माजी से उठा-बैठा कहाँ जाता था।"

"ये भाभी और रुक्मिणी बनाती हैं पर वह स्वाद नहीं आता।" लालचरण कहते।

भाभियाँ तन जातीं। रुक्मिणी अपनी बैठी आवाज़ में प्रतिवाद करती, "चाहे कित्ता भी अच्छा बना दो, ये तो यही कहेंगे कि अम्माजी जैसा नहीं बना।"

"कोई तो कसर रह जावे है।" लालचरण कहते।

"भाभी आप मर्तबान में हींग का धुआँ देती हैं कि नहीं।" इन्दु पूछती।

"हम तो हींग, पिट्ठी में डालते हैं।"

"वह तो सभी डालते हैं। मर्तबान में हींग की ख़ुशबू ज़रूर होनी चाहिए। उसी से बड़ों में स्वाद आता है।"

"हमें तो पता ही नायँ मर्तबान में हींग कैसे मली जाय!"

"वह लो। सीधी-सी बात है। बलता हुआ अंगारा चिमटे से उठाकर साफ जमीन पर रखो। उसके ऊपर हींग की छोटी डली डालो। इसके ऊपर मर्तबान मूँदा मार दो। पाँच मिनट वैसे ही पड़ा रहने दो। अब मर्तबान उठाकर जल्दी से उसके मुँह पर ढक्कन बन्द करो। पाँच मिनट बाद ढक्कन खोलकर मनमर्जी अचार डाल लो।"

"बीबीजी आपैई डाल के जाना काँजी के बड़े। हमपे तो होवे ना इत्ती पंचायत।"

कालीचरण ने अनुज पत्नी को डाँट दिया, "इन्दु के मत्थे मढ़ दिया काम, तुम कुछ सीखोगी कि गँवार ही बनी रहोगी।"

"देखेंगे कै रोज बहन खिलाएगी!" कहकर दोनों भाभियाँ सामने से हट गयीं।

इन्दु को एहसास हुआ कि भाभियाँ बुरा मान गयीं। उसने अस्फुट स्वर में कहा, "भैया आप भी क्या ले बैठते हो। अम्माजी गयीं, उनके साथ ही कितनी सारी चीज़ें चली गयीं, किस-किसको याद करोगे!"

देखा जाए तो वे सब लडक़पन के स्वाद थे जिनमें उत्तर-पश्चिम पंजाब सीमान्त का हवा-पानी और माँ का हाथ शामिल था। गहनों के क़ारोबार की समृद्धि जीवन के हर पहलू में झलकती। एबटाबाद में माँ के हाथ की बनी गुच्छी की रसेदार तरकारी इतनी लज़ीज़ होती कि चाहे कितनी भी बने थोड़ी पड़ जाती। तीनों भाई-बहन उसे बोटी की सब्ज़ी कहते। रसे में डूबकर गुच्छियाँ फूल जातीं। उन्हें चूस-चूसकर स्वाद लेने में सामिष भोजन का आनन्द आता।

इसी तरह से मेथी-दाने की खटमिट्ठी चटनी, खरबूज़े के बीज और काली मिर्च की तिनगिनी केवल यादें बनकर रह गयी थीं।

इन्दु ने देखा आजकल दोनों भाभियाँ उससे कम बोलतीं। आपस में उनकी बातचीत पूर्ववत् चलती। उसके आने पर वे चुपचाप चौके के काम में लग जातीं।

बच्चों में कोई दूरी नहीं थी। बड़े भाई के तीनों बेटे श्याम, रवि और विनय और छोटे भाई का बेटा सुशील, बेबी-मुन्नी के साथ मिलकर धमा-चौकड़ी मचाते। चोर-सिपाही खेलते हुए श्याम, बेबी के बालों का रिबन खींचकर खोल देता। उसके बाल बिखर जाते। तब वह उसे चिढ़ाता 'भूतनी आ गयी, भूतनी देखो।' बेबी पैर पटकने लगती। मुन्नी उसके पास जाकर उसे पुच-पुच करती। विनय बेबी की उमर का था। बेबी उसकी किताब फाड़ देती। वह मारने लपकता। दोनों गुत्थमगुत्था हो जाते। बड़ी मुश्किल से उन्हें छुड़ाया जाता। कभी-कभी विनय और बेबी के बीच ज्ञान-प्रतियोगिता होती। श्याम टीचर बन जाता। हाथ में फुटरूलर लेकर वह पूछता-

"वॉट इज़ यौर नेम?

"वॉट इज़ यौर फादर्स नेम?"

"वॉट इज़ यौर मदर्ज नेम?"

"वेयर डू यू लिव?"

"वेयर इज़ यौर नोज़?"

"वेयर आर यौर आईज़?"

"वेयर आर यौर टीथ?"

"वेयर आर यौर इयर्ज?"

इस प्रतियोगिता में बेबी थोड़ा चकरा जाती। उसे अँग्रेज़ी का ज्या दा ज्ञान नहीं था। वह विनय को देखकर अपनी नाक, कान, आँख को हाथ लगाती जाती।

श्याम पास-फेल घोषित करता, "विनय फस्ट, बेबी फेल।"

"ऊँ ऊँ ऊँ" बेबी रोती और पैर पटकती। सब बच्चे उसे चिढ़ाते, "तेरा नाम प्रतिभा नहीं पपीता है। ए पपीता इधर आ?"

बेबी दौडक़र इन्दु की गोद में लिपट जाती, "मम्मी अपने घर चलो, भइया गन्दा।"

इस बार सुरेश घर आया तो इन्दु ने कहा, "सुरेश मुझे यहाँ छोडक़र तू तो भूल ही गया कि बहन को वापस भी ले जाना है।"

सुरेश हँसा, "नहीं, भूला नहीं। मैंने तो सोचा वहाँ काम में खटती हो, ज़रा आराम कर लो।"

"नहीं भैया, वहाँ जीजी को परेशानी हो रही होगी।"

"इन्दु जीजी मेरी मुसीबत यह है कि अगले हफ्ते मेरे इम्तहान शुरू हो रहे हैं। मैं एक भी दिन बरबाद नहीं कर सकता। कहो तो तुम्हें रेल में बैठा दूँ, वहाँ दादाजी उतार लेंगे।"

"क्या बताऊँ भैया, ससुराल में ऊँट कौन करवट बैठे किसे क्या पता, इसी बात में किल्ल-पौं न शुरू कर दें। ये भी दिल्ली में हैं, सो और मुश्किल।"

एक-दो दिन दिमाग दौड़ाने में लग गये कि इन्दु वापस कैसे जाए। भाभियाँ ननद के जाने के प्रस्ताव से इतनी उत्साहित हो गयीं कि उन्होंने सेरों पकवान बना डाले। बच्चियों के लिए रेडीमेड फ्रॉकें आ गयीं ओर इन्दु के लिए ऑरगैंडी की साड़ी। इन्दु ने दबी जुबान से कहा, "दादाजी, जीजी और भग्गो के लिए कछू हो तो मैं सिर ऊँचा करके जाऊँ।" भाभियों ने दरियादिली दिखायी। सबके लिए धोती जोड़ा और कमीज़-जम्पर का इन्तज़ाम किया गया।

भाइयों के लिए दुकान छोडक़र जाना मुमकिन नहीं था। उन्होंने इन्दु को इंटर क्लास की टिकटें थमाकर कहा, "हमारी पहचान के श्यामसुन्दर मोदी इसी गाड़ी से मथुरा जा रहे हैं, वह तुम्हारी देखभाल कर लेंगे।"

इन्दु ने एक नज़र उन्हें देखकर हाथ जोड़ दिये। वे ठिगने और अधेड़, सेठ किस्म के आदमी थे जो गाड़ी चलने के पहले ही अपनी बर्थ पर लेटकर 'फिल्मी दुनिया' पढ़ रहे थे।

इन्दु किसी भी तरह मथुरा पहुँचना चाहती थी। उसने भाइयों को चिन्तामुक्त किया, "आप फिकर न करें, खाना-पानी सब मेरे पास है। आप चलें, नमस्ते।"

इंटर के डिब्बे में बहुत-थोड़े यात्री थे। एक पूरी बर्थ पर बेबी-मुन्नी और इन्दु बैठ गये। शाम चार बजे गाड़ी चली। इसका मथुरा पहुँचने का निर्धारित समय साढ़े छ: था। अक्सर यह लेट हो जाती थी। आखिर कितना लेट होगी,

यही सोचकर इस गाड़ी को चुना गया था। फिर स्टेशन के इतनी पास घर होने से इसका भी डर नहीं था कि इन्दु घर कैसे पहुँचेगी? कोई-न-कोई घर से आ ही जाएगा। कितनी भी लद्धड़ हो, गाड़ी आखिर बढ़ तो मंजिल की ओर रही थी।

खिडक़ी से रह-रहकर कोयला आ रहा था।

मोदीजी लद्द से ऊपर से उतरे और उन्होंने एक झटके में खिडक़ी बन्द कर दी।

बेबी-मुन्नी चिल्लाने लगीं, "खिडक़ी खोलो, मम्मी खिडक़ी।"

बौखलाकर मोदीजी ने खिडक़ी आधी खोल दी। बच्चों को सरकाकर वे इन्दु के पास बैठ गये।

इन्दु को यह बड़ी अभद्रता लगी। उसने अपना आप कुछ अधिक समेट लिया और आत्मस्थ होकर बैठ गयी। मोदीजी ने बातचीत की पहल की, "आपके घर में कौन-कौन हैं?"

"पूरा परिवार है।" इन्दु ने कहा।

"लालचरण बता रहा था इन बच्चियों के बाप तो दिल्ली में रहते हैं।"

"इससे क्या, घर तो उन्हीं का है।"

"आपको तो बड़ी परेशानी होती होगी। यहाँ सास का चंगुल, वहाँ उनके ऊपर अनजान औरतों का।"

"सास तो मेरी माँ जैसी है।" इन्दु ने कहा और अपनी जगह से उठकर बच्चों के पास खिडक़ी से लगकर बैठ गयी। बेबी रोने लगी, "हम खिडक़ी पर बैठेंगे।"

इन्दु ने बेबी को गोद ले लिया।

मोदीजी ने मुन्नी को पुचकारा, "आजा बेटा चाचा की गोदी।"

मुन्नी घबराकर माँ से चिपक गयी।

ऊपर से इन्दु शान्त मुद्रा में, खिडक़ी से बाहर नज़र टिकाये थी। अन्दर उसका दिल धड़धड़ा रहा था। डिब्बे में चढ़ते हुए उसने देखा था उसमें मुश्किल से सात-आठ मुसाफिर थे। उसे लग रहा था कहीं ये सब बीच के स्टेशन भरतपुर पर उतर गये तो वह क्या करेगी। उसने सोचा अगर अब यह आदमी कोई हरकत करेगा तो वह चलती गाड़ी से कूद पड़ेगी। उसका रुख देखकर मोदीजी सामने की बर्थ पर चले गये। लेकिन इन्दु को लग रहा था कि वे 'फिल्मी कलियाँ' पढऩे के बहाने उसी के चेहरे पर नज़र गड़ाये हुए हैं।

इन्दु को सुरेश पर गुस्सा आया। साथ आ जाता तो कोई फेल नहीं हो जाता। कुछ ही घंटों की बात थी। उसी दिन लौट जाता।

बेबी इन्दु को हिला-हिलाकर पूछ रही थी, "मम्मी, मम्मी, भैया मुझे भूतनी क्यों कहता है?"

इन्दु ने बेबी को चूम लिया, "हम भैया को मारेंगे। हमारी बेबी तो रानी बेटी है, भूतनी नहीं है।"

कालीचरण ने विदा के समय इन्दु को काफी रुपये शगुन के तौर पर दिये थे। इन्दु ने बहुत मना किया, "रहने दो भैया, पहले ही तुम्हारा बहुत ख़र्च हो गया।"

कालीचरण की आँखें पनिया गयीं। उन्हें लगा अपनी इस छोटी बहन को उन्होंने कुछ भी तो नहीं दिया। माँ की मौत पर इन्दु आयी नहीं थी सो दोनों बहुओं ने सास का सारा गहना कपड़ा आपस में बन्दरबाँट कर लिया। क़ायदे से उसमें इन्दु का हक़ बनता था। लालचरण ने बहुत-सी दवाओं की पुडिय़ाँ दीं। कहने लगा, "रख लो, बच्चोंवाला घर है, हारी-बीमारी में काम आएँगी। हरेक पुडिय़ा पर बीमारी का नाम लिखा है।"

अब इन्दु ने रूमाल खोलकर देखा, दवाओं के अलावा सौ के तीन नोट और दस-दस के दो-तीन नोट थे। तीन सिक्के एक रुपये के थे। इनके अलावा सलूनो के दिन भी चारों भाइयों ने सौ-सौ का पत्ता उसे दिया था। बेबी-मुन्नी को अलग मिले थे।

दवाइयाँ थैले में डालकर इन्दु ने रुपयों को रूमाल में लपेटकर ब्लाउज़ के अदर रख लिया।

मुन्नी निंदासी हो रही थी। इन्दु ने बेबी को गोद से उतारकर मुन्नी को थाम लिया।

बच्चे इस समय इन्दु के लिए झंझट भी बने थे और कवच भी। उसने सोचा बच्चे साथ न होते, तब यह आदमी लम्पटपना दिखाता तो वह खींचकर एक रैपटा लगाती। ज्याउदा कुछ करता तो वह चलती गाड़ी से कूद जाती पर इन अबोध बच्चों का वह क्या करे जो उसके बिना एक पल भी नहीं रह सकते। पति की अनुपस्थिति में इन्हीं में उसका दिल लगा रहता। उसे लगता ये उसके सजीव खिलौने हैं।

गाड़ी बिना अटके मथुरा पहुँच गयी। इन्दु को इतनी उतावली थी कि वह पहले से ही मुन्नी को गोद में सँभाले खड़ी हो गयी।

बेबी ने उसकी साड़ी पकड़ते हुए कहा, "मम्मी सामान!"

धीमी होती गाड़ी से इन्दु ने प्लेटफॉर्म पर नज़र दौड़ाई। लाला नत्थीमल, बिल्लू-गिल्लू का हाथ थामे खड़े हुए थे। उसने हाथ हिलाया। उसे इतनी सुरक्षा की भावना कभी नहीं मिली थी जितनी इस समय मिली। उसके उतरते ही, पास खड़ा छिद्दू लपककर डिब्बे से उसका सामान उतार लाया। बेबी-मुन्नी को बिल्लू-गिल्लू ने कसकर पकड़ लिया। वे भी भैया-भैया कहने लगीं। लाला नत्थीमल बहू-बच्चों को देखकर खिल गये। छिद्दू से बोले, "सामान भारी हो तो कुली कर लो।"

छिद्दू ने बक्सा ख़ुद पकड़ा, डोलची बिल्लू को पकड़ाई और थैला कन्धे पर टाँगने की कोशिश करने लगा।

इन्दु पलटकर देखने लगी कि उसका रक्षक-भक्षक कहाँ पर है। मोदीजी का कहीं नामनिशान भी नहीं था। गाड़ी रुकते ही वे उलटी दिशा में चल पड़े थे।

लाला नत्थीमल ने ख़ुशी में एक कुली रोका और सारा सामान उसके सिर पर लदवा दिया। छिद्दू ने बेबी को गोदी उठा लिया। मुन्नी माँ के पास जाने को मचल रही थी। उसे दादाजी ने घपची में भरकर उठा लिया, "इधर आ मेरा

लटूरबाबा, मैं तोय गोदी लूँ।"

बिल्लू ने कहा, "मामी हमारे लिए का लाई हो?"

इन्दु बड़ी असमंजस में पड़ी। उसे ख़बर ही नहीं थी कि लीला बीबी जी यहीं पर हैं।

इन्दु ने उसका हाथ थामकर कहा, "तूने तो बताया ही नहीं, क्या लाती। मैं तो तेरे लिए खूब-सी दालमोठ, पेठा और मठरी लायी हूँ।"

बिल्लू मामी का हाथ डुलाता हुआ बोला, "जे तो मोय बहुत भाये है।" सबके पहुँचने पर सारा परिवार बैठक में आ गया। विद्यावती की आँखें चमक उठीं, "आ गयी इन्दु, सँभारौ अपनी गिरस्ती। इत्ते दिना को चली गयी। जे नईं सोची कि जीजी का का होगा।"

इन्दु ने उनके पाँव पड़ते हुए कहा, "मुझे तो जीजी, आपका ध्यान रोज आता रहा।"

इन्दु ने डोलची खोलकर सब पकवान निकालकर रख दिये।

फैनी, घेवर, पेठा, दालमोठ, मठरी के साथ-साथ शक्करपारे, पुए और बेसन के सेव भी थे।

अब उसने बक्सा खोलकर सास-ससुर और भगवती के कपड़े निकाले।

लीला ने कहा, "मेरे लिए कछू नायँ आयौ।"

इन्दु बोली, "बीबीजी उन्हें खबर होती आप यहाँ पर हैं तो जरूर भेजते।"

"हम कहीं रहैं, हैं तो हम याई घर के।"

"बीबीजी, आप मेरी धोती ले लो।" इन्दु ने अपनी साड़ी निकालकर लीला को दी।

"देखा कैसी सुलच्छनी है मेरी बहू, अपनी तीयल नन्द को थमा रही है।"

लीला ने साड़ी वापस करते हुए कहा, "रख ले इन्दु, मैं तो हँसी कर रही थी। मैं अब पहर-ओढक़र कहाँ जाऊँगी?"

लीला के चेहरे पर दुख की छाया आकर चली गयी।

इन्दु ने कहा, "बीबीजी ऐसे क्यों सोचती हैं, अभी आपकी उमर ही क्या है! कल को ननदेऊजी आ जाएँगे, सब ठीक हो जाएगा।"

थोड़ी देर सब पर चुप्पी छा गयी।

तभी बेबी और गिल्लू एक-दूसरे के पीछे दौड़ते आये। बेबी के हाथ में सेलखड़ी का छोटा-सा ताजमहल था। गिल्लू ताजमहल हाथ में लेकर देखना चाहता था। 'मेरा है, मेरा है' कहकर बेबी उसे छीन रही थी। पता चला श्याम भैया ने बेबी को यह खिलौना दिया था।

बिल्लू बोला, "मुझे दिखाओ का है।"

बेबी ने हाथ पीछे हटाया। गिल्लू ने पीछे हाथ बढ़ाया। बेबी के हाथ से ताजमहल छूट गया। ज़मीन पर गिरकर सेलखड़ी का ताजमहल चकनाचूर हो गया।

लाला नत्थीमल को गुस्सा आ गया। उन्होंने लपककर गिल्लू का कान पकड़ लिया, "तोड़ डारा न खिलौना, चैन पड़ गया तोय।"

लीला का मुँह बन गया, "बासे नईं न टूटो, बेबी ने गिरायौ।"

"तू चुप रह लीली। बालक इसी तरह बिगड़ते हैं। बड़ी देर से ये पीछे पिलच रहा था।"

"बिना बाप का बालक है, जो मर्जी कर लो। याकी जान निकार लो।" लीला बोली।

विद्यावती ने पति को झिडक़ा, "बच्चों की बात में ना बोला करो।"

"क्यों न बोलें, छोरी अभी आयी अभी बाको खिलौना टूट गयौ।"

लीला को यकायक चंडी चढ़ गयी। उसने गिल्लू को बाँह से पकड़ा और अपने कमरे की तरफ़ धमाधम मारते हुए कहती गयी, "मरते भी नहीं ससुरे, मेरी जान को छोड़ गये हैं मुसीबतें। कौन कुआँ में कूद जाऊँ मैं!"

बिल्लू दीपक को लेकर कमरे में चला गया। घर में सन्नाटा खिंच गया।

इन्दु का जी अकुला गया। कितने चाव में वह घर लौटी थी।

ऐसा नहीं कि घर भर को लीला की व्यथा का अन्दाज़ा नहीं था। महीनों से मन्नालाल का कोई अता-पता नहीं था। अपनी तीन बच्चों से भरी गृहस्थी को वे कच्ची डोर से लटकता छोड़ जाने कहाँ धूनी रमा रहे थे। गुस्सा होता तो उतरता भी। यह तो सीधे-सीधे वैराग्य दिखाई दे रहा था, परिवार-विमुखता जिसमें दायित्वबोध का नकार था। उनके न होने से चक्की का काम भी ठप्प पड़ा था। जियालाल मनमर्जी करने लगा था। सुबह के घंटों में जब बिल्लू-गिल्लू स्कूल में होते, चक्की पर कोई काम ही न होता। लीला पूछताछ करती तो कहता, "सुबह-सुबह कनक के कनस्तर लेकर कौन निकरता है। चक्की का काम दुपहर-शाम की चीज है।"

सरो के पेड़ जैसी अपनी लम्बी, सुन्दर बेटी लीला को देखकर विद्यावती के कलेजे से आह निकल जाती। वह सोचती लीला का कितना गलत विवाह हुआ है। बनिया जाति अपने बेमेल विवाहों के लिए ख़ासी मशहूर थी। यह बेमेल केवल आयु का नहीं गुणों का भी था। स्वजातीय विवाह करने के फेर में माँ-बाप अपनी भोली लडक़ी का रिश्ता किसी काइयाँ लडक़े से कर देते तो कोमल हृदया का कठोर वर से। कहीं लडक़ी दरियादिल होती तो लडक़ा कंजूस मक्खीचूस। कई बार ऐसा सम्बन्ध हो जाता कि लडक़ी अनपढ़ और लडक़ा उच्च शिक्षित। ऐसे दम्पति मन मारकर लोकलाज निभाने की खातिर एक छत के नीचे रहते पर उनके दाम्पत्य में दरार-ही-दरार होती। माता-पिता लड़कियों से सलाह लेना, उनकी मर्जी पूछना और मन टटोलना एकदम ग़ैरज़रूरी समझते। वे अपनी सुविधानुसार सम्बन्ध तय करते भले उसके बाद ब्याही हुई बेटी की उन्हें सारी जिन्दगी जिम्मेदारी उठानी पड़ती।

बहू-बेटियों के बारे में सोच-सोचकर विद्यावती का मन आँधी का पात बन जाता। कवि इतने महीनों से बाहर था। इन्दु कब तक सास-ससुर और बाल-बच्चों में मन लगाएगी, कहना मुश्किल था। उम्र का तकाज़ा था कि दोनों इकट्ठे रहते। कवि कॉलेज में पढ़ाता है। कहीं किसी से मन न मिला बैठे। तुकबन्दी करनेवाले आधे बावले होते हैं। कुन्ती ज़रूर अपने गिरस्त में रमी हुई लगती। कभी-कभार वह पोस्टकार्ड पर अपना समाचार भेज देती कि वह राज़ी-ख़ुशी है और भगवान से उनकी राज़ी-ख़ुशी मनाती है। भगवती पर पढने का शौक ऐसा चर्राया था कि कोई काम कहो, वह मुँह के आगे पोथी पसारकर बैठ जाती।

लीला के दस गुणों के बीच एक भारी दोष उसकी बेलगाम ज़ुबान थी। गुस्सा आ जाने पर वह न छोटा-बड़ा देखती न रिश्ता-नाता। बस, मुँह से लाल मिर्च उगलने लगती। उसकी इसी आदत के मारे उसकी ससुराल के लोगों ने उससे किनारा कर रखा था। कई पड़ोसिनें कहतीं, लाला नत्थीमल का स्वभाव इस लीला में ही उतर आया है, राजी रहे तो मक्खन मुलायम, नाराजी हो तो दुर्वासा दुबक जाएँ। बच्चों को कभी-कभी बेहद मार पड़ जाती पर वे भी न जाने कौन-सी मिट्टी के गढ़े थे कि चुपचाप पिट लेते, गालों पर आँसुओं के छापे लेकर सो जाते लेकिन जागने पर अपनी मैया की गोद में ही दुबकते।

इस वक्त भी बच्चे पिटने के बाद भूखे सो गये थे। दीपक को मार नहीं पड़ी पर वह सहमकर सो गया। लीला ने लालटेन की बत्ती बढ़ा दी और बच्चों के पास दुहरी होकर पड़ गयी। गुस्सा शान्त हो गया था लेकिन मन अशान्त था। अँधेरे मे उसे अपना पिछला-अगला समय जैसे साफ़-साफ़ दिखाई दे रहा था। उसे पछतावा हो रहा था कि माँ-बाप और भाभी के सामने उसने इतनी तीती बानी बोली। यही एक घर था जहाँ वह कभी भी बच्चों को लेकर आ जाती। इस वक्त उसका मन हो रहा था बच्चों को छूकर वह क़सम ले-ले कि कभी बिना सोचे-समझे मुँह नहीं खोलेगी। लेकिन उन बातों का क्या हो जो पहले ही उसकी ज़ुबान से निकल चुकी हैं। उसे बड़े तीखेपन से याद आया एक बार पहले भी पति से उसकी कहा-सुनी हुई थी। हुआ यह था कि लीला ने मन्नालाल और बच्चों के स्वेटर लक्स साबुन के चिप्स से धोकर सूखने के लिए आँगन की बड़ी चटाई पर फैलाये। सामने के घर का कुत्ता मोती पता नहीं कब स्वेटरों के ऊपर अपने गन्दे पैरों से गुज़र गया। जब लीला सूखते कपड़ों का मुआयना करने निकली उसने कुत्ते के पंजों के निशान देखे। वह समझ गयी यह काम मोती के सिवा और किसी का नहीं है। वह सोटी लेकर गली में निकली। मोती अपने घर के आसपास मँडरा रहा था। उसने इतनी कसकर सोटी मारी कि कुत्ता वहीं ढेर हो गया। गुस्से से फनफनाती लीला ने अपने घर आकर किवाड़ भड़ से बन्द कर लिये।

थोड़ी देर में गली में शोर मच गया-मोती को किसी जालिम ने मार डाला। बताओ सीधा-साधा जीव। जिसने मारा वह नरक जाएगा। और क्या!

मन्नालाल अन्दर बैठे सब सुन-देख रहे थे। उन्होंने लीला से कहा, "जीव-हत्या करके आयी हो। सिर से नहाओ तब कुछ छूना।"

"हम क्या जानबूझकर मारे हैं। उसने सारे स्वेटर बरबाद कर दिये वाई मारे हमें गुस्सा आ गयौ।"

"तुझे तो मेरे पे भी गुस्सा आतौ है। किसी दिन मोय भी मार डालेगी।"

"तुम्हारी जुबान भी क्या चीज है! तुम और मोती एक हो का?"

"दोनों जीव हैं। जो कोई ने तुझे देखा होगा तो अभाल पुलिस तुझे आय के पकड़ लेगी।"

"तुम तो हमेशा मेरा बुरा ही चाहो, मोय फाँसी चढ़ा दो, जाओ ढिंढोरा पीट दो।" कहते हुए लीला ने अपना सिर कूट डाला।

मन्नालाल बौखला गये, "हैं हैं लीली का कर रही हो, मैं तो यों ही कह रहा था।"

पर लीला को होश कहाँ था। वह तो अपने आपको कूटे गयी जब तक घबराकर मन्नालाल घर से बाहर नहीं निकल गये।

मोती की मौत की बात तो किसी तरह दब गयी। थाना-कचहरी की नौबत नहीं आयी। पर मन्नालाल के निकल जाने की बात सुबह तक आग पकड़ गयी।

किसी ने कहा-उसने मन्नालाल को गली में भागते हुए देखा।

किसी ने कहा-जब मन्नालाल घर से निकले उनके पूरे बदन पर राख पुती हुई थी।

जितने मुँह उतनी बातें।

सबसे ज्यातदा परेशानी बच्चों को हुई। वे जब बाहर निकलते लोग उनसे च्-च् हमदर्दी जताते, "क्यों बेटा, तुम्हारे बाबू का कोई समाचार मिला। कब आय रहे हैं।"

बच्चों के चुप रहने पर लोग कहते, "ये बच्चे अनाथ हो गये। बेचारे बाप का दिल टूट गया, अब क्या लौटेगा।"

तब तो मन्नालाल तीसरे दिन पूर्णानन्द गिरिजी महाराज की पार्टी के संग नाचते-गाते, मजीरा बजाते लौट आये थे।

लौटते ही उन्होंने लीला से इक्कीस लोगों की रासमंडली का खाना बनवाया, पूड़ी, कचौड़ी, आलू की तरकारी, मुरायता और काशीफल का साग। रात तक लीला को इतनी साँस नहीं मिली कि पति से पूछ सके 'तुम कहाँ चले गये थे? ऐसे भी कोई घरबार छोडक़र जाता है?'

अगले दिन मंडली को विदा देकर मन्नालाल ने अकेले पड़ते ही अपनी तर्जनी दिखाकर लीला को बरजा, "ख़बरदार जो कचर-कचर जबान चलायी। इस बार तो मैं बच्चन का खयाल करके आ गया, अबकी गया तो कभी इधर पलटूँगा भी नहीं।"

लीला ख़ून और खलबलाहट का घूँट पीकर रह गयी।

एक और बार की बात है। लीला पेट से थी। अहोई अष्टमी का त्योहार आया। लीला ने कच्ची रसोई तो खुद राँध ली, मिठाई बाज़ार से मँगायी। जब वह आँगन की दीवार पर अहोई माता की तस्वीर बनाकर परिवार के सदस्यों के नाम लिख रही थी, मन्नालाल बोले, "ये देवी-देवता प्रेत बने बैठे हैं। इनके नाम पर बायना निकालती हो, कंजकें

जिमाती हो, का फायदा। जाने कितने साधु-सन्त भूखे, निराहार घूमते हैं। अरे देना है तो उन्हें दो। तुम्हें पुन्न भी लगे।"

ये बातें लीला कुछ-कुछ पहचानती थी पर मन्नालाल से सुनने में उसे अपनी आलोचना लगी।

उसने तुनककर कहा, "सभी मनाते हैं, बाल-बच्चोंवाले घरों में तो अहोई जरूर पूजी जाय है।"

मन्नालाल बोले, "ये देवियाँ मरे हुए को जिलाती हैं, ऐसी कभी होय नहीं सकतौ। बच्चों को ठीक से पालो तो वो मरें ही क्यों?"

लीला ने कहा, "दिन-त्यौहार क्या बहस लेकर बैठ गये, हटो पूजा करके मुँह जूठा करूँ। आज सवेरे से बरती हूँ।"

मन्नालाल हँसने लगे। बिल्लू से बोले, "तेरी माँ को तर माल खाबे की बान पड़ गयी है, तभी न रोज ब्रत करै है।"

लीला को गुस्सा आ गया। यह आदमी जितनी बार मुँह खोले, कुबोल ही बोले है। अच्छी बात इसे आवै ही नायँ।

"क्या भकोस लिया मैंने जो सुना रहे हो, अब कभी कहना मोसे, कछू न बना के दूँ।" कहते हुए लीला ने भर कढ़ाही खीर मोरी पे पटक दी।

"अरे भागमान ये का कर रई है, बच्चों को तो खाने दे।" मन्नालाल जब तक रोकें, लीला ने कढ़ाही में एक लोटा पानी डाल दिया। मन्नालाल दुखी हो गये, "तेरे लच्छन ऐसे हैं कि तू बड़ा दुख पाएगी, जरा-सी भी समवाई नहीं है तोमें।"

त्यौहार का दिन उपवास का दिन बन गया। पति-पत्नी में अनबोला हो गया। कई दिनों तक बच्चों के ज़रिए वार्तालाप चला फिर यकायक एक दिन मन्नालाल चक्की से ही कहीं चले गये। बिल्लू-गिल्लू से कहा, "रोना मत, मैं ढेर दिना में आऊँगा।"

उस वक्त वे दो महीनों में लौटे थे। कोई कुछ पूछे कहाँ रमे रहे तो बस इतना कहें, 'गुपालजी के चरणों में लोटता रहा।'

लीला ने कई दिन गुमान रखा। बोली नहीं। उसकी मुखमुद्रा से ज़ाहिर था कि जहाँ रहे थे वहीं रहो, हमारे ढिंग क्यों आये हो।

एक दिन घर में रात के वक्त काला नाग निकल आया, विषकोबरा। इसके माथे पर तिलक और मुँह लम्बोतरा- बिल्कुल विषकोबरा की पहचान। आकर सर्र-सर्र बच्चों के तख़त के नीचे सर्राया। लीला की घिग्घी बँध गयी। जाकर पति के सीने से चिपट गयी, "मेरे बच्चन को बचा लो, तुम्हारे पाँव धो-धोकर पिऊँगी।"

मन्नालाल थे पराक्रमी। उन्होंने तीनों बच्चों को एक-एक कर उठाया और अपने कमरे के पलंग पर डाल दिया। फिर उन्होंने बीच का दरवाज़ा बन्द कर उसकी चौखट पर चादर और तौलिये की बाड़ लगा दी।

काँपती हुई लीला से बोले, "तू सो जा बच्चों के पास मैं मन्दिर में गुपालजी के चरणों में पड़ौ रहूँगौ।"

लीला ने उनके पाँव पकड़ लिये, "तुम्हें मेरी सौंह जो कहीं गये। हम सब इसी पलंग पर सो जाएँगे।"

सुबह उठकर नागदेवता की बड़ी ढुँढ़ाई की गयी। सँपेरा भी बुलाया। पर विषकोबरा ऐसे अन्तर्धान हो गया जैसे आया ही नहीं था।

इस बार मन्नालाल को गये दो महीने से ऊपर का वक्त हो चला था, कहीं कोई सूत्र नहीं मिल रहा था कि वे कहाँ गये। पड़ोसियों ने लीला को सुझाया कि उनकी फोटो के साथ गुमशुदगी की सूचना पेपर में छपवा दो, भागे-भागे आएँगे।

"जहाँ वे हैं, वहाँ, पता नहीं अखबार जाते हैं या नहीं।"

बच्चों को स्कूल भेजकर लीला खिडक़ी पर खड़ी हो जाती। उसे लगता गली में आनेवाला अगला चेहरा उसके पति का होगा, या अगला या अगला।

अपने घर में समय बड़ी मुश्किल से सरक रहा था इसलिए लीला मायके आ गयी थी।

29

लाला नत्थीमल का कुनबा जब से इस नये मकान में आया था, उसका दिनमान कुछ बदल गया था। अब घर के लोग बार-बार बैठक की दीवाल-घड़ी देखने नहीं दौड़ते। यह मकान नानकनगर में स्टेशन के करीब बना था। यहाँ गाडिय़ों के आने-जाने से समय की सूचना मिलती रहती। विद्यावती गर्मी भर छत पर छिडक़ाव कर सबके बिस्तर लगवाती। वहीं एक तरफ़ खाना बना हुआ रखा रहता। शाम सात बजे की डाकगाड़ी धड़धड़ निकल जाती तब वे सब ब्यालू कर लेते। रात ठीक नौ बजे फ्रंटियरमेल का काला इंजन अपनी भट्टा जैसी आँख लपलपाते और चिंघाड़ते हुए गुज़रता। तब विद्यावती कहती, "कवि लगता है आज भी नायँ आयौ, चलो छोरियो सो जाओ।"

बेबी-मुन्नी सबको अपने पास समेटकर वे लेट जातीं।

बेबी कहती, "दादी चतुर कौवे की कहानी सुनाओ।"

दादी कहती, "मोय तो नींद आ रही है।"

मुन्नी दादी की टाँग पर अपनी नन्ही टाँग चढ़ाकर कहती, "नईं दादी कहानी।"

विद्यावती निहाल हो जाती। कहती, "हुँकारा भरती रहना नहीं तो मैं सुनाऊँगी नहीं।"

लाला नत्थीमल छत पर सोना पसन्द नहीं करते। उनका ख़याल था कि छत पर सुबह मक्खियाँ परेशान करती हैं। फिर जो हवा छत पर मिले वही आँगन में मिल जाती है। वे खाना खाकर नीचे चले जाते। उनकी चिन्ता यह भी रहती कि घर का कुल सामान नीचे खुला पड़ा है, ऐसे में छत पर चढक़र सोना मूर्खता के सिवा कुछ नहीं है।

लेकिन आँगन में लेटे हुए भी, जब तक उन्हें नींद न आ जाती, वे एक कान से छत की बातचीत सुनते रहते। कभी नीचे से ही बमक पड़ते, "विद्यावती तूने वा बात तो बताई ही नायँ।"

इसलिए विद्यावती अपनी आवाज़ दबाकर कहानी सुनाती। कभी वह बच्चों की फ़रमाइश के अनुसार कहानी बनाकर सुनाती, कभी बच्चे सुनी हुई कहानी फिर से सुनना चाहते, कभी वह नयी-नकोर कहानी सुनाने की कोशिश करती।

बेबी-मुन्नी आधी कहानी सुनते तक नींद में गुम हो जातीं। तब इन्दु मुन्नी को अपनी खाट पर ले आती।

जब लीला आ जाती तब बिल्लू, गिल्लू, दीपक और बेबी मिलकर खेलते। कभी एक-दूसरे की फ्रॉक और कमीज़ पीछे से पकडक़र वे रेलगाड़ी बन जाते, "छक्कम, छकपक्कम, छक्कम, पकछक्कम" कहते हुए वे दौड़ते। उनके सुर में सुर मिलाकर विद्यावती गा उठती, "कटी जिन्दगानी कभी दुक्खम, कभी सुक्खम, कभी दुक्खम कभी सुक्खम।" लीला और इन्दु भी साथ देने लगतीं, "कटी जिन्दगानी कभी दुक्खम कभी सुक्खम।" बच्चों की कतार एक-दूसरे के कपड़ों का सिरा पकड़े छत पर गोल घूमती, "छकपक्कम, पकछक्कम, छकपक्कम, पकछक्कम।" बिल्लू सबसे आगे इंजन बना अपनी हथेली मुँह के आगे रखकर आवाज़ निकालता, "कू s s s।"

इन्दु को याद आता आगरे में जब उन्हें सुशील मुनि के प्रवचनों में ले जाया जाता था तब वहाँ यही सुनने को मिलता था, "कालचक्र के छह कालखंड होते हैं- 1. सुखमा- सुखमा, 2. सुखमा, 3. सुखमा-दुखमा, 4. दुखमा-सुखमा, 5. दुखमा और 6. दुखमा-दुखमा। इन्हीं को पहला, दूसरा, तीसरा, चौथा, पाँचवाँ और छठा काल भी कहा जाता है। इन कालखंडों के प्रवर्तनों से मनुष्य के शरीर की अवगाहना, आयु, बल, वैभव, सुख, शान्ति की क्रमश: गति-अवगति पता चलती है। आकुलताएँ, क्लेश, बैर, विरोध, मान और दु:ख बढ़ते जाते हैं। छठे काल के व्यतीत होने पर महाप्रलय में इस सृष्टि का लगभग नाश हो जाता है। कभी जल तो कभी पवन, कभी अग्नि तो कभी धूल से महानाश का वातावरण हो जाता है। इसके काफ़ी दिन बाद शान्ति और समृद्धि स्थापित होती है। नव-सृजन का प्रारम्भ छठे आनेवाले काल का उद्घोष है। फिर धीरे-धीरे उत्कर्ष-काल आता है। प्रथम से छठे तक अवनति वाले समय को अवसर्पिणी काल कहते हैं। छठे से पहले तक के उत्कर्षगामी काल को उत्सर्पिणी काल कहा जाता है।

कभी भग्गो अपनी पढ़ाई जल्दी समाप्त कर छत पर आ जाती। वह आग्रह करती, "जीजी वह वाली कहानी सुनाओ, सौंताल वाली।"

"कौन-सी?" विद्यावती याद करतीं।

"अरे वोही रानी फूलमती की।"

"अच्छा वो, बड़े दिना हो गये, जने भूल गयी कि याद है।"

लीला कहती, "जीजी शुरू तो करो, याद आती जाएगी।"

विद्यावती सुनाने लगतीं-

"एक थी फूलमती। बाकी ये बड़ी-बड़ी आँखें, कोई कहे मिरगनैनी, कोई कहै डाबरनैनी। एक बाकी ननद लब्बावती। जेई सौंताल से लगी हवेली राजा सूरसेन की। जब हवेली बन रही ही, राजाजी के सन्तरी-मन्तरी ने भतेरा समझायौ 'या बावड़ी ठीक नईं, नेक परे नींव धरो' पर राजाजी अड़े सो अड़े रहे 'मैं तो यईं बनवाऊँगौ महल। एम्मे का बुरौ है।'

'राजाजी पीपल के पेड़ पर भूत-पिसाच और परेत तीनों का बसेरौ है। जैसे भी भीत उठवाओगे, पीपल की छैयाँ जरूर छू जाएगी, जनै उगती, जनै डूबती।' सन्तरी बोले।

बस इत्ती-सी बात।

ये लो। राजाजी ने पीपल समूल उखड़वा दियौ।

राजा सूरसेन का अपनी रानी से बड़ा परेम हौ। रानी फूलमती बोली, 'राजाजी ऐसौ बाग बनाओ कि मैं पूरब करवट लूँ तो मौलसिरी महके, पच्छिम घूम जाऊँ तो बेला चमेली।' राजा ने ऐसा ही कर्यौ। हैरानी देखो पेड़ों की जड़ सौंताल की मिट्टी में और फूल खिलें राजाजी के चौबारे।

राजा-रानी मगन मन अपने बाग में घूमें। सौंताल के किनारे शाम को ऐसे कुमकुमे जलें जिनकी परछाईं पानी में काँपती नजर आय। महल ऐसा कि उसमें सात दरवाजे और उनचास पवन के आने के लिए उनचास खिड़कियाँ।

राजकुमारी लब्बावती का विवाह हाथरस के कुँअर वृषभानलला के पोते से हो गया। अभी गौना नहीं हुआ था। नन्द-भाभी घर में जोड़े से बोलें, जोड़े से डोलें, सास बलैयाँ लेती, 'मेरी बहू-बेटी दोनों सुमतिया।'

पर तुम जानो जहाँ सौ सुख हों, वहाँ एक दुख आके कोने में दुबककर बैठ जाय तो सारे सुख नास हो जायँ। सोई हुआ राजा की हवेली में।"

"कैसे?" भग्गो ने पूछा।

"अरे बियाह को एक साल बीता, दो साल बीते, साल पे साल बीते, फूलमती की कोख हरी न भई।"

"सास लाख झाड़-फूँक करावै, राजाजी ओझा-बैद बुलावें, नन्द किशन कन्हाई की बाललीला सुनावै पर कोई उपाय नायँ फलै।'

एक दिन लब्बावती को सुपनौ आयौ कि तेरे भैया ने पीपर समूल उपारौ, येई मारे महल अटारी निचाट परै हैं। एकास्सी के दिन सौंताल के किनारे फिर से तेरी भाभी पीपर लगायँ, रोज ताल में नहायँ, पीपर पूजै तब अनजल लें तब जाके जे कलंक मिटै। फिर तू नौ महीनन में जौले-जौले दो भतीजे खिलइयौ।'

लब्बावती ने सुबह सबको सपना बखानौ। अगले ही दिन एकास्सी ही। सो सात सुहागनें पूजा की थाली सजाए, सोलहों सिंगार किये, सोने का कूजा फूलमती के सिर पर धरा कर पीपल रोपने चलीं। महल की मालिन का इकलौता बेटा कन्हाई सबके आगे-आगे रास्ता सुझाये। बाके हाथ में फड़वा खुरपी।

राजा महलन में से देखते रहे। रानी फूलमती ने लोट-लोटकर पूजा की। आपै आप बावड़ी में उतर सोने का कूजा भर्यौ और पीपर-मूर पे जल चढ़ायौ। फिर सातों सुहागनों ने असीसें उचारीं। सब-की-सब राजी-खुशी घर लौटीं।

रोज सबेरे पंछी-पखेरू के जगते-मुसकते फूलमती, लब्बावती, दोनों जाग जातीं और सौंताल नहाने, पीपर पूजने निकल पड़तीं। कभी राजाजी जाग जाते, कभी करवट बदलकर सो जाते।

फूलमती भायली ननद से कहती, 'तेरे भइया तो पलिका से लगते ही सोय जायँ। इनकी ऐसी नींद तो न कभी देखी न सुनीं।'

लब्बावती कहती, 'मेरे भइया की नींद को नजर न लगा भाभी! जे भी तो सोचो जित्ती देर जागेंगे तुम्हें भी जगाएँगे कि नायँ।'

फूलमती उलटी साँस भरती, 'हम तो सारी रात जगें, भला हमें जगाये बारो कौन?'

लब्बावती को काटो तो खून नहीं। बोली, 'क्या बात है?'

फूलमती बोली, 'अभी तुम गौनियाई नायँ, तुम्हें का बतायँ का सुनायँ। तोरे भैया तो जाने कौन-सी पाटी पढ़े हैं कि मन लेहु पे देहु छटाँक नहीं।' फिर फूलमती ने बात पलटी, 'तुम्हारी ससुराल से सन्देसो आयौ है अबकी पूरनमासी को लिवाने आएँगे।'

लब्बावती ने भाभी को गटई से झूलकर लाड़ लड़ाया, 'कह दो बिन से, पहले हम अपने भतीजे की काजल लगाई का नेग तो ले लें तब गौने जायँ।'

माँ ने सुना तो बरज दिया, 'समधी जमाई राजी रहें। इस बार गौना कर दें, फिर तू सौ बार अइयौ, सौ बार जइयो, घर दुआर तेरौ।' बड़े सरंजाम से लब्बावती की बिदाई भई। गौने में माँ और भैया ने इत्तौ दियौ कि समधी की दस गाड़ी और राजाजी की दस गाड़ी ठसाठस भर गयीं। डोली में बैठते लब्बावती ने भाभी को घपची में भर लीनो- 'भाभी मेरी, मेरे भैया की पत रखना। पीपल पूजा, बावड़ी नहान का नेम निभाना। मोय जल्दी बुलौआ भेजना।'

फूलमती ननद के जाने से उदास भई। राजाजी ने कठपुतली का तमाशा करायौ, नन्दगाँव का मेला दिखायौ पर रानी का जी भारी सो भारी।

सुबह-सबेरे अभी भी वह रोज सौंताल नहाये, पीपल पूजे तब जाकर अनजल छुए। अब इस काम में संगी-साथी कोई न रह्यै। एक दिना रानी भोर होते उठी। एक हाथ पे धोती-जम्पर धर्यो, दूसरे पे पूजा की थाली और चल दी नहाने।

उस दिन गर्मी कछू ज्यानदा रही कि फूलमती की अगिन। गले-गले पानी में फूलमती खूब नहाई। अबेरी होते देख फूलमती पानी से निकरी। अभी वह कपड़े बदल ही रही थी कि बाकी नजर झरबेरी पे परी। गर्मी में झरबेरी लाल-लाल बेरों से बौरानी रही।

हाँ तो फिर क्या था। फूलमती ने आगा सोचा न पीछा, बस बेर तोडऩे ठाड़ी हौं गयी। उचक-उचककर बेर तोड़े और पल्ले में डारै। वहीं थोड़ी दूर पर मालिन का लडक़ा पूजा के लिए फूल तोड़ रहौ थौ। तभी रानी की उँगरी मा बेरी का काँटा चुभ गयौ। फूलमती तो फूलमती ही, बाने काँटा कब देखौ। उँगरी में ऐसी पीर भई कि आहें भरती वह दोहरी हो गयी। मालिन के छोरे कन्हाई ने रानीजी की आह सुनी तो दौड़ा आयौ।

काँटा झाड़ी से टूटकर उँगरी की पोर में धँस गयौ। मालिन का छोरा काँटे से काँटा निकारना जानतौ रहौ। सो बाने झरबेरी से एक और काँटा तोड़ रानी की उँगरी कुरेद काँटा काढ़ दियौ। काँटे के कढ़ते ही लौहू की एक बूँद पोर पे

छलछलाई। कन्हाई ने झट से झुककर रानी की उँगरी अपने मुँह में दाब ली और चूस-चूसकर उनकी सारी पीर पी गयौ। छोरे की जीभ का भभकारा ऐसौ कि रानी पसीने-पसीने हो गयी।

उधर राजा सूरसेन की आँख वा दिना जल्दी खुल गयी। सेज पे हाथ बढ़ाया तो सेज खाली। थोड़ी देर राजाजी अलसाते, अँगड़ाई लेते लेटे रहे। उन्हें लगा आज रानी को नहाने-पूजने में बड़ी अबेर हौं रही है। राजाजी ने वातायन खोला। सौंताल में न रानी न बाकी छाया। पीपल पे पूजा-अर्चन का कोई निशान नहीं। रानी गयीं तो कहाँ गयीं। सूरसेन अल्ली पार देखें, पल्ली पार देखें। तभी उन्हें सौंताल के पल्ली पार झरबेरी के नीचे रानी फूलमती और मालिन का छोरा कन्हाई दिखे- फूलमती की उँगरी कन्हाई के मुँह में परी ही और रानी फूलों की डाली-सी लचकती वाके ऊपर झुकी खड़ी।

राजा सूरसेन को काटो तो खून नहीं। थोड़ी देर में सुध-बुध लौटी तो मार गुस्से के अपनी तलवार उठायी। पर जे का! तलवार मियान में परे-परे इत्ती जंग खा गयी कि बामें ते निकरेई नायँ। राजा ने भतेरा जोर लगायौ, तलवार ज्यों की त्यों। उधर डाबरनैनी फूलमती की उँगरी की पोर मालिन के छोरे के मुँह में परी सो परी।

राजा, परजा की तरह अपनी रानी को घसीटकर महलन में लावै तो कैसे लावै, बस खड़ा-खड़ा किल्लावै। उसने अपने सारे ताबेदारों को फरमान सुनायौ कि महल के सारे दुआर मूँद लो, रानी घुसने न पाय। कोई उदूली करै तो सिर कटाय।

रानी फूलमती नित्त की भाँत खम्म-खम्म जीना चढ़ के रनिवास तक आयी। जे का। बारह हाथ ऊँचा किवार अन्दर से बन्द। अर्गला चढ़ी भई। रानी दूसरे किवार पे गयी। वह भी बन्द। इस तरह डाबरनैनी ने एक-एक कर सातों किवार खडक़ाये पर वहाँ कोई हो तो बोले।

सूरसेन की माता ने पूछा, 'क्यों लला आज बहू पे रिसाने च्यों हो?'

सुरसेन मुँह फेरकर बोले, 'माँ तुम्हारी बहू कुलच्छनी निकरी। अब या अटा पे मैं रहूँगो या वो।'

माँ ने माली से पूछा, मालिन से पूछा, महाराज से पूछा, महाराजिन से पूछा, चौकीदार से पूछा, चोबदार से पूछा। सबका बस एकैई जवाब राजाजी का हुकुम मिला है जो दरवाजा खोले सो सिर कटाय।

सात दिना रानी फूलमती अपना सिर सातों दरवाजों पे पटकती रही। माथा फूटकर खून-खच्चर हो गयौ। सूरसेन नायँ पसीजौ...'

लीला कहती, "आगे की कहानी मैं सुनाऊँ जीजी!"

विद्यावती कहती, "सीधे-सीधे सुनाना, घुमाना-फिराना ना।"

"तो सुनो," लीला कहती। बच्चे उसके पास खिसक आते।

फिर यह हुआ कि जैसे ही फूलमती को घर-दुआर पे दुतकार पड़ी, वह खम्म-खम्म जीना उतर गयी। सौंताल पर कन्हाई उसकी राह देख रहा था। उसने रानी का हाथ पकड़ा और अपनी कुटिया में ले गया। सात दिन में रानी अच्छी-बिच्छी हो गयी। मालिन ने दोनों की पिरितिया देखी तो बोली, 'रे कन्हाई, राधा भी किशन से बड़ी ही, जे

तेरी राधारानी ही दीखै।' डाबरनैनी वहीं रहने लगी। रोज़ सुबह मालिन और कन्हाई फूल तोडक़र लाते, फूलमती उनकी मालाएँ बनाती।

इधर राजा सूरसेन उदास रहने लगे। माँ ने लब्बावती को बुला भेजा। लब्बावती ने भाई से पूछा, 'प्यारे भैया, मेरी राजरानी भाभी में कौन खोट देखा जो उसे वनवास भेज दिया।'

सूरसेन ने कहा, 'तेरी भौजाई हरजाई निकली। वह मालिन के बेटे के साथ खड़ी थी। दोनों हँस रहे थे।'

बहन बोली, 'ये तो अनर्थ हुआ। अरे हँसना तो उसका स्वभाव था। भैया सूरज का उगना, नदिया का बहना और चिडिय़ा का चूँ-चूँ करना कभी किसी ने रोका है?'

राजा सूरसेन को लगा उन्होंने अपनी पत्नी को ज्यादा ही सजा दे दी।

सात दिन राजा ने उधेड़बुन में बिता दिये। आठवें दिन लब्बावती की विदा थी। लब्बावती जाते-जाते बोली, 'भैया, अगली बार मैं हँसते-बोलते घर में आऊँ, भाभी को लेकर आओ।'

कई साल बीत गये। राजा रोज़ सोचते आज जाऊँ, कल जाऊँ। इसी सोच में कई बरस खिसक गये। आखिर एक दिन वे घोड़े पे सवार होकर निकले। साथ में कारिन्दे, मन्तरी और सन्तरी। जंगम जंगल में चलते-चलते राजाजी का गला चटक गया। घोड़ा अलग पियासा। एक जगह पेड़ों की छैयाँ और बावड़ी दिखी। राजा ने वहीं विश्राम की सोची। बावड़ी से ओक में लेके ज्योंही राजा पानी पीने झुके, किसी ने ऐसा तीर चलाया कि राजा के कान के पास से सन्नाता हुआ निकल गया। मन्तरी-सन्तरी चौकन्ने हो गये। तभी सबने देखा, थोड़ी दूर पर एक छोटा-सा लडक़ा, साच्छात कन्हैया बना, पीताम्बर पहने खड़ा है और दनादन तीर चला रहा है। राजा कच्ची डोर में खिंचे उसके पास पहुँचे। छोरा क्या बूझे राजा-वजीर। वह चुपचाप अपने काम में लगा रहा।

राजा ने बेबस मोह से पूछा, 'तुम्हारा गाम क्या है, तुम्हारा नाम क्या है?' नन्हें बनवारी ने आधी नजर राजा के लाव-लश्कर पे डाली और कुटिया की तरफ जाते-जाते पुकारा, 'मैया मोरी जे लोगन से बचइयो री।' लरिका की मैया दौड़ी-दौड़ी आयी। बिना किनारे की रंगीन मोटी धोती, मोटा ढीला जम्पर, नंगे पाँव, पर लगती थी एकदम राजरानी। उसके मुख पर सात रंग झिलमिल-झिलमिल नाचें।

राजा ने ध्यान से देखा। अरे ये तो उसकी डाबरनैनी फूलमती थी।

सूरसेन को अपनी सारी मान-मरयादा बिसर गयी। सबके सामने बोला, 'परानपियारी तुम यहाँ कैसे?'

फूलमती ने एक हाथ लम्बा घूँघट काढ़ा और पीठ फेरकर खड़ी हो गयी।

तब तक बनवारी का बाप कन्हाई आ गया। राजा ने कारिन्दों से कहा, 'पकड़ लो इसे, जाने न पाये।'

कन्हाई बोले, 'जाओ राजाजी तुम क्या प्रीत निभाओगे। महलन में बैठ के राज करो।'

मन्तरी बोले, 'बावला है, राजा की रानी को कौन सुख देगा। क्या खिलाएगा, क्या पिलाएगा?'

कन्हाई ने छाती ठोंककर कहा, 'पिरितिया खवाऊँगौ, पिरितिया पिलाऊँगौ। तुमने तो जाके पिरान निकारै, मैंने जामें वापस जान डारी। तो जे हुई मेरी परानपियारी।'

'और जे चिरौंटा?' मन्तरी ने पूछा।

'जे हमारी डाली का फूल।'

राजा के कलेजे में आग लगी। मालिन के बेटे की यह मजाल कि उसी की रानी को अपनी पत्नी बनाया वह भी डंके की चोट पर। उसने घुड़सवार सिपहिये दौड़ा दिये।

दादी बोली, 'हाँ तो कन्हाई और फूलमती बिसात भर लड़े। नन्हा बनवारी भी तान-तानकर तीर चलायौ। पर तलवारों के आगे तीर और डंडा का चीज। सौंताल के पल्ली पार की धरती लाल चक्क हो गयी। थोड़ी देर में राजा के सिपहिया तलवारों की नोक पे तीन मूड़ उठाये लौट आये।'

इन्दु ने कहा, "जीजी तीनों मर गये?"

दादी ने उसाँस भरी, "हम्बै लाली। तीनोंई ने वीरगति पायी। येईमारे आज तक सौंताल की धरती लाल दीखै। वहाँ पे सेम उगाओ तो हरी नहीं लाल ऊगे। अनार उगाओ तो कन्धारी को मात देवै। और तो और वहाँ के पंछी पखेरू के गेटुए पे भी लाल धारी ज़रूर होवै। ना रानी घर-दुआर छोड़ती ना बाकी ऐसी गत्त होती।"

भग्गो और लीला एक साथ बोलीं, "गलत, एकदम गलत। निर्मोही के साथ उमर काटने से अच्छा था घर छोडऩा। रानी ने बिल्कुल ठीक किया।"

विद्यावती में भी साहस का संचार होता। वह पूछती, "जनै का वजह है, घर-दुआर और संसार से जितनी प्रीत औरतों को होय उतनी आदमी को नहीं होय।"

लीला बोली, "आदमी जनम का निर्मोही होता है तभी न मरे पे शमशान में फूँक-पजार करने आदमी जावे हैं, औरत कब्भौ ना जाय।"

"चलो वह तो शास्त्रों में लिखा कर्तव्य समझो। पर घर में भी बच्चों से जालिमपना मर्द ज्या दा दिखावै है।"

इन्दु की तलखी सामने आ जाती, "औरतें भी कोई कम जालिम नहीं होयँ हैं।"

"जे तूने कैसे कही?" विद्यावती तन जाती।

"जिस लडक़ी के माँ-बाप खतम हो जायँ उसका पीहर भाभियाँ छुड़ायें हैं, भाई नहीं।" इन्दु कहती।

यह ऐसा समय होता जब भग्गो के सिवा सब अपना-अपना निर्मोही याद करतीं। पति के जीवन से बाहर खड़ीं ये तीन उपेक्षिताएँ अपनी सीमाओं पर भी सोच-विचार नहीं करतीं। उन्हें लगता उनके जीवन का समस्त दुख बेमेल जीवन-साथी के कारण है।

तभी किसी बच्चे को शू-शू आ जाती और समस्त महिला-मंडली झटके से वर्तमान में लौटती। वैसे खुले आकाश के नीचे लेटकर साँस लेने मात्र से इतनी ताज़गी फेफड़ों में भर जाती कि अगले बारह घंटों तक काम आती। लीला को छत पर सोना बहुत पसन्द था। वही शाम छः बजे से दौड़-दौडक़र छत पर सामान चढ़ाती, बिल्लू को नहला-धुलाकर पूजा के पाट पर बैठाती और विश्वकर्मा पर ध्यान लगाने लगतीं। इतनी मुश्किलों के बीच उसे यह तसल्ली होती कि उसके तीन बेटे हैं, बेटी कोई नहीं। ये पल-पुस जाएँ तो अपने आप घर सँभाल लेंगे, वह सोचती।

मन्नालाल के बारबार घर से चले जाने का संकेतार्थ उसकी समझ आने लगा था। मन्नालाल घर से नहीं अपने से भागे फिरते थे। जब उन्हें लगता कि घर उनहें अपनी सर्वग्रासी गुंजलक से लील रहा है, वे भाग खड़े होते। अथवा यह एक तिहाजू पति का अपनी नई-नकोर पत्नी से परिताप-पलायन था।

इन्दु की समस्या लीला से बिल्कुल अलग थी। उसके पति के अनुराग, उत्ताप और उत्तेजना में कहीं कोई कमी नहीं थी, फिर भी वह यहाँ ससुराल में उपेक्षिता का जीवन जी रही थी। कभी-कभी उसका जी एकदम विरक्त हो जाता। सास-ससुर आवाज़ लगाते रहते, ननदें टहोके मारतीं, वह एकदम जड़, निस्पन्द, चौके के पटरे पर बैठी चूल्हे की लपट देखती रहती। वह न बोलती, न डोलती। केवल जब मुन्नी घुटनों के बल घिसटती आकर कहती, "मम्मी टुक्की।" वह एकदम से जाग जाती और लपककर बच्ची को गोद में ले लेती।

मुन्नी ने अभी तक पैदल चलना शुरू नहीं किया था। उसकी टाँगों में ताक़त नहीं थी। घर के सब बड़े बच्चे उसे मालगाड़ी कहते और उसके सामने एक-दूसरे की कमीज़ पकडक़र धीमे-धीमे कहते, छुकss छुकss छुकछुक। तब बेबी उसके पास जाकर अपनी नन्हीं बाँहों से छाँह बना लेती और कहती, "मेली मुन्नी को चिढ़ाओ मत, मैं मालूँगी।"

30

नानकनगर वाले मकान की दाहिनी ओर के दो कमरों का हिस्सा, लाला नत्थीमल ने, एक वैद्यजी को किराये पर दे दिया था। वैद्यजी ने एक कमरे में 'पुनर्नवा' साइनबोर्ड से अपनी पुरानी प्रेक्टिस की नयी शुरुआत की। उनके आने से एक आराम यह हो गया कि परिवार में छोटी-मोटी तकलीफों के लिए तुरन्त दवाई वैद्यजी से मिल जाती। विद्यावती की पीठ का फोड़ा जब-तब पनप जाता। वैद्यजी ने नासूर देखकर एक भूरे रंग के पाउडर की ख़ुराक खाने को दी और मलहम की डिब्बी लगाने को। जब विद्यावती नियम से दवा खा और लगा लेतीं उन्हें फोड़े में कुछ आराम आ जाता लेकिन दवा लेने में वे बेहद अनियमित थीं। अगर भगवती याद न रखे तो वे दवा लेना भूल जातीं और फोड़े में फिर चीस उठ जाती। वैद्यजी के बच्चे अभी छोटे थे, उनमें से कोई भी स्कूल नहीं जाता था। उनकी पत्नी विशाखा अच्छे स्वभाव की थी लेकिन वह तीन बच्चों से इतनी अकबकाई रहती कि उसे कभी पड़ोस में बैठने बतियाने की फुर्सत न मिलती। विद्यावती को यह शिकायत रहती कि घर की घर में उन्हें मुँह बाँधकर बैठना पड़ता है, किरायेदारिन कभी बात नहीं करती। लाला नत्थीमल मगन थे कि वैद्यजी ठीक पहली को उनके हाथ में किराये के बीस रुपये रख देते हैं।

सबसे पहले बच्चों ने आपस की दूरियाँ ख़त्म की। वैद्यजी की बिटिया पूजा बेबी की उम्र की थी। उसकी गेंद लुढक़ती हुई आँगन की नाली में पहुँच गयी। बेबी ने नाली से गेंद निकालकर पूजा को दी। दोनों ने एक-दूसरे को नाम बताया। बेबी अपना नाम प्रतिभा बोल नहीं पाती थी। कोई उससे नाम पूछे तो वह कहती पपीता। सुननेवाला

अगर हँस पड़ता तो वह रोने लगती। पूजा का उच्चारण साफ़ था लेकिन वह उसे बेबी कहने लगी। पूजा के दोनों भाई हेमन्त और वसन्त उससे छोटे थे।

मुन्नी दो साल की होकर भी अभी पैदल नहीं चल पाती थी। वह घिसट-घिसटकर बड़ी बहन के पीछे चल पड़ती। जब उसे आँगन में बैठाया जाता वह घुटनों के बल वैद्यजी के घर चली जाती।

एक शाम मुन्नी इसी तरह वैद्यजी के कमरे में पहुँच गयी जहाँ उनके तीनों बच्चे चेचक के प्रकोप से पीड़ित एक ही बिस्तर पर पड़े थे। विशाखा ने बच्ची को कमरे मे आने से रोकने की कोशिश की पर ज़मीन पर लगे बिस्तर पर मुन्नी झट से सरक आयी। वह बच्चों को छूकर जगाने लगी, "भइया उठो, भइया उठो।" विशाखा ने उसे गोद में भरकर इन्दु के पास पहुँचाया।

"दीदी इसे सँभाल लो। हमारे बच्चे बुखार में तप रहे हैं।" उसने कहा।

इन्दु ने पूछा, "कैसा बुखार है?"

"क्या पता मियादी लगे जनै।" विशाखा चेचकवाली बात छुपा गयी।

तीसरे दिन मुन्नी के पेट पर लाल रंग की मरोरियाँ उभर आयीं। देखते-देखते बदन तपने लगा और शाम तक बच्ची निढाल हो गयी।

विद्यावती बोलीं, "इन्दु, लाली को तो शीतला माता आय वाली लगैं।"

इन्दु का जी धक् से रह गया। उसे लगा हो न हो यह वैद्यजी के घर से ही छूत आयी है।

उसने अपना खटका सास को बताया। विद्यावती दनदनाती वैद्यजी के घर में घुस गयी। विशाखा बच्चों के खुरंडों पर चन्दन का तेल रुई के फाहे से लगा रही थी। विद्यावती ने कहा, "च्यों वैदजी, आपको येई घर मिला था बीमारी फैलाने को। बता नहीं सकते थे। हमारी लाली को माता निकर आयी, इसका हरजाना कौन भरैगो।"

वैद्यजी बोले, "हम तो पहले सेई परेशान हैं। तीनों बच्चे बीमार पड़े हैं। आप अपने बच्चन सँभालकर रखें।"

इन्दु के पास भाई की दी हुई दवाओं की पुडिय़ा थीं। उसकी समझ नहीं आया इतने छोटे बच्चे को कितनी खुराक दवा दी जाए।

उन लोगों ने घर में नीम का धुँआ किया, लाल दवाई से बच्ची के हाथ-पैर और पेट पौंछे पर बदन पर दाने फैलते चले गये। बच्ची के मुँह, कान, जीभ, आँख से लेकर पैरों के तलुवों तक में दाने फबद आये। लालाजी भी मुन्नी की बीमारी से घबरा गये। डॉ. टोपा को फीस देकर घर बुलाया गया। उसने कहा, "अब तो रोग ने पकड़ लिया है। बच्चे के आसपास सफाई रखें, बाकी बच्चों को दूर सुलायें। बड़े जोर की चेचक निकली है। इसमें यह बच्ची अन्धी, बहरी, गूँगी कुछ भी हो सकती है। बुखार कम करने की दवा मैं भिजवा देता हूँ, तब तक सिर पर गीली पट्टी रखें।"

अब असली दिक्कत थी बेबी को अलग रखने की। वह बार-बार मुन्नी के पास जाने की जिद करती। तंग आकर यह तय किया गया कि बेबी को लीला बुआ के पास भेज दिया जाए। वह लीला से हिली हुई थी। फिर बिल्लू-गिल्लू

और दीपक के साथ उसका मन भी लग जाएगा।

दादाजी ने एक पोस्टकार्ड कवि को डालकर जता दिया कि बच्ची बीमार है। इन्दु को जैसे कारावास हो गया। उसके कपड़े, बर्तन सब अलग कर दिये गये। लालाजी ने वैद्यजी से हाथ जोड़ दिये, "वैद्यजी आप मकान खाली कर दें, हमारा छोरा बहुत नाराज हो रहा है।"

वैद्यजी ने कहा, "लालाजी अब तो बच्चे ठीक हो रहे हैं।"

"अब बच्चे हैं, हारी-बीमारी लगी ही रहेगी। वैसे भी हमें जगह छोटी पड़ रही है।" लालाजी बोले।

"देखिए दवाखाने की जगह रोज नहीं बदली जाती। आप कहें तो मैं किराया बढ़ा दूँ।"

लालाजी ने जी कड़ा कर कहा, "नहीं वैद्यजी, आप हमें माफ करें, जयरामजी की।"

वैद्यजी के मकान खाली करने पर इन कमरों में नीला थोथा डालकर पुताई करायी गयी, वहाँ हवन हुआ, उसके बाद ही वहाँ घर का सामान रखा गया।

जब कविमोहन घर आया, मुन्नी का बुखार कम हो गया था लेकिन चेचक के दाने फुंसी-फोड़े में बदल गये थे। एक बार को कवि अपनी बच्ची को पहचान ही नहीं पाया। पहले से दुबली मुन्नी अब सूखकर कंकाल मात्र रह गयी थी। उसकी बोलने, सुनने की सामश्र्य जैसे लुप्त हो गयी थी। उसके साथ-साथ इन्दु भी सूखकर काँटा बन गयी थी।

पहले कविमोहन खिन्न हुआ। फिर अवसन्न हुआ। उसके बाद वह यकायक फट पड़ा,"जीजी मैं इन लोगों को कौन के भरोसे छोड़ गया था। आपके भरोसे। इनकी जे का गत बनायी तुमने! मैं आधी तनखा दादाजी को भेजता रहा। जाई मारे कि इन्हें रोटी मिलती रहे। वोहू ना दे पाईं तुम। इससे तो अच्छा होतौ इन्हें फूँक-पजारकर मोय बुलातीं।"

अब पिता सामने आये, "तोय अपनी धी-लुगाई दीखीं, तूने मैया का जीव नायँ देखौ, छोरी के लिए बरत-उपास कर-करके, कै छटाँक की रह गयी है।"

"हमने तौ भैया छोरी-छोरा में कछू फरक नायँ कियौ। पूछ लो बाकी मैया से। माता आय गयी तो हम का करें। हमसे पूछकर तो आयी नायँ।"

विद्यावती को थोड़ा ढाँढ़स बँधा। बोली, "डागदर हम बुलाये, बसौढ़ा हम पूजे, नजर हम उतरवाये, पूछ लो या बहू से, कौन जतन नहीं किये।"

वाकई पिछले चार दिनों से दादी रोज़ सुबह मुन्नी के कान के पास ले जाकर थाली बजातीं और कहतीं, "मुन्नी उठ लाली, देख भगवान भास्कर कह गये हैं जो जागत है सो पावत है, जो सोवत है सो खोवत है।"

असहाय आक्रोश से खलबलाते कविमोहन ने अपना कुरता कन्धे पर से चीरकर तार-तार कर डाला, "तुम्हीं बताओ जीजी, दादाजी, मैं नौकरी करूँ या बच्चे पालूँ?"

कई दिनों बाद रात में नहाकर इन्दु पति के कमरे में आयी। हथेलियों की कैंची बना, सिर के नीचे रखकर कवि छत की कडियाँ ताक रहा था। चिन्तामग्न कवि की इस मुद्रा से पत्नी अच्छी तरह परिचित थी। गिले-शिकवों से गले-गले भरी इन्दु के पास धीरज की जमापूँजी नि:शेष हो चुकी थी। इस वक्त उसे यही लग रहा था पति ने उसे गुलामी के गहरे गड्ढे में धँसाकर अपनी आज़ादी कमाई है। छठे-छमासे आकर डाँट-डपट करने के सिवा और कौन-सी जिम्मेदारी निभाते हैं ये।

क्रोध के अतिरेक के बाद कवि का मन वैरागी होने लगा। यहाँ वह भाग-भागकर क्यों आता है जहाँ एक पल का चैन नहीं है। यह घर उसकी उड़ान को अवरुद्ध करता है। इस विशालकाय मकान से ज्यायदा गुँजाइश उस आधे कमरे में है जो उसने कूचापातीराम में ले रखा है। वहाँ वह जब चाहे अपनी डायरी उठाकर कविता लिख सकता है। जब चाहे बिजली का खटका दबाकर पुस्तक पढ़ सकता है। किताबों से भरी एक आलमारी उसके पास है। यह स्त्री जिसका नाम इन्दु है, अगर उसे नहीं समझेगी, ज़रूर पीछे छूट जाएगी। उसके सामने प्रगति का अनन्त आकाश है। यहाँ घर के लोग उसे पीछे धकेलते हैं, ये उसे कुएँ का मेंढक बनाना चाहते हैं।

इन्दु पति का मनोविज्ञान पहचानकर बोली, "मुन्नी रात में रोती है, मैं उसके पास जाती हूँ।"

बगल में पड़ी चारपाई पर मुन्नी सो रही थी। वहीं इन्दु जाकर लेट गयी।

शरीर को अनिवार्यता रात के एक लमहे में उन्हें पास लायी लेकिन उसके बाद वे अपने-अपने बिस्तर पर कैद हो गये।

सुबह उठते ही कवि को दिल्ली के दस काम याद आ गये। माँ-बाप ने बार-बार कहा कि एक दिन रुक जा, कवि नहीं माना। उसकी दलील थी जो होना था हो गया, मेरे किये अब कुछ न होगा।

स्टेशन जाते समय, उसने ताँगा गली रावलिया की तरफ़ मोड़ लिया। बेबी घर के सामने इक्कड़-दुक्कड़ खेल रही थी। उसे प्यार से घपची में ले कवि ने उसके हाथ पर पाँच का नोट रखा और बिल्लू-गिल्लू व दीपक को प्यार कर चला गया। ताज्जुब कि परिवार से अलग होकर उसे तसल्ली का अहसास हुआ।

>>पीछे>> >>आगे>>

शीर्ष पर जाएँ

डाउनलोड मुद्रण

अ+ अ-

उपन्यास

दुक्खम्-सुक्खम्

ममता कालिया

अनुक्रम

पीछे

आगे

अध्याय 6

ये आज़ादी के बाद के दिनों की दिल्ली थी। इसका प्रधान रंग तिरंगा था। लालकिले पर आज़ाद भारत का परचम शान से लहरा रहा था। लेकिन ठीक उसके नीचे लालकिले की बाहरी दीवार से सटे न जाने कितने शरणार्थी अपने टीन-कनस्तर, गठरी-मोटरी लेकर खुले में बैठे हुए थे। सबके चेहरों पर परेशानी और उलझन थी। स्त्रियों ने अपने सिर दुपट्टों से ढँके हुए थे लेकिन तेज़ हवा चलने पर दुपट्टे फिसल जाते। कभी अगस्त का बादल बरस जाता तो खुले आसमान के नीचे पड़े सामान को समेटने की नाकाम कोशिश में कई जोड़ी बाँहें उघड़ जातीं। दरियागंज, तुर्कमान गेट, लालकिला, जैन मन्दिर और गुरुद्वारा सीसगंज की तरफ़ से ऐलानियाँ ताँगा कई बार मुनादी करता निकलता "भाइयो और बहनो, सरकार की तरफ़ से जगह-जगह कैम्प लगाये गये हैं, आपसे गुज़ारिश है वहाँ जाकर अपना नाम दर्ज करवाएँ और अपनी बारी का इन्तज़ार करें। खुले में रात न बितायें।"

मुनादी सुननेवाले बेघर-बार लोग और सिकुडक़र बैठ जाते। कई कैम्पों की बुरी हालत देखने के बाद ही वे खुले आसमान के तले आकर बैठे थे। कैम्पों में इन्सान जानवरों से भी बदतर हाल में रह रहे थे। इनकी तरफ़ देखने पर आज़ादी की सारी उमंग झूठी लगती।

कविमोहन कॉलेज जाते और आते वक्त ये दृश्य देखकर उदास हो जाता। कॉलेज में उसे संस्थापक दिवस समारोह की कार्यक्रम-समिति में रखा गया। प्रिंसिपल चाहते थे कि वह कुछ फडक़ते हुए देशगान तैयार करवाये। लेकिन कवि का मन आज़ादी की विसंगतियों से डाँवाडोल रहता। वह विद्यार्थियों को 'मेरे नगपति मेरे विशाल' और 'बढ़े चलो, बढ़े चलो' जैसे गाने कंठस्थ नहीं करवा पाया। इनकी बजाय उसने दिनकर की पुस्तक 'हुंकार' से कविता ली-

'श्वानों को मिलता दूध-वस्त्र, भूखे बालक अकुलाते हैं

माँ की हड्डी से चिपक ठिठुर जाड़ों की रात बिताते हैं।

युवती के लज्जा वसन बेच जब ब्याज चुकाए जाते हैं

मालिक जब तेल-फुलेलों पर पानी-सा द्रव्य बहाते हैं

पापी महलों का अहंकार देता तब मुझको आमन्त्रण।'

एक और समूहगान उसने प्रतीक से लिया-

'बोल अरी हो धरती बोल

राजसिंहासन डाँवाडोल।'

छात्र और छात्राओं को इन कविताओं की शब्द योजना और स्वर समझ आ गया और उन्होंने अभ्यास कर इन्हें कंठस्थ कर लिया। कुहू अलग अपनी नृत्यनाटिका का पूर्वाभ्यास करवा रही थी। समारोह से एक दिन पूर्व प्रिंसिपल ने बताया कि वे ड्रेस रिहर्सल देखना चाहते हैं।

विद्यार्थियों का उत्साह चरम पर था। उन्होंने फाइनल समारोह की तरह ही ड्रेस रिहर्सल का आयोजन किया।

बाकी सब आइटम तो ठीक रहे पर समूहगान पर प्रिंसिपल अटक गये। उन्होंने कहा, "जलसे में हमने रक्षामन्त्री को बतौर मुख्य अतिथि बुलवाया है। अगर वे पूछेंगे 'राजसिंहासन डाँवाडोल' से आपका क्या तात्पर्य है तो हम क्या जवाब देंगे'।"

कवि ने कहा, "सर यह स्वाधीनता से पहले की कविता है, तभी के ज़ज्बात इसमें आये हैं।"

"यह बात कविता से कहाँ ज़ाहिर हुई है?" प्रिंसिपल ने एतराज़ किया।

इसी प्रकार दिनकर की कविता पर आक्षेप लगा। प्रिंसिपल को ख़तरा था कि इसे व्यंग्य-आरोप न समझ लिया जाए।

ड्रेस रिहर्सल के दिन ये दोनों समूहगान आयोजन में से निकाल दिये गये। कुहू से कहा गया कि वह अपनी नृत्य नाटिका में उर्वशी का एक और नृत्य जोडक़र आइटम को लम्बा बना दे।

समूहगान के छात्रों में मायूसी छा गयी। दो-तीन छात्र आक्रोश में आ गये। कवि के दोनों आइटम आयोजन से बाहर हो गये। यकायक वह संस्थापक-समारोह में आउटसाइडर बन गया।

अगले दिन उत्सव था। कविमोहन कॉलेज गया ही नहीं। वह अपने कमरे में लेटे-लेटे बॉसवेल की 'लाइफ़ ऑफ़ जॉन्सन' पढ़ता रहा। कवि की अनुपस्थिति को तीखेपन से कुहू ने महसूस किया। उसे लगा वह अकारण ही कारण बन गयी। वैसे भी उसे कवि का रवैया समझ नहीं आता। कभी वह पीछे हटे समुद्र-सा पराजित, परास्त और प्रत्यावर्तित दिखता। कुहू को लगता उनकी मित्रता का आधार अजनबीयत पर टिका है। वह उसके बारे में कुछ भी तो नहीं जानती।

कवि के जीवन में कुहू वहीं तक थी जहाँ इन्दु उसे अकेला छोड़ती। उसके मन में एक बुद्धिजीवी साथी की ललक बनी हुई थी। उसे लगता उसके पहलू में कोई हो जो उसके सपने और सरोकार समझे, जिसे वह अपने मन का साथी बना सके और जिसके लिए उसकी ख़ुशी अहम हो।

कॉलेज में फ्री पीरियड के दौरान उन दोनों में वार्तालाप तो अक्सर होता पर वह संवाद से ज्याकदा विवाद की शक्ल ले लेता। बल्कि अब तो बाकी अध्यापक बाकायदा इन्तज़ार करते कि इनकी बहस छिड़े तो उनका भी वक्त कटे।

सबसे पहला विवाद का विषय तो यही हो जाता आज चाय मँगाई जाए या कॉफी। कुहू को कॉफी पसन्द थी। कवि चाय-प्रेमी था। वह कहता, "कैंटीनवाले को कॉफी बनानी नहीं आती, इंडियन कॉफी हाउस जैसी कॉफी यहाँ कभी नहीं मिल सकती।"

कुहू कहती, "यहाँ की चाय तो और भी रद्दी है, उसमें फ्लेवर है ही नहीं।"

स्टाफ़-रूम में मौजूद मेहरोत्रा कहता, "फिज़ूल झगड़ रहे हो तुम लोग, जिसे चाय पीनी है चाय मँगाये, जिसे कॉफी पीनी है, कॉफी।"

कोहली फुटनोट जड़ता, "कुहेलीजी की रुचियाँ हाइक्लास हैं, कविमोहन की, मिडिल क्लास। जोड़ी नहीं बैठती।"

कुहू मन मारकर चाय पी लेती।

कभी साहित्य के प्रश्नों पर बहस छिड़ जाती जो कई दिन चलती। कुहू की आदत थी वह जिस भी कवि की कविता क्लास को पढ़ाती, उसी का राग अलापना शुरू कर देती। इन दिनों वह शैले पढ़ा रही थी। उसने लायब्रेरी से लेकर शैले की जीवनी 'एरियल' से लगाकर समस्त किताबें पढ़ डालीं। वह शैले की जीवन-शैली, क्रान्तिकारिता और काव्य-प्रतिभा के गुणगान से भरी हुई थी। कवि को शैले बुरा नहीं लगता था लेकिन वह उसका दीवाना भी नहीं था।

"मैं यह मानता हूँ शैले ने अपना जीवन गलत ढंग से जिया। इसकी वजह से उसने तो दुख पाया ही, उससे जुड़े सभी लोगों ने बेवजह दुख उठाया।" कवि ने स्टाफ़-रूम में कुहू से कहा।

"तुम पूर्वाग्रह से ग्रस्त हो। वह इतना संवेदनशील था कि और किसी तरह जीना उसके बस में नहीं था। कच्ची उम्र में अपनी सौतेली बहन के प्रेम में पड़ गया, ज़रा बड़ा हुआ तो हैरियट की ख़ूबसूरती उसे ले डूबी।" बोलते-बोलते कुहू भावुक हो उठी।

"उसने हैरियट को सिर्फ सताया, उसे आत्महत्या के लिए मजबूर किया, वह क्रिमिनल था।" कवि ने कहा।

"तुम उसके प्रति ज़ालिम हो रहे हो। उसकी कविताओं के बरक्स उसका जीवन रखकर देखो। ऐसा कवि ही हताशा के हक़ में लिख सकता है।"

"क्या यह अच्छा है, अपनी पीड़ा में छपक-छपक नहाना? उससे कहीं सशक्त कवि वर्ड्ज़वर्थ और कोलरिज हैं।" कवि ने प्रतिवाद किया।

"तुमने भी किन मीडियॉकर के नाम ले लिये," कुहू ने कहा, "वर्ड्ज़वर्थ में कहीं उत्तेजना का चरमबिन्दु नहीं है, वह ताउम्र सत्तानवे डिग्री पर लिखता रहा।"

"तुम यह उम्मीद क्यों करती हो कि लेखक अपना कुल जीवन दाँव पर लगाकर लिखता रहे? लेखक को इसी जीवन में बहुत से काम करने रहते हैं, लिखना उनमें से एक काम है।"

"नहीं इस तरह कोई जीनियस नहीं लिख सकता।"

तभी घंटी बजने से उनकी बहस स्थगित हो गयी लेकिन शेष दिन के लिए दोनों को विचारमग्न छोड़ गयी।

कवि सोचने लगा कि उसकी नज़र में शैले पलायनवादी, सुखवादी और अव्यावहारिक इन्सान था लेकिन एक लेखक के तौर पर वह स्वयं क्या है? एक तरफ़ वह अपने को जिम्मेदार नागरिक मानता है दूसरी तरफ़ वह अपने घर का बोझ माता-पिता के ऊपर डालकर अविवाहित जीवन जैसी स्वाधीनता कमाने की कोशिश करता है। उसके जीवन में क्या कम विसंगतियाँ हैं। जैसे शैले ने हैरियट को मौत की कगार पर पहुँचाया वह भी अपनी पत्नी को तिल-तिल मार रहा है। महज़ कुछ रुपये घर भेज देने को वह अपने कर्तव्य की पूर्ति समझता है।

उसे यह भी समझ आने लगा था कि कुहू शायद उसे अविवाहित मानकर ही चल रही है। वैसे कॉलेज में अब्दुल, अपूर्व और कई साथियों को पता था कि वह विवाहित है पर उन सबसे कुहू की कोई अनौपचारिक मित्रता नहीं थी। यह कुहू का भोलापन था अथवा कवि का काइयाँपन कि अब तक वह अपने विवाहित होने की जानकारी उसे नहीं दे सका। वह अपने को रोज़ यही भुलावा देता रहा कि बिना किसी सन्दर्भ और प्रसंग के वह कैसे कुहू से कह सकता था, सुनो मैं बाल-बच्चेदार आदमी हूँ, तुम मुझे अपना सम्भावित साथी मत समझो।

कवि ने तय किया कल वह किसी भी तरह कुहू को जता देगा कि उसके परिवार में कौन-कौन है। काश उसके पास इन्दु और बच्चों की कोई तस्वीर होती। तब उसका काम बड़ा आसान हो जाता। वह किताब में से तस्वीर गिरा देता और उठाते हुए कहता, 'देखो कुहू, मेरा प्यारा परिवार। मेरी पत्नी इतनी सुन्दर है कि नरगिस, निम्मी उसके आगे पानी भरें। और ये हैं मेरी बच्चियाँ।' लेकिन तस्वीर के बिना कवि उन्हें तस्वीर से भी कहीं ज्या दा सप्राण, सुन्दर और आत्मीय बना देगा, यह वह जानता था।

32

अगले दिन कॉलेज में कुहू का सामना करने के लिए कवि ने पिछली रात आँखों में काटी। दिमाग में तरह-तरह के जाले थे जो तर्क-वितर्क से हट नहीं रहे थे। कवि सोच रहा था उन दोनों के बीच घोषित सम्बन्ध तो महज़ इतना था कि वे एक ही कॉलेज के एक विभाग में सहकर्मी थे। दोनों को ही कविता पढ़ाने में विशेष रुचि थी हालाँकि उनके प्रिय कवि अलग थे। दोनेां को साहित्यिक बहस का शौक था। यह अलग बात है कि कई बार उनकी बहस एकाधिक दिन तक चला करती और स्टाफ़-रूम में मौजूद बाकी लोग दिलचस्पी से यह नज़ारा देखते। इसके साथ-साथ सतह के नीचे पनपने वाली वह मित्रता थी जिसकी पृष्ठभूमि दोनों की असावधानी से निर्मित हुई थी। कुहू के बार-बार ज़ोर देने पर कविमोहन के उसके घर जाने के छः-सात प्रसंग, देवाशीष के कविता या अध्ययन-सुधार के चार-पाँच सत्र और कुल जमा एक बार कवि का उनके घर पर रात्रिकालीन भोजन। उस दिन की बात से कवि को आज भी हँसी आ जाती है। कैसे कुहू की माँ ने ताज्जुब से कहा था, 'ओ माँ यह बोका माछेर झोल खाता नहीं, इसको हम क्या खिलाएँ?' उस रात कवि ने उनके यहाँ सिर्फ चने की दाल से लूची खायी थी। कवि को उस परिवार का उत्फुल्ल भाव पसन्द था। वहाँ सब सदस्यों का आपस में सहज संवाद था। लडक़े-लडक़ी की मित्रता के प्रति न कोई सन्देह न संकोच। बल्कि उसके पिता स्वयं कहते, "कोबी इस पूजो पर तुम हमारे साथ कोलकाता चलो, बहुत

अच्छा लगेगा।" घर की हदों में कुहू भी एकदम अलग किस्म की लडक़ी बन जाती, शैले और वर्ड्सवर्थ पर झगडऩेवाली युवती की जगह ताश के पत्ते बाँटती, फेंकती, एक अल्हड़ लडक़ी।

उस परिवार के ताने-बाने में कवि एक सदस्य की तरह स्वीकार कर लिया गया था, यहाँ तक कि कवि को बोलचाल की बांग्ला समझ आने लगी थी। वह रवीन्द्रनाथ ठाकुर और ईश्वरचन्द्र विद्यासागर द्वारा लिखित दोनों बांग्ला प्राइमर भी खरीद लाया था। रात जब वह आखिरी बस से दस बजे जाने को कहता, कुहू उसे छोडऩे घर के फाटक तक आती और व्यग्रता से पूछती, "फिर कब आओगे?" थोड़ी देर दोनों ठिठके खड़े रहते। पूरे चाँद की चाँदनी में न सिर्फ बेगमबेलिया के पत्ते वरन् कुहू के बाल भी चमकते, उसका दुपट्टा एक क्षण कवि के ऊपर लहरा जाता और वह कहती, "एदियू टिल वी मीट अगेन।" कवि बस की जगह बादलों पर सवार होकर वापस लौटता।

कवि को याद आया एक दिन कुहू की माँ ने कहा, "ये लडक़ी, कोबी, एकदम पागल है। इधर बंगाली मार्केट में नहीं उधर करोलबाग जाकर शॉपिंग करना बोलती। तुम इसको ले जाओ, हम तो कभी करोलबाग गया नहीं।"

एक इतवार वे दोनों करोलबाग गये थे। कुहू चिडिय़ा की तरह चहक रही थी। उसने सलवार-सूट का कपड़ा, पाउडर, शमीज, छोटे टॉवेल और मेवे खरीदे। फिर बोली, "अरे मुझे बॉबपिन्ज़ और क्लिप खरीदने थे, वह तो मैं भूल ही गयी।" वह कवि की बाँह पकडक़र एक तरह से घसीटती हुई ही वापस चल पड़ी थी मार्केट की ओर जहाँ नुक्कड़ पर ही क्लिपवाला और चाट-पकौड़ी वाला बैठा था। जब कुहू ने बालों के लिए तरह-तरह के ढेर सारे क्लिप्स और पिन खरीदे, कवि ने भी तीन जोड़ी सुन्दर से क्लिप्स खरीद लिये थे।

कुहू ने शरारत से कहा था, "अपनी तीन गर्ल फ्रेंड्स के लिए?"

कवि ने सकपकाकर कहा था, "मेरी तीन बहनें हैं।"

उस क्षण कवि बता सकता था कि वह यह सौगात अपनी पत्नी के लिए खरीद रहा है लेकिन उसमें नैतिक साहस ही न हुआ। उसे बहनों का नाम लेना सर्वथा सुरक्षित लगा।

रात में इन बातों की निष्प्रयोजनता कवि के सामने खुलती जा रही थी। वह तय कर रहा था कि उसे यह ख़बर पहले कुहू-परिवार को देनी चाहिए अथवा कुहू को! कभी वह सोचता उसे पहले कुहू को बताना चाहिए क्योंकि परिवार को तो वह कुहू के माध्यम से जान पाया है। कभी उसे लगता एक बार परिवार उसके सत्य को स्वीकार कर ले फिर तो कुहू का व्यवहार समयानुसार सहज हो जाएगा।

इन्हीं द्वन्द्वों में फँसा जब कवि कॉलेज पहुँचा उसने पाया आज कुहू कॉलेज आयी ही नहीं है।

कवि कुछ प्रकृतिस्थ होकर स्टॉफ़-रूम में अपनी कुर्सी पर बैठ गया। कुछ देर बाद उसके हैड ने ही बताया, "कुहेली भट्टाचार्य के फादर को हार्ट अटैक हो गया है। उसका फोन आया था।"

कवि को हैरानी हुई, "कब की बात है।"

"लास्ट नाइट बताया था उसने।"

कविमोहन ने किसी तरह एक पीरियड लिया, फिर वह बंगाली मार्केट की तरफ़ चल पड़ा।

घर पर ताला लगा था। पड़ोसी ने बताया शायद जीवन हॉस्पिटल गये हैं सब लोग।

सघन चिकित्सा कक्ष के बाहर गलियारे में बेंच पर चिन्तामग्न बैठे तीन चेहरे माँ, देवाशीष और कुहू के थे। उन्हीं से कवि को पता चला कि रात खाने के बाद पिताजी को यकायक बेचैनी हुई, बाँह में तेज़ दर्द हुआ और वे बेहोश हो गये। डॉ. आहूजा को बुलाकर दिखाया तो उन्होंने इन्हें हॉस्पिटल लाने की सलाह दी। गम्भीर हार्ट अटैक था। इस वक्त दवाओं के असर से बेसुध हैं।

मौजूदा हालात में पिताजी की देखभाल के अलावा और किसी विषय पर बातचीत का सवाल ही नहीं था। कॉलेज के कुछ और लोग भी उन्हें देखने आये लेकिन कवि पर उनके पास बैठने की बाक़ायदा ड्यूटी लगी थी। कुहू के चाचा का परिवार कलकत्ते से दो दिनों के लिए आकर बीमार का हाल देख गया। सेवासुश्रूषा का असली वज़न घर के लोगों पर ही था और कवि भी घर का हिस्सा समझा जाने लगा।

एक शाम वह भट्टाचार्यजी के पास बैठा किताब पढ़ रहा था। तभी स्टॉफ नर्स ने आकर उनका रक्तचाप जाँचा। वह कवि से मुस्कराकर बोली, "आपके फ़ादर हैं ये?"

"नहीं, फ़ादर जैसे हैं।"

"फ़ादर इन लॉ?"

"नहीं, माय फ्रेंड्स फ़ादर।"

नर्स के जाने के बहुत देर बाद जब कवि भट्टाचार्यजी को फलों का रस पिला रहा था, उन्होंने अचानक कहा, "कोबी, हमंऔ लगता हम अब लडक़ी का बिये कर दें।"

कवि एकबारगी समझा नहीं कि वे क्या कह रहे हैं। उसे प्राइमर से यह तो पता था कि बोई का मतलब किताब होता है। बिये का मतलब वह नहीं जानता था।

भट्टाचार्यजी कहने लगे, "रिटायर होकर हम सोचता था, सब काम धीरे-धीरे करेगा। अब तबियत बोलता, तड़पड़ काम करने का जैसे हज़ारे रन बनाता। ताड़ाताड़ी।"

"सब हो जाएगा, पहले आप स्वस्थ होकर घर तो पहुँचें।"

कवि ने उनको शान्त किया। उसे आभास हुआ कि उनका मतलब कुहू की शादी से है। यह वह मौका नहीं था जब कवि इस सत्य का उद्घाटन करता कि वह विवाहित है, दो बच्चों का पिता। एक इनसान की जान पर बनी थी और अगले चार घंटे, उनकी सुश्रूषा का भार कवि पर था।

जब कुहू रात के लिए थर्मस में दूध लेकर हॉस्पिटल आयी तब भी कवि यह न पूछ सका कि सुनो कुहू, बिये का मतलब क्या होता है?

अपने कमरे के एकान्त में, बिस्तर पर, थके-हारे, लेटे हुए कवि को बड़े तीखेपन से लग रहा था भारतीय समाज पुरुषों के प्रति कम क्रूर नहीं रहा है। क्यों नहीं समाज ने कुछ ऐसे प्रतीक चिह्न स्थापित किये जिनको धारण करने

से पुरुषों का विवाहित होना ज़ाहिर हो सके। स्त्रियों को कम-से-कम यह छूट है कि वे मंगलसूत्र, सिन्दूर, आलता और बिन्दी के सहारे अपने विवाहित होने का सबूत पेश कर सकती है। पुरुष के सर्वांग पर कहीं नहीं लिखा होता कि वह विवाहित है अथवा अविवाहित। पुरुष शिथिल, थुलथुल, अधेड़ दिखने लगे तब तो लोग समझ लें कि हाँ यह बाल-बच्चेदार आदमी है, अन्यथा अगर वह कवि की तरह लम्बा, दुबला, लडक़े जैसे युवा और आकर्षक व्यक्तित्व का हो तो यह समस्या हर सम्पर्क में उपस्थित हो सकती है। पश्चिम में मर्द के बायें हाथ की अनामिका में अँगूठी का होना उसका शादीशुदा होना बताता है पर भारतीय समाज में मर्द की उँगली में अँगूठी कोई स्पष्ट घोषणा-पत्र नहीं है। शादी पर कविमोहन को ससुराल से अँगूठी दी गयी थी जिस पर ú खुदा हुआ था। कवि ने उसे एक भी बार पहनकर नहीं देखा। उसे हमेशा लगता था अँगूठी पहननेवाले हाथ व्यापारियों के हाथ होते हैं। कलम-पेन्सिल पकडऩेवाले हाथों में अँगूठी शोभा नहीं बाधा लगती है। उसकी अँगूठी घर की तिजोरी में कहीं पड़ी होगी। कवि को बच्चनजी की पंक्तियाँ याद आने लगीं-

'हम कब अपनी बात छिपाते।

हम अपना जीवन अंकित कर

फेंक चुके हैं राज-मार्ग पर

जिसके जी में आये पढ़ ले, थमकर पल भर आते-जाते

हम कब अपनी बात छिपाते।'

यही ठीक रहेगा, कवि ने सोचा। वह कुहू को पत्र लिखकर अपनी स्थिति स्पष्ट कर देगा।

कवि का मन कुछ हल्का हो आया। शब्द की दुनिया पर उसे सबसे ज्यादा भरोसा था।

करवट-करवट सोकर देखा लेकिन उसको नींद न आयी। कवि कागज़-कलम लेकर बैठ गया।

उसने लिखना शुरू किया-मेरी दोस्त कुहू। फिर कुछ सोचकर उसने मेरी शब्द काट दिया। -मेरी दोस्त कुहू। उसे क्या हक है कुहू को मेरी कहने का। आगे उसने लिखा-'तुम सोचोगी जब मैं रोज़ इतने घंटे तुम्हारे पास, तुम्हारे साथ होता हूँ, चिट्ठी लिखने की आखिर क्या ज़रूरत पड़ गयी। आज अस्पताल में पिताजी को यकायक तुम्हारी फिक्र होने लगी। उन्होंने कहा वे चाहते हैं तुम्हारी बिये कर दें। बांग्ला सहज ज्ञान पोथी में बिये शब्द का अर्थ तो नहीं दिया पर मैं समझ रहा हूँ कि उनका तात्पर्य तुम्हारे विवाह से है।

इसके लिए पहल तो तुम्हें करनी होगी। जैसी सहज, सजग और प्रखर तुम हो अपने अनुरूप साथी ढूँढऩे का काम सबसे सही तरीके से तुम ही कर सकती हो। अपने आसपास साथियों पर नज़र दौड़ाता हूँ तो मुझे कोई भी तुम्हारे योग्य नहीं लगता, मैं भी नहीं। काश तुम मुझे पाँच साल पहले मिली होतीं। तब मैं अपना नया उज्ज्वल प्रथमोल्लास तुम्हें अर्पित करता। अब तो मेरी दशा कुछ-कुछ एलियट की कविता की शुरुआत जैसी है-

'लेट अस गो देन यू एंड आय

वैन द ईवनिंग इज़ स्प्रेड अगेंस्ट द स्काय

लाइक ए पेशेंट ईथराइज़्ड अपॉन द टेबिल।'

मेरी पत्नी इन्दु सुन्दर और अच्छी है लेकिन मेरे विचारलोक में प्रविष्ट नहीं है। उसे अधिक शिक्षित करने का मुझे समय और अवसर भी नहीं मिला। तुममें मैंने अपनी सोलमेट की झलक देखी जिसका स्विचबोर्ड हमेशा सक्रिय और संवेदनयुक्त रहता है।

इस पत्र को लिखते हुए मैं एक साथ चिन्तातुर और चिन्तामुक्त, दोनों हो रहा हूँ। तुम समझ सकती हो।

तुम्हारा

कविमोहन

पत्र पूरा कर कवि उसे एक बार पढ़ गया। अब उसने सम्बोधन में से दोस्त शब्द भी काट दिया-मेरी दोस्त कुहू-सिर्फ कुहू बच रहा। अन्त में भी एक शब्द काटना पड़ा-तुम्हारा। उसने दूसरी बार पत्र पढ़ा। कटे हुए शब्द लाशों की तरह पृष्ठ पर पड़े थे। कवि चाहता तो चिट्ठी दुबारा नये कागज़ पर लिख सकता था। पर उसकी आदत थी वह कोई भी चीज़ बस एक बार लिखता। कविता से लेकर लेख तक उसका यही अभ्यास था। हाँ, कागज़ पर उतरने से पहले पंक्तियाँ उसके मन-मस्तिष्क में उमड़ती रहतीं।

पत्र को मोडक़र उसने लिफ़ाफे में डाला। लिफ़ाफे के ऊपर कुहू का नाम लिखते हुए हाथ कुछ काँप गया। दूसरा लिफ़ाफ़ा लम्बा था, रचनाएँ भेजनेवाला। उसमें निजी ख़त डालना अच्छा नहीं लगता। कवि ने मेज़ पर चिट्ठी रख छोड़ी। उसके ऊपर पेन रख दिया। सोचा सुबह दूसरा लिफ़ाफ़ा लाकर नाम नये सिरे से लिख देगा।

आमतौर से कवि देर में सोकर उठता था और हड़बड़ी में तैयार होकर कॉलेज चल देता। आज सुबह-सुबह हल्की फडफ़ड़ाहट से उसकी नींद खुल गयी। उसने पाया खिडक़ी से आ रही हवा से कलम के नीचे दबा कागज़ रह-रहकर फडफ़ड़ा रहा है जैसे कह रहा हो, मुझे सँभाल लो, मैं किसी भी पल उड़ जाऊँगा।

कवि ने बाँह बढ़ाकर चिट्ठी उठा ली। चिट्ठी पर नज़र डाली। थोड़ा असन्तोष हुआ। उसे लगा चिट्ठी अधूरी है। उसने पुनश्च लिखकर उसमें जोड़ा, 'आज मुझे तुम्हारे प्रिय कवि शैले की पंक्तियाँ याद आ रही हैं-

'We look before and after

And pine for what is not.

Our sincerest laughter

is with some pain fraught

Our sweetest songs are those that tell of saddest thought.'

जब तक चिट्ठी कमरे में रखी रही कविमोहन को चुनौती देती रही। उसे लग रहा था यह चिट्ठी उसे अँगूठा दिखा रही है, 'तुम मुझे डाक में डालोगे ही नहीं। तुम्हें बंगाली मार्केट का पता भूल जाएगा। तुम्हारे पास न लिफ़ाफ़ा है, न डाकटिकट। तुम इस शहर में अपनी एकमात्र दोस्त को अपनी बेवकूफ़ी से खो दोगे। तुम्हारा नाम कविमोहन नहीं मूर्खमोहन है।'

कवि से न नाश्ता खाया गया न खाना। वह कॉलेज भी नहीं गया। उसने अख़बार भी नहीं पढ़ा। उसके दिमाग में आँधी चलती रही। किस मुँह से वह कॉलेज जाता रहेगा। कुहू उसे क्यों क्षमा करेगी! और उसका परिवार!

आखिरकार सत्य का बोझ और अधिक सहना कवि के लिए असह्य हो गया और शाम पाँच बजे वह चिट्ठी डाकपेटी में छोड़ आया।

33

मथुरा में इन दिनों बड़े परिवर्तन हो गये थे। आज़ादी के साथ ही वहाँ नये निर्माण का दौर आया और देखते-ही-देखते वहाँ के बाज़ार रौनक़दार हो गये। बहुत से शरणार्थियों ने छत्ता बाज़ार, चौक, होली दरवाज़े, नानकनगर और डैम्पियर पार्क में तरह-तरह के स्टोर खोले। इनमें पीले टिमटिमाते बल्बों की जगह उन्होंने लम्बी ट्यूबलाइटें लगवायीं जो दिन में भी दुकानों को जगमग रखतीं। दुकानदारी का शास्त्र और अर्थशास्त्र दोनों बदल गया। पुराने व्यापारी इन नये दबावों को महसूस कर थोड़ा तिलमिलाते, फिर पंखे की डंडी से पीठ खुजाते हुए बोलते, "दुकानें लाख नयी हो जाएँ ग्राहक तो वही पुराने हैं, वे तो हमारे ही पास आएँगे।" इस बात में केवल एक-तिहाई सच था। ग्राहक की जेब में पैसे हों न हों वह एक नज़र इन नये स्टोरों पर ज़रूर मारता।

उसके व्यवहार की जड़ में घर की स्त्रियों की ललकार रहती जो सुबह-सवेरे मुनादी कर देतीं, "तुम यह बट्टीवाला साबुन कहाँ से ले आये? बगलवाली के यहाँ तो 'काके दी हट्टी' का साबुन आया है। यासे आठ आना सस्ता और झाग दोगुना।

पति गाँठ बाँध लेते अब से 'काके दी हट्टी' से ही साबुन लाना है।

नव-स्वाधीन भारत देश का न केवल भूगोल वरन इतिहास भी बदला था। उसका बाज़ार और भाव भी बदल रहा था। जिसने यह सत्य जितनी जल्द पहचान लिया उतनी जल्द वह तरक्की की दौड़ में शामिल हो गया। पीछे छूटे लोग रोते रह गये अपनी पुरानी दुकान और दुकनदारी को।

लाला नत्थीमल समय की चाप पहचान रहे थे। उन्होंने इसकी शुरुआत पत्नी विद्यावती और बेटी भगवती के आचरण में देखी थी। उन्हें पता था कि अब बाज़ार विक्रेता का नहीं ख़रीदार का हो रहा है।

लाला नत्थीमल के अन्दर समय की नब्ज़ टटोलने की अद्भुत मशीन लगी हुई थी। वे यह भी मानते थे कि ग्राहक के अनुकूल बात कहते हुए भी अपने मन की करना, एक अच्छे व्यापारी की निशानी है। अत: वे भी अब आसामी से इसी तर्ज में बात करते।

भगवती ने दसवीं की परीक्षा प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण कर स्कूल का कीर्तिमान तोड़ा और उसी साल उसे कस्तूरबा विद्यालय में अध्यापिका की नौकरी मिल गयी। लाला नत्थीमल ख़बर से हक्का-बक्का रह गये क्योंकि उन्होंने कभी कल्पना ही नहीं थी थी कि ऐसा ज़माना आएगा जब लडक़ी भी कमाई करने लगेगी। आदत के मुताबिक पहले उन्होंने विरोध किया, "भग्गो काम पर नहीं जाएगी। लोग क्या कहेंगे! बनिया बिरादरी में तो नाक कट जाएगी!"

विद्यावती बोली, "छोरी ने पढ़ाई कर सिर ऊँचा किया है तुम्हारा। लडक़ी है तो क्या हुआ!"

"पहले घर का काम तो सीख ले। कल को ब्याह होगा तो किताब-कापी काम नायँ आयगी।"

"घर के काम वह पहले से जानै। अभी तो ब्याह तय नहीं हुऔ है तब तक तो पढ़ाने दो बाय।"

"छोरी की कमाई खाओगी?"

"अलग धरती जाऊँगी। डाकखाने में उसके नाम जमा करवा देना।"

"तुम इत्ती हिमायत च्यों कर रही हो?"

"मैंने देख लिया ना। पढ़ाई के बिना औरत की जिन्दगी नरक है। येई लीली को बीच में स्कूल से उठा लिया। कुन्ती भी छठी के आगे नायँ पढ़ी। कवि देखो पढ़ गया तो कित्ता आगे बढ़ गया।"

"हाँ वह तो दिल्लीवाला बन के बैठ गया। अपनी छोरियों की भी फिकर नायँ।"

"इनके नाम भी लिखवाओ। बेबी बड़ी हो रही है, कब स्कूल जायगी?"

बड़े बेमन से पिता भगवती को काम पर भेजने को राजी हुए। उन्होंने उसे डपटकर समझाया, "टीचर बन गयी है इसका मतलब यह नहीं कि सडक़ों पर फक्का मारती घूम। घर से स्कूल, स्कूल से घर सूधे से आना-जाना है। सडक़ पर कभी किसी से बोलना नहीं। और कान खोलकर सुन ले, फैसन करबे की कोई जरूरत नहीं।"

भगवती ने दबी ज़ुबान से कहा, "दादाजी स्कूल में टीचरों की भी ड्रेस है, नीली किनारी की सफेद धोती।"

गाँधीजी के सिद्धान्तों पर कस्तूरबा विद्यालय स्थापित हुआ था। अभी वहाँ सिर्फ कक्षा एक से पाँच तक की पढ़ाई होती। महात्मा गाँधी का नारा 'सादा जीवन उच्च विचार' स्कूल के फाटक पर भी अंकित था।

बनिया बिरादरी को महात्मा गाँधी की 'सादा जीवन' वाली उक्ति बहुत पसन्द थी। खर्च से चिढऩेवाली कौम को लगता गाँधीजी के आदर्शों से और कुछ हो न हो घर में बचत तो हो ही सकती है। उच्च विचारवाली बात पर वे थोड़े हक्के-बक्के हो जाते। फिर मन में तसल्ली करते कि नौजवान पीढ़ी जब किफ़ायत से जीना सीखेगी तो विचार अपने आप उच्च हो जाएँगे। अपने विचारों को लेकर वे कभी चिन्ताग्रस्त नहीं रहे क्योंकि उन्हें लगा कि उनसे ज्याचदा आदर्शवादी जाति न कभी कोई थी न होगी। महात्मा गाँधी के राष्ट्रीय आन्दोलन को भी उन्होंने एक बिरादरी-नज़र से देखा। वे महात्मा गाँधी को राष्ट्रीय नेता से अधिक एक बनिया नेता में तब्दील करना चाहते थे। जब-तब आज़ादी मिलने के बाद भी वे अपनी सायंकालीन बैठकों में उनके दर्जन भर नुक्स निकालते। लाला शरमनलाल कहते, "गाँधीबाबा के साथ मुश्किल यह है कि वे न समाजवाद के बारे में स्पष्ट हैं न लोकतन्त्र के। पढ़ा तो उन्होंने खूब है पर बीच में जो ये दक्खिन अफ्रीका चले गये ना, बस हमारे यहाँ की राजनीति उनके हाथ से छूट गयी। अब वे लाख कहते रहें चरखा चलाओ, खादी पहनो, इससे तो देश का काम चलेगा नहीं।"

छेदीलाल कहते, "गाँधीबाबा कहते हैं अपनी जरूरतें कम करो। खुद नंगे उघाड़े रहते हैं कि उनकी देखादेखी हम लोग भी नंगधड़ंग रहें।"

अच्छत चौबे कहते, "अरे हम तो तऊ नंगे उघाड़े रह लें पर लुगाइयों का क्या होगा। वे तो कुछ पहिरेंगी।"

लाला नत्थीमल बोलते नहीं पर उन्हें बड़े ज़ोर से कौंध जाता वह दिन जब उनकी पत्नी अपनी बेटी के साथ स्वदेशी आन्दोलन की सभा मे होली दरवाज़े गयी और भाईजी की वक्तृता सुनकर ऐसे जोश में आयी कि उसने अपने बदन पर लपेटी चीनी सिल्क की चादर उतारकर विदेशी वस्त्रों की होली में झोंक दी। उसी समय कांग्रेसी वालंटियरों ने उसके ऊपर खद्दर की चादर डाल दी। लालाजी को बेचैनी इस बात की थी कि कुछ पल को ही सही तमाम भीड़ ने उनकी स्त्री को नंगा उघाड़ा तो देख लिया।

वे नहीं चाहते थे कि एक अधनंगा, मझोले कद का दुबला-पतला आदमी आज़ादी के नाम पर उनकी स्त्री और बच्चों को अनुशासित करे।

प्रकट उन्होंने कहा, "चलो आजादी आ भी गयी और अँग्रेज चले भी गये तो अब क्या करोगे। का आजादी लेकर चूरन की तरह चाटोगे।"

छेदीलाल बोले, "अरे आजादी भी यह क्या आयी है कि लफंगों, गुंडों, हरामखोरों को आजादी मिल गयी है, शरीफ लोग वैसे के वैसे। जरा भंगी का हौसला देखो, झाड़ू नहीं लगाएगा, धीमर पानी नहीं भरेगा, मोची पनही नहीं बनायेगा। हम लोगों का तो मरण हो गया। ये काम कौन करेगा?"

भरतियाजी ने कहा, "चलो मान लो यह जागरण की आँधी है। अब जिसे तनखाह दोगे वही झाड़ू लगाएगा और वही पानी भरेगा। असली बात पर आओ। औरतें घर में हमारा कहा मानेंगी या उस गाँधीबाबा का जो बहत्तर मील दूर बैठा है।"

लाला नत्थीमल को भी यही प्रश्न सबसे ज्यादा प्रासंगिक लगा। उन्होंने कहा, "दसियों साल से मैं देख रहा हूँ, औरतों को आजादी का चस्का जरा ज्यादा ही लगा है। पहले ससुरा चरखा चलाने के नाम पे घर से बाहर पैर निकला, फिर तो लुगाइयाँ कई-कई सभाओं में जाने लगीं। सत्याग्रह का शोर तो उन्होंने सुराजी भौलंटियरों से भी ज्यातदा मचाया। जरा-जरा बात में चूल्हे की लपट जैसी भभकें, ये कोई अच्छौ गुन-ढंग नायँ।"

भरतियाजी अपने मित्र का दर्द समझ रहे थे। उनकी पत्नी और बहन भी चरखा चलाने का संकल्प लिये हुए थीं। उन्होंने कहा, "पर अब तो सुराज आ गया, अब चरखा चलाने की कौन ज़रूरत है। जहाँ कताई केन्द्र था वहाँ तो खद्दर भंडार खुल गया है। खुद इन लोगों के नेता भाईजी वहाँ बैठते हैं। कल तक नुक्कड़ पर नेतागिरी करते थे, आज हाथ में गज पकडक़र खादी नाप रहे हैं।

लालाजी बोले, "लो बोलो, इन्हें भला आजादी से क्या मिला?"

भरतियाजी ने कहा, "ऐसा नहीं है। ये खुद गाँधीजी के कहने से ही इस काम में लगे हैं। तुम्हें पता है बड़े-बड़े लोग आजकल संकल्प लेकर खद्दर भंडार में बैठते हैं और खादी बेचते हैं। देखा है न भंडार के बाहर लिखा रखा है-'खादी वस्त्र नहीं विचार है।' यह भी गाँधीजी का ही वाक्य है।"

वास्तव में खादी, विचार से ज्यीादा एक अस्त्र था जिससे गाँधीजी भारतवर्ष की अर्थव्यवस्था ठीक करना चाहते थे। उनका नारा हो सकता था 'खादी वस्त्र नहीं अस्त्र है'। लेकिन तब उनका अहिंसावाला आदर्श चोट खा जाता। इसलिए उन्होंने कहा 'खादी वस्त्र नहीं विचार है'।

छेदीलाल ने कहा, "खादी महँगी होवै है। बड़े आदमी ही पहर सकें खादी।"

"नहीं, ऐसी बात नहीं। फिर हमने तो सुनी है कि खद्दर भंडार में हरेक ग्राहक को एक जोड़ी कपड़ा मुफ्त दे रहे हैं।"

"पहले शपथ लेनी पड़ती है कि सारी उम्र खद्दर ही पहनोगे तब मिलता है धोती-कुर्ता-गंजी और गाँधी टोपी।" भरतियाजी ने बताया।

मथुरा के जमुनाजल में जैसे सौ भँवर की हिलोर पड़ गयी। शाम का वक्त था। दुकानदार अपनी दुकानदारी में उलझे थे, गृहस्थ अपना सरंजाम सँभाल रहे थे कि दनादन, दनादन, दनादन, तीन गोलियों ने नवजात हिन्द स्वराज्य का नक्शा बदल दिया। ज़रा देर में छिद्दू रोता हुआ दुकान पर लौटा, "आज मैं खायबे को नईं खाऊँगौ, आप अन्दर बतला दें। आज गाँधीबाबा को दईमारों ने गोली मार दई।"

"तुझे कैसे पता?"

"मैं पानवाले के ढिंग रेडियो सुन रह्यै थौ। वहीं पे रोआराट मच गयी। आप भी लालाजी जल्दी से दुकान बढ़ालो, हल्लागाड़ी ऐलानिया बोल रई है।"

लाला नत्थीमल के हाथ-पैर फूल गये। अगल-बगल झाँककर देखा। सभी अपने बोरे और कट्टे समेट रहे थे। जिनके पास रेडियो था वे बटन घुमाकर दिल्ली स्टेशन पकडऩे की कोशिश कर रहे थे। लडक़ों की एक टोली हाय-हाय करती मंडी के बीच से निकली। सबके चेहरों पर बदहवासी थी।

लालाजी को पत्नी का ध्यान आया। विद्यावती का जाने कौन हाल होगा खबर सुनकर। उस पगली ने कैसा तार जोड़ रखा था गाँधीबाबा से।

दुकान बढ़ाकर वे परेशान से घर में घुसे। अँगोछा अलगनी पर लटकाकर टोपी उतारी और बिना पैर धोये तखत पर बैठ गये।

तभी उन्हें भगवती दिखी। "भग्गो तेरी मैया कहाँ गयी?"

"दादाजी जीजी को खबर सुनकर दौरा पड़ गया। दाँती भिंच गयी है। अन्दर पड़ी हैं।"

घर में रेडियो नहीं था पर ख़बर हवा में उडक़र आनन-फानन फैल गयी थी। इन्दु सास के तलवों में काँसे की कटोरी रगड़ रही थी। भग्गो ने दो बूँद पानी उनकी पलकों पर डाला और थोड़ा-सा होंठों पर। चौंककर उन्होंने आँखें खोल दीं। फटी-फटी और खाली आँखों से सबको देखकर बोलीं, "गाँधीबाबा से तो भेंट ही नायँ भयी, नईं मैं बिनसे पूछती लुगाइयों की आजादी के लिए च्यों नईं लड़े तुम। अभी तो आजादी ठीक से मिली भी नायँ।"

"सिर्री है का, 15 अगस्त 1947 को मिल तो गयी आजादी।" लालाजी ने कहा।

"अब का मिलैगी। आजादी दिलाबै बारौ भी चलौ गयौ।" विद्यावती ने अपनी रौ में कहा।

बाज़ार तीन दिनों के लिए बन्द हो गया।

सभी स्कूल-कॉलेजों में शोक-सभाओं का आयोजन हुआ। महात्मा गाँधी के लिए जनता में भावनाओं का ज्वार इतना प्रबल था कि चौराहों पर आम-सभाएँ रखी गयीं। महात्मा गाँधी की तस्वीर के ऊपर इतनी फूल-मालाएँ चढ़ाई गयीं कि तस्वीर के साथ-साथ चौराहा भी पूरा भर गया। लोगों ने महात्मा गाँधी की तस्वीर देवी-देवताओं की मूर्ति और तस्वीरों के साथ अपने घरों में लगा ली।

विद्यावती का जैसे स्वप्न ही टूट गया। उसने सोचा था आज़ादी आएगी तो रामराज्य आ जायगा बल्कि सीताराज्य आ जायगा। औरत को आदमी की धौंस नहीं सहनी पड़ेगी। वह अपनी मर्जी की मालकिन होगी। कोई उसके हाथों किये खर्च पर नाक-भौं नहीं सिकोड़ेगा, कोई उसे बात-बात पर झिडक़ी नहीं लगायेगा, घर-बाहर हर जगह उसके साथ बराबरी का बर्ताव होगा। यह क्या कि आज़ादी के छह महीने बीत गये और औरत की जिन्दगी, वही ढाक के तीन पात। गाँधी बाबा को कम-से-कम औरतों का तो ध्यान रखना चाहिए था, मर्द तो पहले भी कौन कम आज़ाद थे। चलो समाज को तराजू मान लो और आदमी-औरत को बटखरा। ऐसा कैसे हो रहा है कि आदमी तो तीन छँटाक का भी सवा सेर और औरत सवाया होकर भी पौनी। बच्चों का पासंग बनाओ तब भी तराजू सतर नहीं होती। औरत की तमाम उम्र ऐसे ही कट जाती है-कभी दुक्खम, कभी सुक्खम। कहने की बात है कि मायके में सुख मिले, सासरे में दुख। माँ भी कम बैरी नहीं होती। बच्चों में दुभाँत करना बाप का नहीं, माँ का काम दिखता है। बेटों को प्यार, बेटियों को दुतकार। बेटे सारी जमा पूँजी, जमीन-जायदाद ले जाएँ तब भी प्यारे। बेटियाँ अचार की फाँक पर पलें, तब भी भारी।

विद्यावती के माँ-बाप ने उसका ब्याह कर जैसे जीते-जी उसका किरियाकरम कर दिया। वापस घूमकर कभी पूछा ही नहीं कि छोरी किस हाल में है। कुछ साल लग गये इस सचाई को हज़म करने में कि उसके जीवन में अब मायका ख़तम है। वही बावली कभी जमनाजी जाते-आते किसी से पूछ लेती लाल हवेली वाले लोग कैसे हैं, कभी अम्माजी को देखा, तबियत ठीक तो है न उनकी। बनिया-समाज शायद यह सोचता था कि बेटी से ज्यामदा मुहब्बत दिखाई तो कहीं वह ससुराल छोड़ पीहर में ही न आ बसे। उसका तो चलो दूसरा ब्याह था, जिनके पहले ब्याह थे उनकी भी कहानी यही थी। भाई-भाभी भी सुध नहीं लेते कि कहीं बहन आकर घर में डेरा न जमा ले।

इस हत्याकांड ने शहर को झकझोर दिया। बहुत-से लोग तो उसी दिन दिल्ली के लिए रवाना हो गये कि महात्माजी की अन्त्येष्टि में अपने दो बूँद आँसू की श्रद्धांजलि देंगे। बाकी लोग रेडियो से कान सटाकर दिल्ली का आँखों देखा हाल सुनने लगे। हर किसी के घर रेडियो था भी नहीं। जिनके घर में रडियो सैट था उन्होंने उसके आगे बड़ी-सी दरी बिछा दी। रईसों ने रेडियो वाले कमरे में कच्चे कोयलों की दहकी हुई अँगीठी रखवा दी कि खबर सुननेवालों को ठंड न लगे।

लाला नत्थीमल के यहाँ रेडियो नहीं था। उनके पड़ोसी लाला शरमनलाल के यहाँ था। इकतीस जनवरी को वहीं औरतों का जमघट जुटा। शरमनलाल बड़े आदमी थे। उन्होंने घर का बड़ा वाला रेडियो सैट जनानखाने में रखवा दिया और खुद अपने कमरे में जेबी रेडियो से राजघाट का आँखों देखा हाल सुनते रहे।

घरों के बच्चे भी जैसे सहम गये थे। न किसी ने भूख की शिकायत की, न नींद की। चूल्हा तो कहीं जला नहीं था। जिसको जो मिला वही खाकर बिस्तर में दुबक गया।

छेदीलाल की बेटी उषा के ब्याह की साइत तीस जनवरी की थी। सुबह से बारात के स्वागत की तैयारी हो रही थी। जनवासे की एक-एक सहूलियत जाँची जा रही थी। शाम साढ़े पाँच बजे जैसे ही रेडियो पर यह दुखद समाचार सुनाया गया, छेदीलाल हलवाइयों के चूल्हे के पास जाकर बोले, "भैया रोक दो सारे सरंजाम, उतार दो कढ़ैया, आज न बारात आएगी, न डोली जाएगी।" सब हैरान कि छेदीलाल को हो क्या गया है। जब उन्होंने भरतपुर खबर पहुँचाई, लडक़ेवालों ने कहा, "हम तो खुद पसोपेश में थे आपसे कैसे कहें, हम आज नायँ आएँगे। हमने सोची, आप बुरा न मान जायँ कि ये तो हीला-हवाला कर रहे हैं।"

30 जनवरी को ही महापंडित राहुल सांकृत्यायन के सम्मान में मथुरा में एक विशेष सभा आयोजित की गयी थी। राहुलजी के आने पर, सब साहित्यकारों ने एकत्र होकर शोक-प्रस्ताव पारित किया और सभा स्थगित कर दी गयी।

टाउनहॉल के रेडियो सैट पर अपार जनसमूह इकट्ठा हो गया। लोगों ने घंटों खड़े होकर मिनट-मिनट का समाचार सुना। मथुरा की जनता की भूख-प्यास ग़ायब हो गयी।

व्यापारी वर्ग ने तीन दिनों तक अपनी दुकानें बन्द रखीं। किसी को इस हड़ताल के लिए कहना-समझाना नहीं पड़ा। गाँधीजी सभी के पूज्य थे। जो उनसे असहमत थे वे भी कहने लगे, "इस आदमी ने देश के लिए अपनी जान गँवा दी। हम क्या तीन दिन की दुकनदारी नहीं गँवा सकते।"

9 फरवरी को महात्मा गाँधी की पवित्र भस्मी वृन्दावन धाम लायी गयी। लानेवाले थे वहाँ के अग्रगण्य शिक्षाविद् प्रोफेसर कृष्णचन्द्र। वहाँ से एक मौन जुलूस में, सुसज्जित गाड़ी में भस्मी का ताम्रपात्र डाकबँगले ले जाया गया। मथुरा नगर के कोटि-कोटि जन वृन्दावन पहुँच गये। 12 फरवरी को भस्मी का विसर्जन यमुनातट पर बीचधार किया गया।

विद्यावती जिद करके वृन्दावन चली गयी। पति ने लाख समझाया, "तू पैर से लाचार, का करेगी वहाँ जाय के, जाने वारा तो चलौ गयौ।"

विद्यावती ने टेक पकड़ ली, "आज मुझे रोको मत, नहीं तो मैं बावली हो जाऊँगी।"

हार झकमार कर, भगवती के संरक्षण में विद्यावती को वृन्दावन भेजा गया।

खुली हवा में खड़े-खड़े और निरन्न रहकर विद्यावती की तबियत बिगड़ गयी। उसे चक्कर आ गया। भगवती के हाथ-पैर फूल गये। बीमार माँ को लेकर कहाँ जाय। वह तो भला हुआ कि वहाँ वृषभान सर अचानक दिख गये। वे उन्हें अपनी धर्मशाला में ले आये। उन्होंने अपने झोले से निकाल अमृतधारा की दो बूँद विद्यावती को पिलाईं तब उन्हें कुछ सुध आयी। उन्होंने भगवती को डाँटा, "अपनी सूरत देखो, सूखकर छुआरा हो रही है। कुछ दाना-पानी मुँह में डारी हो या मैया समेत निन्नी घूम रही हो।"

भगवती ने बताया जीजी ने तो 30 जनवरी की शाम से अब तक कभी ठीक से खाना खाया ही नहीं है।

वृषभान सर लपककर बाज़ार गये और जो भी मिल सका, ले आये। वे बोले, "खाया तो मैंने भी कल से नहीं है पर माँ को समझाओ, महात्माजी के आदर्शों को चलाने के लिए हम सभी को जिन्दा रहना होगा। हमसे ही गाँधीवाद जीवन पाएगा।"

मथुरा लौटकर भी विद्यावती वृषभान के गुण गाती रहीं। उन्होंने कहा, "वह आदमी नहीं देवता है। दो बूँद दवा मेरे मुँह में क्या टपकाई, जनै संजीवनी पिला दी।"

कभी-कभी वृषभान विद्यावती का हालचाल लेने घर आ जाते। वे समझाते, "माँजी आपको मीठा नुकसान करता है तो उसकी तरफ पीठ कर लो। गुड़, बूरा, चीनी, आँख से देखो ही मत। भगवती यह तुम्हारा ज़िम्मा है कि माँजी के मुँह में मीठी कोई चीज़ न जाय।"

विद्यावती को रंज होता, 'हाय बिना चाय के मैं कैसे जिऊँगी!'

"माँजी फीकी चाय पियो। हफ्ता भर मीठा छोडक़र अपनी जाँच करवाओ, देखो मधुमेह ठीक होता है कि नहीं।" वृषभान समझाते।

यह समस्त उपदेश एक-दो दिन अपना प्रभाव दिखाते। फिर जैसे ही कोई त्योहार आता, बच्चों के लिए पकवान बनाने के निमित्त विद्यावती घी-बूरे की कनस्तरी खोलती कि परहेज़ का बाँध टूट जाता। बच्चों से ज्यामदा मात्रा में वे ही हलुआ या पुए खा बैठतीं।

जैसे लाला नत्थीमल रात्रिकालीन बैठकों में नयी जानकारियों से लैस होते वैसे विद्यावती और इन्दु दोपहरकालीन बातचीत से सुविज्ञ बनतीं। बेबी का दाखिला डेज़ी कॉन्वेंट में करवा दिया गया था। उसे स्कूल भेजकर कुछ देर को इन्दु भी चैन से बैठ लेती। विद्यावती के पैर के कारण बैठक उन्हीं के घर में रखी जाती जहाँ नानकनगर से लेकर डैम्पियर पार्क तक की चरखा-बहनें इकट्ठी होतीं। इनमें कुछ तो बाक़ायदा एफ.ए., बी.ए. तक पढ़ी हुई थीं। बाकियों की पढ़ाई जिन्दगी के विद्यालय में हो चुकी थी। इन साथिनों के बीच बैठकर विद्यावती एक बदली हुई स्त्री होती, सलाह देती, सहमत और असहमत होती एक साथिन। निकल जाता उनके अन्दर का नीला-पीला ज़हर। वो इन्दु से मीठे स्वर में कहती, "बहू ज़रा चाय तो बना के ला। हमारी बहू चाय बहौत बढिय़ा बनावै है। और किसी को ना आवै ऐसी चाय। मठरी भी ले आना इन्दु।"

बाकी औरतें कौतुक से देखतीं कि विद्यावती में पिछले दो साल में कितना परिवर्तन आया है। पहले वह बहू के जिक्र से ही अंगार उगलती। बहू के प्रति शिक़वा-शिक़ायत उनके संवाद का मुख्य अंग होते।

एक दिन ऐसी ही एक गप्प-गोष्ठी में निर्जला बहन ने कहा, "हमने तो सुनी है, जनै सच जनै झूठ, कि गाँधीबाबा ने अपने आश्रम की प्रार्थना सभा में सबसे कहा था, 'औरत-मर्द दोनों बराबर हैं, कोई किसी से कम नहीं है।' जो लोग कहवें कि औरत जात की अकल उसके पैर की एड़ी में होवै, वे झूठ बौलें।"

नौमी ने कहा, "गाँधीबाबा अब सरग में बैठे-बैठे कछू कहैं, आदमियन तक तो बात पहुँचैई नईं, कर लो क्या कर लोगी! वे तो बस लाटसाब बने हुकुम चलायैं।"

"सच्ची कहती हो, हमारे ये भी आर्डर देने में गोरे साहबों से कम नहीं है। बात मुँह से निकली नहीं कि तुरन्त पूरी करो।" सगुना ने कहा।

विद्यावती बोली, "मर्द की आवाज भी करीं होवै, जो भी वह कहै, हुकुम जैसौ ही लगै। कट गयी अपनी तो ऐसेई।"

निर्जला ने कहा, "शायद नये जमाने में मरद औरत को दबाना छोड़ दैं।"

मोहिनी की शादी को अभी सात-आठ साल हुए थे। वह तपाक से बोल पड़ी, "नये जमाने में दबाने के नये ढंग हो जाएँगे। अच्छा यही हो कि पढ़-लिखकर हम लोग भी काम पर निकलें।"

नौमी ने कहा, "हाय राम, मर्दों की तरह पैंट-कमीज पहनकर दफ्तर में बैठोगी।"

मोहिनी हँसी, "पैंट-कमीज की जरूरत नायँ, साड़ी पहनकर भी नौकरी हो सकती है।"

"हमारी छोरी कर ही रही है। टीचर बन गयी है भग्गो।" विद्यावती ने सगर्व कहा, "वह तो कहो, मैंने साथ दिया नहीं उसके दादाजी ने तो भतेरी चिल्लपौं मचायी।"

नौमी ने स्वर दबाकर पूछा, "फैसन तो नहीं करने लगी?"

"नायँ, वह तो म्हौड़े पर कभी क्रीम भी ना लगाय। सिंगार पट्टार का घना सरंजाम धरा है बहू के पास पर हमारी भग्गो कभी शीशा भी नायँ देखे।"

निर्जला ने कहा, "मैं जानूँ, कस्तूरबा स्कूल में बड़ी कड़ाई है।"

"उससे ज्यादा कड़ाई तो उसके दादाजी करैं। वो तो कहैं छोरी सयान हो गयी, उसे घर बैठाओ या ब्याह कर दो।"

"कित्ते साल की है?"

विद्यावती ने झट दो साल उम्र छुपाकर कहा, "अभी सोलह की भी ना भई।"

नौमी ने कहा, "छोटी तो नायँ। ब्याह लायक उमर तो है।"

विद्यावती ने उसकी बात काटी, "हरेक का अपना उठान होवै है। देखने में भग्गो अभी बारी लगै। मैं सोलह साल की ब्याही आयी थी। कुछ भी पता नई था कैसे घर चलानौ है। येईमारे इनका कहना मानती गयी। हमेशा के लिए मैं दबैल बन गयी।"

मोहिनी ने कहा, "आपकी लडक़ी नौकरी कर रही हे। ऐसे ही पकडक़र किसी के साथ मत बाँध देना। उसकी मर्जी पूछकर ही ब्याह करना।"

"चलो-चलो माथापच्ची बहौत हो गयी। आज भजन गाने की सुध नहीं आयी अभी तक। हाँ भई मोहिनी शुरू कर।"

तुरन्त दरी पर से चाय के कुल्हड़, मठरी की तश्तरी सरकाकर जगह बनायी गयी। विद्यावती ने आवाज़ लगायी, "इन्दु तू भी आ जा।"

मुन्नी की उँगली पकड़ इन्दु अन्दर आयी। सुन्दर इन्दु के साथ ग्रहण की तरह मुन्नी को लगे देख एक बार को सब सकपका गयीं।

बच्ची की चेचक ठीक हो गयी थी पर अपने निशान मुँह पर छोड़ गयी थी।

भजन-वजन तो सब गयीं भूल। इन्दु के ऊपर लानत और सलाह की बौछार शुरू हो गयी।

"यह क्या दुर्गत बनायी है छोरी की, टीका नहीं लगवाया था? आजकल बेपढ़ी भी जानै बच्चों को चेचक का बीसीजी लगता है।"

"आप तो बड़ी चिकनी-चुपड़ी रहती हो, बच्चे की कोई फिकर नहीं, पैदा च्यौं किये जो ऐसे ही पटकने थे।"

निर्जला ने कहा, "बहू जो हो गयी सो हो गयी, अब या छोरी का कच्चे दूध से म्हौड़ो धोया कर, छह महीनों में उजली हो जाएगी।"

नौमी बोली, "इत्ता दूध कहाँ से आयगौ जी। मेरी बात सुनौ, गोले की कच्ची गिरी रगड़ो, दाग आपैई मिट जावैंगे।"

इन्दु की शकल रुआँसी हो आयी। मुन्नी कमज़ोरी के बावजूद पैदल चलने लगी थी। जितनी देर जागती, इस कमरे से उस कमरे चक्कर लगाती। वह सोकर उठी तभी सास की पुकार पड़ी तो वह उसे लिये चली आयी। अब उसे पछतावा हो रहा था।

विद्यावती ने कमान सँभाली, "सुन लो सब जनीं। हमारी ये नतनी दुनिया से निराली है। रंगरूप कै दिना का। इसके सारे लच्छन झाँसी की रानी के हैं। हथेली से चींटे जे मार दे, पानी माँगो तो छोटी-सी लुटिया में डगमग-डगमग दादी के पास ले आय और बेबी को देखते ही रोवै हम भी स्कूल जाएँगे दादी। यह तो मेरी लटूरबाबा है।"

दरअसल दादी का यह एक तरह से प्रायश्चित था क्योंकि चूक उनसे यह हुई कि जब कमिटी का नश्तर लगानेवाला कम्पाउंडर साइकिल पर आया और घर-घर उसने कुंडी खटखटाकर पूछा, 'यहाँ कोई छोटा बच्चा बिना टीका लगे तो नहीं है?' दादी ने उसे दरवाज़े से ही भगा दिया। बेबी को सारे टीके अस्पताल में ही लग गये थे। मुन्नी क्योंकि बहुत कमज़ोर थी, डॉक्टरनी ने उसके जन्म पर इन्दु को समझाया कि दो महीने बाद आना, बच्चा कुछ पनप जाय तो टीका लगा दें। एक बार घर आकर इन्दु गृहस्थी में ऐसी फँसी कि दुबारा अस्पताल की कौन कहे, डॉक्टर के भी नहीं जा पायी। कवि अव्वल तो घर में रहता ही नहीं था। फिर जितने भी दिन मथुरा में रहकर उसने नौकरी की, अपनी ही धुन में जीता रहा। बच्चों के प्रति कोई दायित्व-चेतना उसमें नहीं थी।

म्युनिसपैलटी की तरफ़ से मुहल्लों में नश्तरवाला भेजा जाता था कि जो भी नवजात शिशु हों उन्हें टीका लगाया जाए। उसके पास एक मोटी-सी सलाई होती जिसमें एक सिरे पर क्रॉस जैसा चिह्न बना होता। वह बच्चे की बाँह पर उस सलाई को कसकर घुमा देता। बच्चा मर्मान्तक दर्द से चीत्कार कर उठता। माँ जल्दी से बच्चे को अन्दर ले जाकर उसके मुँह में अपना दूध लगा देती।

मुन्नी शुरू से ठुनठुन शिशु थी। कुछ-न-कुछ उसे हुआ रहता। कभी फोड़े-फुन्सी निकलते, कभी कुकुर खाँसी हो जाती, कभी बुख़ार आ जाता तो कभी नाक चल निकलती। विद्यावती ने नश्तरवाले की आवाज़ सुन हर बार यही कहा, "रहने दे बहू, छोरी का दम तो पहलेई निकरा पड़ा है, तू और दो घाव मत करवाना।"

इन्दु ने भी नादानी में यही सोचा कि टीके के बाद जो चार दिन बुखार चढ़ेगा, उसे कौन सँभालेगा।

उसकी चेचक को लेकर दादी और माँ दोनों को मलाल था।

तभी बेबी स्कूल से आ गयी।

जैसे कमरे में पूनो का चाँद निकल आया।

छोटी-सी बेबी का सौन्दर्य इन्दु से भी पाँच कदम आगे था। गोरा-उजला रंग, तीखे नाक-नक्श, अभी से लम्बे बाल, ठुमक भरी चाल और शोख़ बातें उसे हर किसी का लाड़ला बना देतीं।

काली मखमल की फ्रॉक में वह अद्भुत लग रही थी।

"इधर आ तो मेरी बिबिया। आज का सीख के आयी है, सुनें तो।" दादी ने उसे अपने से चिपटाकर पूछा।

बेबी ने बस्ता उतार, फौरन सुनाना शुरू किया-

"सडक़ बनी है लम्बी-चौड़ी

उस पर जाये मोटर दौड़ी

सब बच्चे पटरी से जाओ

बीच सडक़ पर कभी न आओ

आओगे तो दब जाओगे

चोट लगेगी पछताओगे।"

कविता के साथ बेबी के नन्हें हाथों का अभिनय बहुत सजीव था। उसकी याददाश्त इतनी तेज़ थी कि एक बार में उसे पूरी कविता या कहानी याद हो जाती। स्कूल जाने पर उसका तुतलाना कम हो गया था, बस किसी-किसी शब्द पर ज़ुबान अभी भी फिसल जाती। वह सहेलियों के साथ नाचना भी सीख गयी थी। वह अपनी दोनों हथेलियाँ जोडक़र तकिया बनाकर उन पर अपना सिर तिरछा कर टिकाती और गाती-

"मैं तो सो रही थी मुल्ली किसने बजायी।" सिखाने पर भी वह मुरली शब्द नहीं बोल पाती थी।

स्कूल से लौटकर वह देर तक दादी को बताती स्कूल में क्या हुआ।

समय के जैसे पंख लग गये थे। इधर बेबी ने कच्ची-पक्की पास की उधर मुन्नी का दाखिला हो गया। दाखिले के वक्त पूछा गया, लडक़ी का नाम क्या है? अब तक घर-परिवार में मुन्नी के सिवा और कोई नाम सोचा ही नहीं गया था। जब इन्दु के आगे दाखिले का फार्म आया उसने यों ही लिख दिया 'मनीषा।' इस प्रकार मुन्नी का नाम मनीषा दर्ज हो गया।

घर में दादी ने बहुतेरी फैल मचायी।

"जे तोय का सूझी, मुन्नी का नामकरण कर डाला। न नौबत बजी, न पंडित आया और सीधे नाम रख दिया।"

अब इन्दु भी तेज़ हो गयी थी। उसने कहा, "जब सिस्टर ने मुझसे पूछी मैं उठकर घर थोड़ी दौड़ी आती, जो मेरे मन में आया मैंने रख दिया।

"मैं तो इसे मुन्नी ही बुलाऊँगी।" दादी ने मुनादी की।

मुन्नी के चेहरे के दाग काफ़ी हद तक हल्के पड़ गये थे लेकिन उसके स्वास्थ्य की निर्बलता ज़ाहिर होती रहती। वह बहुत धीरे-धीरे शिक्षित हो रही थी।

डेज़ी कॉन्वेंट का अनुशासन कठोर था। एक दिन मुन्नी ने घर से लाया सन्तरा चार बच्चों के बीच बाँट दिया।

सबने सन्तरा खाकर छिलके इधर-उधर फेंक दिये।

तभी सिस्टर ने देख लिया और डाँट लगायी, "छिलके कहाँ डालना माँगता, डस्टबिन में। कम ऑन, पिक दीज़ अप।"

बच्चे इतनी अँग्रेज़ी समझते नहीं थे। उन्होंने अन्दाज़ लगाया और छिलके उठाकर कूड़े के डिब्बे में डाले।

मनीषा के बालमन पर शब्द ने अपनी अमिट छाप बना ली : डस्टबिन माने कूड़ेदान।

स्कूल में रोज़ कुछ-न-कुछ नया सीखने को मिलता इसीलिए मनीषा को स्कूल घर से ज्याडदा अच्छा लगने लगा। सुबह सोकर उठते ही वह स्कूल के लिए तैयार होकर बैठ जाती।

डेज़ी कॉन्वेंट में एक पंजाबी स्त्री बालो, बच्चों को घर-घर से ले जाती और छुट्टी होने पर पहुँचा जाती। वह पंजाबी मिश्रित हिन्दी बोलती। उसकी बोली बच्चों को बड़ी अनोखी लगती। वह बच्चों के नाम अपनी तरह से बोलती।

मनीषा को वह मिंशा कहतीं और प्रतिभा को तीभा। बच्चे कहते, "बालो आंटी मेरा नाम ऐसे नहीं, ऐसे बोलो।"

बालो कहती, "बेबीजी तेरा नाम ओखा, मैनूँ होवे धोखा।"

प्रतिभा और मनीषा हिन्दी, इंग्लिश, पंजाबी के तरह-तरह के शब्द सीख लेतीं।

दादाजी कहते, "मैंने लाख कही कि बच्चों को पास के वैदिक विद्यालय में भेजो पर तुम लोगों ने मेरी एक ना मानी। एक तो फीस दुगनी लगै दूसरे छोरियाँ जाने कौन-सी भाखा बोलैं हैं।"

विद्यावती कहती, "कवि हर महीना भेजता तो है रुपया। येईमारे अपनी गिरस्ती ले नायँ गयौ कि मेरे माँ-बाप अकेले हो जाएँगे।"

"जे बात नई है, उसे आजादी का चस्का पड़ गयौ है, तुम्हारे गाँधीबाबा ने सबको अराजक बना डारौ।"

"मोय नाय मिलौ गाँधीबाबा नहीं मैं बासै पूछती च्यों जी तुमने सिर्फ आदमियों को आजादी दिला दी, लुगाइयों को कब आजाद करोगे, वो तो आज भी गुलाम हैं।" विद्यावती कहती।

"क्या गुलामी कर रही हो ज़रा मैं भी सुनूँ। घर का काम बहू करै, दुकान मैं सँभारूँ, तोपे कौन-सी जिम्मेदारी है?"

"अभाल की नहीं, मैं तो पिछले सालों की बात करूँ। इत्ती जिन्दगानी दुक्खम-सुक्खम कट गयी, अपनी राजी से कछू नायँ कियौ।"

"क्या करना चाहती रही तू। कुनबे की चौधराहट तूने सँभारी, देसी घी के चुचैमा परामठे खाये, देखबे बारी न कोई सास न ननद, और का कसर रह गयी?"

"तुमने बस इत्ता ही जाना। अरे औरत रोटी और पाटी के ऊपर भी कछू चाहै कि नायँ। मर्द की गुलामी से अच्छी तो मौत होवै।"

लाला नत्थीमल वहाँ से उठकर दुकान चले जाते। उन्हें पता था यह पराधीन कौम का स्वाधीन कौम के विरुद्ध आत्र्तनाद था। वे पत्नी का मन शान्त करने के लिए स्वामी दयानन्द की पुस्तक 'सत्यार्थप्रकाश' गाँधीजी की 'आश्रम भजनावली' और रामकृष्ण परमहंस की जीवनी घर में लाते लेकिन विद्यावती इन किताबों को हाथ न लगाती। वह बेबी-मुन्नी की किताबें पढक़र तृप्त हो जाती।

एक दिन जयपुर से लालाजी के कोई मित्र मिलने आये। चलते वक्त वे बेबी और मुन्नी को एक-एक रुपया और सेलखड़ी पत्थर की बनी एक चिडिय़ा और एक मछली दे गये। दोनों बहनें बड़ी खुश हुईं। वे देर तक इन चीज़ों से खेलती रहीं। दादी ने कहा, "ला रुपया खो जाएगा, मोय दे ये, गुल्लक में डार दूँ।"

इन्दु बोली, "ये चिडिय़ा और मछली जरा हाथ से सरकने पर गिरकर टूट जाएँगी, लाओ इन्हें दीवार पर लगा दूँ।"

इन्दु ने दीवार पर कील ठोककर दोनों खिलौने लटका दिये।

बेबी और मुन्नी ने तय किया कि अपने खिलौनों के नीचे उनका नाम लिखा जाए-चिडिय़ा और मछली।

तुरन्त कोयला ढूँढ़ा गया। लोहे की कुर्सी घसीटकर दीवार पर चिडिय़ा तक बेबी पहुँची और उसने लिखा, 'चिडिय़ा।'

'मछली भी लिख दूँ," उसने मुन्नी से कहा।

"नहीं हम लिखेंगे।"

बेबी कुर्सी पर से कूदकर नीचे आ गयी। अब मुन्नी कुर्सी पर चढ़ी।

उसने टेढ़े-मेढ़े अक्षर बनाये मछल। बेबी ने सुधारा, "ल में 'आ' का डंडा लगा। अब 'ई' की मात्रा लगा।"

मुन्नी थोड़ी गड़बड़ा गयी। उसने किसी तरह ल में डंडा लगाकर ला के ऊपर ली बनायी कि उसका हाथ हिल गया और मछली फटाक से नीचे गिर गयी।

बेबी बोली, "ओह मछली तो टूट गयी।"

शोर सुनकर इन्दु आयी। उसने देखा मछली टूटी, ज़मीन पर पड़ी है। उसने एक-एक तमाचा दोनों को मारा, "जब देखो तब उत्पात मचाए रहती हैं। देखना दादाजी कितना पीटेंगे।"

दोनों सहम गयीं।

शाम को दुकान से लौटकर दादाजी की नज़र दीवार पर गयी, "हैं मछली कहाँ गयी?" उन्होंने पूछा।

मुन्नी ने डरते-डरते कहा, "दादाजी हम मछली का नाम लिख रहे थे। जैसे ही हमने 'ला' पर टोपी पहनाई, मछली नीचे गिर गयी।"

ताज्जुब दादाजी ने उसे डाँटा नहीं। सिर्फ कहा, "चलो स्लेट पर बीस बार ली लिखकर दिखाओ।

भगवती के स्कूल में पुस्तकालय शुरू करने के उद्देश्य से नयी किताबें मँगाई गयी थीं। उनमें वीर बालक, पन्ना धाय, सत्य हरिश्चन्द्र जैसी शिक्षाप्रद, मोटे टाइपवाली पतली पुस्तिकाएँ ज्यायदा थीं फिर भी अन्य पुस्तकों में प्रेमचन्द की कहानियाँ और उपन्यास थे, प्रसाद और माखनलाल चतुर्वेदी के काव्य-संकलन थे। वक्त निकालकर भगवती स्कूल में ही किताबें पढ़ती। कभी किताब ख़त्म न होती और कहानी रोचक लगती तो वह किताब घर ले आती। कोई कहानी अच्छी लगती तो वह माँ और भाभी को सुनाती। वे आँखें फाड़े सुनतीं। उन्हें विस्मय होता कि प्रेमचन्द को लोगों के घरों का अन्दरूनी हाल कैसे पता चल गया है। 'बड़े घर की बेटी' कहानी विद्यावती को बहुत पसन्द आयी जबकि इन्दु को 'नमक का दारोगा' और 'घासवाली' अच्छी लगीं। अक्सर किताबों को लेकर घर में खींचातानी मचती कौन पहले पढ़े। भगवती कहती, "नयी किताब है, कल ही लौटानी है, प्रिंसिपल से माँगकर लायी हूँ।"

विद्यावती उसाँस भरती, "किस्से-कहानी में भी औरतों की दुर्दशा ही बताई जावै। कोई जे नही बताता कि सुधरेगी कैसे।"

दादाजी बेटी से कहते, "ये तूने अच्छा चस्का लगा दिया सबको। आधी रात तक बिजली फुँकै हैं।"

नानकनगर में बिजली की लाइन आ जाने से घर में बिजली का उजाला हो गया था। सभी को आराम हो गया था हालाँकि लालाजी की मितव्ययिता के चलते सभी जगह पन्द्रह और पच्चीस पावर के बल्ब लगाये गये थे। सिर्फ बाहरी बैठक में चालीस पावर का बल्ब लगा था।

अब दादाजी को चिल्लाने का मौका तब मिलता जब घर के किसी कमरे में बिजली खुली दिख जाती, "दिन-रात लट्टू फुँक रहे हैं, मेरे रुपये का चूरन बना जा रहा है, बहू भागकर बत्ती बन्द कर।"

अगर रात में वे चौके में बिजली जली देखते तो कहते, "इत्ती अबेर ब्यालू बनाने की क्या ज़रूरत है? पहले सई साँझ ब्यालू बना के रखती थी कि नहीं। रुपये का तो भुस्स उड़ गया।"

विद्यावती समझाती, "घर में तीन-तीन कमानेवाले हैं, एक तुम्हारा ही तो खर्च नहीं हो रहा।"

लाला नत्थीमल कहते, "बेटे-बेटी की कमाई मेरे जीते-जी तो खर्चियो मति। ये का कमायेंगे जो मैंने कमाये हैं। फिर भी रुपया देख के बरतो।"

एक शाम लाला नत्थीमल घर में थे कि पुलिस विभाग का एक आदमी आया। उसने बैठते ही लालाजी से सवाल किया-

"आपका नाम?"

"आपकी पत्नी का नाम?"

"मकान का नम्बर?"

"कितने बच्चे हैं?"

लालाजी ने अपनी तेज़ नज़र से उसे देखा, "क्यों जी ये सब पूछबे का कौन मतलब है? हम तुम्हें क्यों बताएँ हम कौन हैं?" उस आदमी ने अपना पहचान-पत्र दिखाया। उस पर पुलिस विभाग का ठप्पा लगा था और उस आदमी का नाम और फोटो था। उसने कविमोहन के बारे में पूछताछ करनी शुरू की। उसे सबूत की तलाश थी।

लालाजी आशंकित हो गये। कहीं किसी गलत काम में कवि पकड़ा तो नहीं गया।

उन्होंने अन्दर जाकर कागज़ टटोले। विद्यावती ने पूछा, "कौन आया है?"

"विपदा आयी है और का?" उन्होंने कहा और आलमारी की दराज़ में खखोरते रहे। आखिर उनके हाथ पुराना राशनकार्ड लगा जिसमें बच्चों के नाम लिखे थे।

हिम्मत कर उन्होंने सबइंस्पेक्टर से पूछा, "हमारे लडक़ा पे कोई मुसीबत तो नहीं आयी है?"

"नहीं जी, ये तो सरकारी नौकरी का मामला दीखे है।"

अब जाकर लाला नत्थीमल सहज हुए। उन्होंने कहा, "बैठो, पानी-वानी पिओ।"

"लडक़े की पोस्टिंग हो जाने दीजिए, मिठाई खाने आऊँगा।" उसने कहा और चला गया।

उस दिन लालाजी रह-रहकर कवि को याद करते रहे, "ऐसा दिल्लीवारा बनौ है कि हमें तो कछू समझै ही नायँ। सरकारी नौकरी के लिए अर्जी लगायी है, हमें कछू खबर नईं। पुलिस पूछताछ करेगी हमें पता ही नहीं। न चिट्ठी न पतरी, बस मुँह उठाकर दिल्ली चल दिये।"

ख़ुशी की एक क्षीण लहर इन्दु के मुँह पर आयी और ग़ायब हो गयी। उसने सोचा, 'भले ही यह लाट कलट्टर हो जायँ हमें तो याही नरक में सडऩा है।'

पिछले काफी समय से इन्दु का जी उखड़ा-उखड़ा रहता था। उसे लगता जैसे वह जमुना की मझधार में फँसी है उसके लिए न कूल है न किनारा। पति-रूपी पतवार उसके हाथ से छूटी जा रही है। अल्लीपार ससुराल का जाल-जंजाल है तो पल्लीपार मायके का मृगजल। माँ-बाप के मर जाने के बाद मायके में भाइयों की जगह भाभियों का राज था। वहाँ उसकी रसाई मुश्किल थी। ससुराल में जान-खपाई के सिवा कुछ नहीं था। वह सोचती क्या स्त्री के लिए तीसरी कोई जगह नहीं होती जहाँ वह जाकर अपना मन हलका कर ले। उसकी सहेलियों की संख्या भी नगण्य थी। ले-देकर उमा थी। वह कभी आ जाती तो दोनों सखियाँ ऊपर कवि के कमरे में जा बैठतीं। दोनों की समस्या विलोम थी। उमा अपने पति दीपक बाबू के प्रेमातिरेक से घबराई रहती तो इन्दु विरहातिरेक से। जब

बच्चे आसपास नहीं होते उमा बताती, "मैं तो रतजगों से तंग आ गयी हूँ। दिन में बच्चे नहीं सोने देते, रात को ये। ऐसा लगता है जब से मेरा ब्याह हुआ है मैं सोई ही नहीं हूँ।"

इन्दु कहती, "सोने का मसाला तुम्हारे पास रहता है, सेवन करके सो जाया करो।"

"इनकी धींगामुश्ती बन्द हो तो सोऊँ। सारे चौरासी आसन करने होते हैं इन्हें। किसी दिन बिरजो या माधो मेरे से चिपट जाते हैं कि मम्मा आज तुम्हारे पास सोएँगे तो ये बच्चों को ऐसी डाँट लगाते हैं कि बेचारे रुआँसे हो जाते हैं।"

इन्दु गहरी साँस भरती, "लगता है मेरा ब्याह तो बच्चों के साथ सोने को ही हुआ था।"

कभी इन्दु चाय बनाने नीचे आती तो विद्यावती उसे घूरकर देखती, फिर घुड़की देती, "ऊपर बैठी क्या कर रही हो दोनों जनी। इन्दु उमा को अब घर जाय लेन दे, बाकी अम्माजी परेशान हो रही होंगी।"

इन्दु का मुँह बन जाता। वह मन-ही-मन बड़बड़ाती, "उसकी अम्माजी तो नहीं पर आप जरूर परेशान हो रही हैं।"

विद्यावती को शक़ रहता कि ज़रूर दोनों बहुएँ मिलकर अपनी-अपनी सास की निन्दा कर रही होंगी। एक बात और यह कि उमा की ससुराल बहुत मालदार थी। वह हमेशा कोई-न-कोई नया गहना पहनकर आती जबकि इन्दु के समस्त गहने पुराने और पारम्परिक थे, वे भी ससुर की तिजोरी में रखे हुए थे। वह केवल गले में पतली-सी लड़ और कानों में हल्के टॉप्स पहने रहती। उसके ब्याह में बड़े सुन्दर मीनाकारी छन आये थे जो सास ने पहले ही हफ्ते उतरवाकर रखवा लिये कि कहीं इनका पेच खुल गया तो कलाई से गिर जाएँगे। सास को लगता उमा उनकी बहू को बिगाड़ न दे।

उमा थोड़ी दबंग थी। वह किसी की ज्यायदा परवाह नहीं करती। जाते समय इन्दु से कहती, "मैं दो बार आ चुकी अब तुम्हारी बारी है चक्कर लगाने की।"

इन्दु डरकर अपनी सास का मुँह ताकती।

उमा कहती, "जीजी दो घंटे बच्चे सँभाल लेंगी और क्या!"

उसके जाने के बाद विद्यावती कहती, "ये लोहेवाली की बहू बड़ी जबर है। सयाने आदमी का कोई लिहाज नहीं याकी आँख में।"

"तभी तो जरा-सी आजादी मिली हुई है।" इन्दु मुँह-ही-मुँह में बड़बड़ाती। लिहाज करके उसने अपनी जिन्दगी सी क्लास क़ैदी की बना रखी थी।

>>पीछे>> >>आगे>>

शीर्ष पर जाएँ

दुक्खम्-सुक्खम्

ममता कालिया

कुहू ने दस दिन की छुट्टी ली थी, उसके बाद दीपावली अवकाश हो जाना था। कविमोहन को ये दिन पहाड़ से प्रतीत हुए। वह बार-बार कॉलेज की पत्रपेटी देखता और निराश होता। मन में सोचता, वह मुझे क्यों लिखेगी। मैंने क्या कसर छोड़ी उसका दिल तोडऩे में। कभी सोचता उसके घर जाकर पिताजी की तबियत पूछे। फिर अपनी मूर्खता पर ख़ुद हैरान होता।

अन्ततः एक दिन उसके नाम का एक लिफ़ाफ़ा पत्रपेटी में दिखा। कुहू ने लिफ़ाफे पर अपना नाम नहीं लिखा था लेकिन कवि उसकी लिखावट पहचानता था। उसने लपककर पत्र उठाकर जेब में रखा और लायब्रेरी की तरफ़ चल दिया। वह निपट एकान्त में इसे पढऩा चाहता था। यह पत्र उसके ख़त से भी छोटा था। कवि ने पढ़ा-

डियर कवि,

तुम इतनी सफाई क्यों देने लगे जबकि हमारे बीच कुछ भी नहीं था। तुम्हें देखकर तो मुझे यह लगता था कि तुम विवाहित ही नहीं विधुर भी हो। ब्लडप्रेशर की तरह लवप्रेशर का भी फौरन पता चल जाता है।

इन बातों पर मैं कोई तमाशा नहीं चाहती। मेरी शादी की चिन्ता करनेवाले कई लोग हैं। एलियट के 'वेस्टलैंड' की अन्तिम पंक्तियाँ मुझे उदास करनेवाली थीं पर मैंने तुरन्त बर्नर्ड शॉ पढऩा शुरू कर दिया, अच्छा लग रहा है।

-कुहू

कवि को 'वेस्टलैंड' की अन्तिम पंक्तियाँ याद आ गयीं-'दिस इज़ द वे द वर्ल्ड एंड्ज़, नॉट विद ए बैंग बट विद ए व्हिम्पर।'

इस ख़त से कुहेली की बहादुरी के सिवा अन्य किसी भाव का पता नहीं चल रहा था।

कवि को एक निसंग-सा सन्तोष मिला। लगभग ऐसा स्वभाव उसका भी था। जीवन की समस्याओं से बिदककर, वह भी उसी की तरह साहित्य में मुँह छुपाता।

दो बार और चिट्ठी पढऩे के बाद कवि ने उसे जेब के हवाले किया। लायब्रेरी आने का औचित्य सिद्ध करने के लिए वह अख़बार पलटने लगा। तभी 'स्टेट्समैन' में छपे एक विज्ञापन पर उसकी नज़र पड़ी। यह यूनियन पब्लिक सर्विस कमिशन का ऑल इंडिया रेडियो के लिए कार्यक्रम निष्पादक पद के लिए विज्ञापन था जिसमें दी गयी अर्हताएँ कवि के उपयुक्त थीं। पद स्थायी था, वेतनमान अच्छा था और नियुक्ति देश के किसी भी नगर में हो सकती थी। कवि को लगा जैसे उसके हाथ मुक्तिमार्ग आ गया। अब तक उसने नौकरी बदलने के बारे में सोचा नहीं था किन्तु बदले हालात में यह विकल्प उसे कई क़िस्म के सन्तापों से त्राण दिला सकता था। उसे लगा जैसे वह मथुरा से निकलने के लिए बेचैन था वैसे ही दिल्ली से निकलने के लिए भी। वहीं लायब्रेरी में बैठकर उसने अपने आवेदन-पत्र का प्रारूप तैयार किया और घर जाकर उसे अन्तिम रूप देने का निश्चय कर लिया।

आज उसने अतिरिक्त उत्साह से क्लास में पढ़ाया। कैंटीन का रोज़ का खाना आज कुछ बेहतर लगा। कॉलेज के बाद वह सीधा अपने कमरे पर गया। अपने प्रमाण-पत्र और अंक-पत्र सहेजते समय उसे ध्यान आया कि उसे आवेदन-पत्र में नगर के दो व्यक्तियों का सन्दर्भ देना है जो उसे जानते हों। शाम पाँच बजे उसे फिर भूख लग आयी। ऐसा बहुत दिनों बाद हुआ। कई दिनों से उसे भूख लगनी बन्द हो गयी थी। वह गली पराँठेवाली में चला गया। पराँठे के साथ काशीफल की सूखी और आलू की रसेदार सब्ज़ी खाते हुए उसे इनमें पड़ी मेथी और सौंफ की ख़ुशबू उठाकर मथुरा के पुराने मकान सतघड़े ले गयी जहाँ जीजी के हाथ की बनी ब्यालू में ये सब्जियाँ ज़रूर होती थीं। इस वक्त क्या कर रहे होंगे घर के लोग उसने सोचा।

फिलहाल उसे इंटरव्यू की तैयारी करनी थी। मासमीडिया और प्रसारण पर कुछ पुस्तकें पढऩी थीं और अपना हिन्दी साहित्य का ज्ञान अद्यतन करना था। साहित्य, संस्कृति और कला में रुचि इस पद के लिए अनिवार्य अर्हता थी। आवेदन-पत्र में जिन दो व्यक्तियों के नामों का सन्दर्भ देना था, उनसे इस बात की अनुमति भी लेनी थी। कवि चाहता तो कॉलेज के प्रिंसिपल का हवाला दे सकता था पर उसे यह ठीक नहीं लगा। एक तो वह कोई साहित्यप्रेमी व्यक्ति नहीं था दूसरे कवि कॉलेज में, अपने इस नवीन अभियान की गोपनीयता बनाए रखना चाहता था। कुछ देर सोच-विचारकर उसे प्रेमनाथ मिश्र का ध्यान आया। प्रेमनाथ मिश्र हिन्दी के चर्चित और प्रतिष्ठित रचनाकार थे। एक बार 'अमर उजाला' अख़बार के लिए कवि ने उनकी इंटरव्यू की थी। तभी का परिचय था। वैसे कवि उनकी कई पुस्तकें पढ़ चुका था। उनकी प्रसिद्धि और प्रतिष्ठा का कारण उसकी समझ से बाहर था क्योंकि वे पौराणिक प्रतीकों के माध्यम से कथा का ताना-बाना तैयार करते थे। कवि को लगता कि साहित्यकार को अपनी बात प्रत्यक्ष और प्रामाणिक रूप से लिखनी चाहिए , प्रतीकों से बात अकारण अस्पष्ट हो जाती है। अमर उजाला' के लिए इंटरव्यू करते समय कवि ने यह सवाल मिश्र जी से किया था जिसका उन्होंने काफी पेचीदा जवाब दिया। लेकिन मिश्र जी में मित्र भाव का अभाव नहीं था। अगर उनकी बातें सुनने का धैर्य किसी में हो तो वह उनका क़रीबी बन जाता।

कवि आवेदन-पत्र में सन्दर्भ सूत्र के रूप में प्रेमनाथ मिश्र जी का नाम देना चाहता था। एक दिन वह उनके घर गया।

मिश्र जी तपाक से मिले। जोश में आवाज़ लगायी, "शारदा दो चाय लाना।"

कवि को मिश्र जी के स्वभाव की बुलन्दी अच्छी लगती थी हालाँकि वे उसके प्रिय रचनाकार नहीं थे।

थोड़ी देर में उनकी पत्नी कमरे में आयीं। उनके चेहरे की चिड़चिड़ाहट से स्पष्ट था कि वे पति का फरमान सुन चुकी हैं, "अब इस वक्त चाय। जब देखो तब चाय! यह खाने का समय है या चाय का?"

"समय तो खाने का ही है पर चाय से कोई अनाचार नहीं हो जाएगा।"

कवि को अपनी उपस्थिति अटपटी लग रही थी मानो उसी की वजह से चाय की चर्चा चली। उसने कहा, "कोई सदाचार भी नहीं हो जाएगा।"

"कवि बाबू हमारी पत्नी चाय बहुत अच्छी बनाती हैं, देखना दो मिनट में भिजवाएँगी।"

शारदा का गुस्सा थोड़ा उतरा। वह मुडक़र सीढ़ी उतरने लगी तो मिश्रजी ने कहा, "शारदा जब चाय बनाओ, थोड़ी-सी मुहब्बत भी उसमें मिला देना।"

शारदा फिर तन गयीं। सीढ़ी से ही चिचियाकर बोलीं, "और नहीं तो क्या मैं नफ़रत मिलाकर बनाती हूँ।"

मिश्रजी ने कोई उत्तर नहीं दिया। वे कवि से पूछने लगे, इन दिनों उसने क्या कुछ लिखा है।

कवि ने इधर गम्भीर कविताएँ न लिखकर कुछ तुक्तक लिखे थे। मित्र-मंडली में, छोटी कवि गोष्ठियों में, जहाँ भी ये तुक्तक उसने सुनाए, काफी पसन्द किये गये थे। उसने बताया।

"सुनाओ, सुनाओ, एकाध बानगी देखें।"

कवि ने सबसे पहला तुक्तक सुनाया-

"तीन गुण हैं विशेष कागज़ के फूल में

एक तो वे उगते नहीं हैं कभी धूल में

दूजे झड़ते नहीं, काँटे गड़ते नहीं

तीजे, आप चाहे उन्हें लगा लें बबूल में।"

"वाह अच्छा व्यंग्य है। मैंने भी आज एक चैप्टर ख़त्म किया है। खाने के बाद तुम्हें सुनाऊँगा।" मिश्रजी ने कहा।

उनकी यह पुरानी आदत थी कि नवोदित रचनाकार से उसकी स्फुट रचना सुनकर अपनी लम्बी-सी रचना उसे सुना डालते। कवि ने कहा वह अगली बार सुन लेगा।

मिश्रजी ने अपना नाम सन्दर्भ में देने की अनुमति सहर्ष दे डाली। बल्कि उन्होंने कहा वे सूचना प्रसारण मन्त्रालय में एक-दो लोगों को जानते हैं, उनसे कहलवा देंगे। उनकी आलमारी में एक अच्छी पुस्तक थी बी.बी.सी. का इतिहास। लेकिन वे उसे देने में अनिच्छुक थे। बोले, "तुम्हें जो भी पढऩा है चार बजे यहीं आकर पढ़ लो। दरअसल मेरी बुक शेल्फ़ में से एक भी किताब अगर निकल जाती है तो मेरे प्राण ऐसे विकल हो जाते हैं जैसे मेरा बच्चा

बाहर चला गया हो।" कवि ने पुस्तक उलट-पुलटकर देखी। उसने तय किया दरियागंज की पुरानी दुकानों में इस पुस्तक की तलाश करेगा।

उसने चलने की इजाज़त माँगी। मिश्रजी साथ उठ खड़े हुए।

"आप बैठें, मैं चला जाऊँगा।" कवि ने कहा।

"सिगरेट ख़त्म हो गये हैं; फिर सारी शाम मैं लिखता रहा हूँ, बेहद थक गया हूँ। थोड़ा घूमना हो जाएगा।"

हालाँकि सिगरेट पहले चौराहे पर ही मिल रही थी, मिश्र जी तीसरे चौराहे तक उसके साथ गये। वहाँ से कवि को बस मिल गयी।

दूसरे सन्दर्भ के लिए कवि को दूर नहीं जाना पड़ा। कॉफी हाउस में हर शाम उसने लेखकों, पत्रकारों की टोली देखी थी। उसे पता था वहाँ वरिष्ठ से लेकर कनिष्ठ साहित्यकार तक इकट्ठे होते हैं। एक व्यक्ति के व्यक्तित्व से वह कई बार आकृष्ट हुआ। उसके दोस्त अपूर्व ने बताया ये नाटककार विष्णु प्रभाकर हैं। इनके नाटक रेडियो से प्रसारित होते हैं। कवि को उनकी सौम्य सुन्दर मुखाकृति में सज्जनता का आश्वासन मिला। इन्हें उसने कई बार अपने मोहल्ले कूचापातीराम से गुज़रते देखा था। झकाझक सफेद खादी का कुरता-पाजामा पहने वे तेज़ क़दमों से पूरी गली पार कर जाते।

कवि ने खुद आगे बढक़र उनसे परिचय किया, अपने बारे में बताया और कहा, "मैं तो आपको रोज़ देखता हूँ आपने भी मुझे यहाँ कई बार देखा होगा।

"मैंने आपकी रचनाएँ पढ़ी और सुनी हैं। मैंने रेडियो की नौकरी के लिए आवेदन किया है। आप इजाज़त दें तो मैं आपका नाम सन्दर्भ के तौर पर दे दूँ।"

"मैं तो आपको जानता नहीं।" उनकी आवाज़ शान्त और शालीन थी।

"जानने की यह एक शुरुआत हो सकती है। लेखन की पायदान में मैं पहली सीढ़ी चढ़ रहा हूँ जबकि आप शीर्ष पर हैं।"

"लेखन में शीर्ष इतना शीघ्र नहीं मिला करता।"

"आप इजाज़त दें तो अपनी रचनाएँ आपको दिखा सकता हूँ।"

सहज परिचय विकसित होने में ज्यादा समय नहीं लगा। कवि ने उनका नाम सन्दर्भसूत्र में लिख दिया, कुंडेवालान वाले पते सहित।

विष्णु प्रभाकर कम बोलकर भी अपनी मुस्कान से सम्प्रेषण बनाए रखते। एक ख़ास बात यह थी कि मिश्रजी की तरह वे अपनी रचनाएँ सुनाने के लिए कभी तत्पर नहीं लगे। कॉफी हाउस में वे इत्मीनान से बैठते, उनकी मेज़ मित्र-मंडली से घिरी रहती।

अगले मसरूफियत के दिन थे। अध्यापन के साथ अध्ययन और चिन्तन के साथ मनन जुड़ गया। कविमोहन ने दरियागंज और कनॉटप्लेस के बुकस्टोर एक कर डाले, उसने इतना पढ़ा, जाना और गुना कि इंटरव्यू में पेनेल को लगा जैसे यह आदमी सूचना प्रसारण का चम्मच अपने मुँह में रखकर ही पैदा हुआ है। बाकी हिन्दी और इंग्लिश का ज्ञान तो अपनी जगह था ही। नतीजा यह हुआ कि यू.पी.एस.सी. की चयन-तालिका में कविमोहन का नाम सर्वोच्च स्थान पर रहा।

जब उसने कॉलेज में तीन महीने का नोटिस देते हुए प्रिंसिपल से कहा कि यदि वे उसे एक माह में ही कार्ययुक्त कर देंगे तो वह आभारी होगा, प्रिंसिपल उसका अनुरोध टाल न सके। कवि का अब तक का रिकार्ड ए-वन रहा था। उसका विदाई समारोह वहीं स्टाफ़-रूम में सम्पन्न हो गया जिसमें प्रिंसिपल भी शरीक़ हुए। इस दिन कुहू ने एक गीत गाया-

"सखि वे मुझसे कहकर जाते

कह तो क्या वे मुझको अपनी पथबाधा ही पाते,

सखि वे मुझसे कहकर जाते।"

गीत का स्वर इतना आत्र्तनाद भरा था कि स्टाफ़-रूम में सबकी आँखें भर आयीं। कवि को लगा उसकी कई पसलियाँ चट-चट टूट रही हैं। अब से वह आधी पसलियों के साथ ही जिन्दा रहेगा। यह अधूरी कामना मद्धे सुलगते अंगारे की तरह उसे जीवन भर सुलगाएगी।

कवि को यह प्रश्न विदग्ध करता रहा कि जो लडक़ी अपने पत्र में इतनी सूरमा बनी थी, विदाई समारोह में कैसे इतनी कच्ची और कमज़ोर बन गयी। उन दोनों की दोस्ती पूरे कॉलेज पर उजागर थी। उतना ही उजागर था पिछले एक माह का मौन। कवि कभी कोई सामान्य-सी बात भी कहता, कुहू ऐसे मुँह फेर लेती जैसे उसने सुना ही नहीं। साथी प्राध्यापक इस स्थिति का आनन्द लेते रहे।

कवि को अपमानित होना महसूस होता रहा। एक तरफ़ आर्टस एंड कॉमर्स कॉलेज का बनिया चरित्र उसे असन्तुष्ट करता दूसरी तरफ़ कुहू की उपेक्षा। इस कॉलेज की एक ख़ासियत यह थी कि शादी-ब्याह के दिनों में कभी भी उसके भवन और परिसर को लगन के लिए किराये पर उठा दिया जाता। यह भी नहीं देखा जाता कि कॉलेज में छुट्टी है अथवा नहीं। उन दिनों में कॉलेज में अघोषित अवकाश रखा जाता। कविमोहन को यह बात विचित्र लगती कि अकारण विद्यार्थियों की पढ़ाई का हर्ज किया जाए जबकि परीक्षा सिर पर हो। ऊपर से कुहू का व्यवहार! कुहू ने उससे तो कहा था कि वह कोई तमाशा नहीं चाहती पर वह आये दिन तमाशा ही खड़ा कर देती। मसलन एक बार छात्र उसके पीछे पड़ गये कि मैम आप हमें ब्राउनिंग का 'पॉरफीरियाज़ लवर' समझा दें। उसने कहा, यह कविता पुरुष के दृष्टिकोण से लिखी गयी है इसलिए तुम इसे किसी पुरुष प्राध्यापक से ही समझो जैसे कविमोहन अग्रवाल। छात्र उसे छोड़ कविमोहन के पीछे पड़ गये। कवि कविता पढ़ाते हुए भावुक हो गया। छात्रों के एक झुंड ने उसे टोककर पूछा, "सर क्या आप कभी प्रेम के अनुभव से गुज़रे हैं।"

कवि प्रश्न पर अचकचा गया। छात्रों के सम्मुख न वह सच बोल सकता था न झूठ। सबसे बेढब बात यह थी कि ये विद्यार्थी भी उसे बैचलर समझकर छेड़ रहे थे। सबके बीच कुहू से उसकी निकटता प्रकट रही थी। आजकल वे

इकट्ठे नहीं दिखते थे, इसे भी लोग रोमांटिक रूठा-रूठी मान रहे थे। रॉबर्ट ब्राउनिंग लवपोयट के रूप में विद्यार्थियों का चहेता कवि था। उसकी तीन यादगार कविताएँ बी.ए. के पाठ्यक्रम में थीं, 'प्रॉस्पाइस', 'पॉरफीरियाज़ लवर' और 'द लास्ट राइड टुगैदर'। विद्यार्थी 'प्रॉस्पाइस' जैसी महत्त्वपूर्ण कविता को तो दरगुज़र करते किन्तु 'पॉरफीरियाज़' लवर और 'द लास्ट राइड टुगेदर' पर आकर ठिठक जाते। जैसा कविता के साथ होता है, हर विद्यार्थी इन्हें अपने तरीके से आत्मसात् करता। कोई इन्हें आवेग की अनुभूति मानता तो कोई संवेग की। किसी को ये रुग्ण मानसिकता की प्रतीक लगतीं तो किसी को उद्दाम प्रेम की अभिव्यक्ति। इन कविताओं की क़ामयाबी का यही राज़ था कि इनके बहुल पाठ सम्भव थे।

फेयरवेल पार्टी के बाद विदा लेने का कार्यक्रम देर तक चला। कविमोहन जो टी-शर्ट पहने हुए था, उसे उसके साथी शिक्षकों और विद्यार्थियों ने ग्रैफिटी लिख-लिखकर नीला-लाल कर दिया। वी लव यू, वी विल मिस यू, ओ रेवुआर, टिल वी मीट अगेन, यार दस्वेदानिया और ख़ुदा हाफिज़ बार-बार लिखा गया। जब टी-शर्ट में एक भी इंच जगह नहीं बची कुहू अपना बॉलपेन लेकर आगे बढ़ी और समस्त ग्रैफिटी के ऊपर सुपर इम्पोज़ कर उसने लिखा, 'आय विल नेवर मिस यू-कुहू। कवि के सीने पर जैसे किसी ने कटार से गोद दिया। वह पसीने से नहा गया। उसने कुहू की डायरी उठाकर उसमें लिखा, 'बट आय विल ऑलवेज़ मिस यू (लेकिन तुम मुझे हरदम याद आओगी)। विद्यार्थी कवि का पता जानना चाहते थे।

कवि ने कहा, "इस वक्त मैं त्रिशंकु हूँ। मेरा न कोई पता है, न ठिकाना। मुझे एक महीना दो तो मैं अपने पैर जमाकर बात करूँ।"

तीन साल पुरानी जगह छोडऩा आसान नहीं था। आखिरी पचास कदम चलते हुए कवि को लगा कि वह इन काई लगी दीवारों, झाड़-झंखाड़ पेड़ों, रास्ते की बजरी और ज़ंग लगे फाटक से अभिन्न रूप से जुड़ गया था। इनका सगा सौन्दर्य वह आज पहली बार महसूस कर रहा था। दरियागंज की मुख्य सडक़ पर उसका बस अड्डा था। वहाँ रोज़ की तरह क़तार की जगह बेतरतीब भीड़ थी। इस एक अड्डे पर सात-आठ बसों का ठहराव था।

बारह नम्बर बस काफी देर तक नहीं आयी। कवि रेलिंग से टिककर अधबैठा-सा था कि सामने के बस अड्डे पर कुहू दिखी। दोनों ने दूर से एक-दूसरे को भर नज़र देखा। कुहू ने उसे पास आने का इशारा किया। एक बार कवि को यक़ीन ही नहीं हुआ कि यह इशारा उसके लिए है। उसके आसपास उचक-उचककर बसों के नम्बर पढ़ती निरपेक्ष भीड़ थी।

कुहू ने एक बार और हाथ हिलाया। कवि सडक़ पार कर सामनेवाले बस अड्डे पर गया।

"एक बात कहनी थी।" कुहू ने कहा।

कवि ने एक नज़र अपने स्टैंड पर आ लगी नम्बर बारह को देखा। कुहू बस अड्डे से हटकर फुटपाथ पर खड़ी थी। कवि ने गुज़रता हुआ स्कूटर रोका और दोनों उसमें बैठ गये।

कवि ने जबरन मुस्कराकर कहा, "द लास्ट राइड टुगैदर।"

कुहू के होंठ भिंचे हुए थे। वह नहीं मुस्करायी।

स्कूटरवाले ने खीझकर कहा, "बौजी जाना कित्थे है, दस्सो ना।"

"घर चलें?" कवि ने कुहू से पूछा।

उसने इनकार से सिर हिलाया।

"मन्दिर मार्ग।" कवि ने स्कूटरवाले से कहा।

बिड़ला मन्दिर में इस वक्त उछीड़ थी। सुबह के भक्त जा चुके थे और शाम के, अभी आये नहीं थे। करीने से सँवरे लॉन में माली पौधों की देखभाल में लगे थे।

वे दोनों दक्षिणी कोने पर अशोक की क़तारों के पार बरगदवाले चबूतरे पर बैठ गये।

"क्या तुम मेरी वजह से कॉलेज छोडक़र जा रहे हो?" कुहू ने बैठते ही पूछा।

"नहीं तो।"

"तुम्हारे नहीं कहने से क्या होता है। सब कॉलेज में यही कह रहे हैं।"

"किसी के कहने से कोई बात सत्य नहीं हो जाती।"

कुहू ने डायरी और पर्स पास में रखकर रूमाल से अपनी आँखें पोंछी।

कवि ने उसकी तरफ़ ध्यान दिया।

वह हँसने लगी। एक सायास, संक्षिप्त-सी हँसी, "रो नहीं रही हूँ, आँखें धुँधला रही हैं। लगता है रात में पढऩा बन्द करना पड़ेगा।"

"क्या पढ़ती रहती हो?"

"कुछ भी। कल तो मैं तोरुदत्त पढ़ती रही।"

कवि चुप, उसे देखता रहा, "बस यही बात करनी थी?"

यकायक कुहू विह्वल हो आयी, "नहीं तुम्हें बताना पड़ेगा, तुमने जॉब क्यों छोड़ा? जॉब क्या तुम तो प्रोफेशन ही बदल रहे हो! ऐसा कहीं होता है!"

"प्राइवेट कॉलेज का जॉब भी क्या है?"

"तुम्हारा मतलब है इसमें सुरक्षा नहीं है।"

"बहुत-सी चीज़ें इसमें नहीं हैं। इस नौकरी की कोई आचारसंहिता नहीं है। छात्रों के साथ रहकर सन्तोष मिलता है पर इसके अलावा अध्यापन में ज्यादा कुछ नहीं है।"

कुहू के मन में आया वह कहीं गिनती में ही नहीं है। कवि ने जैसे उसके मन की वह इबारत पढ़ ली।

"एक तुम थीं तो मन लगा रहता था। मैंने तुम्हें भी खो दिया। अब मेरे लिए वहाँ कुछ नहीं है।"

"मैं तो वहीं हूँ।"

"मुझे तुमने अपनी जिन्दगी से खारिज बेदख़ल कर दिया।"

"वह ख़त मैंने गुस्से में लिखा था। तुमने अपने ख़त में जो तीन शब्द काटे थे, मुझे तकलीफ़ पहुँचाने के लिए काटे थे न।"

कवि ने याद किया वे तीन शब्द थे मेरी, दोस्त, तुम्हारा।

उसे हल्की-सी ख़ुशी भी हुई। उसने कहा, "ये शब्द नहीं थे तीन क़दम थे जो मैं पीछे हटा रहा था।"

"क्यों? किससे पूछकर? मैं तो तुम्हारे सामने सिन्दूर की डिब्बी लेकर नहीं खड़ी थी कि मेरी मांग भर दो।"

"मेरी नैतिकता का तकाज़ा था कि तुम्हें बताता।"

"और तब कहाँ गयी थी तुम्हारी नैतिकता जब इतना वक्त हमने साथ गुज़ारा। दोस्ती की तुम्हारे लिए कोई क़ीमत नहीं!"

कवि ने कुहू के कन्धे पर हल्का-सा हाथ रखा। कुहू ने झटक दिया।

"सच मानो, तुम मेरी सबसे अच्छी दोस्त रही हो। तुम्हारे सहारे मैं इस बौड़म शहर में इतना रह लिया। दोस्ती की भी माँग थी कि मैं तुम्हें अपने बारे में बताता। अकेले मैं इतना बोझ कैसे उठाता?"

मन्दिर में भीड़ आना शुरू हो रही थी। वे वहाँ से उठ लिये।

वापसी में कवि ने कुहू को बंगाली मार्केट पर उतारा।

"घर चलो।" कुहू ने कहा।

"कई काम हैं, फिर कभी।" कवि ने विदा ली।

अब घंटों के चिन्तन के पश्चात् कवि को लगा कि कुहू के साथ उसके सम्बन्ध का व्याकरण तो ठीक हो गया लेकिन अन्तर्कथा अभी भी हिली हुई है। उसने अपनी डायरी में लिखा-

"इस सारे सुख को नाम नहीं देंगे हम

छोर से छोर तक माप कर

यह नहीं कहेंगे हम, इतना है हमसे

सिर्फ यह अहसास हमें मुक्त करता रहेगा

और हम अपनी बनायी जेलों से बाहर आ जाएँगे।"

लेकिन कागज़ पर कलम रखते ही उसकी अभिव्यक्ति रोमांटिक होने लगी। उसे लगा स्त्रियों के स्वभाव में बहुत विसंगतियाँ होती हैं। कुहू ने ख़ुद उससे अनबोला किया और ख़ुद आकर मिट्ठी कर ली। वह क्या मिट्टी का माधो है जो हर हाल में ख़ुश है। अगर कुहू उसे याचक की भूमिका में देखना चाहती है तो निराश होगी। हो सकता है यह उनकी आज लास्ट राइड टुगैदर ही रही हो। एक बार वह नयी नौकरी में चला गया फिर कहाँ कुहू और कहाँ कवि। कुहू के अन्दर उमंग है उसे कभी भी किसी का संग मिल जाएगा। रहा वह तो इस दोस्ती में वही सबसे बड़ा उल्लू साबित हो रहा है।

35

जमुना में कितना पानी बह गया। न जाने कौन-कौन-सी नदियों का पानी पी-पीकर, घर से निकला कविमोहन अग्रवाल अब मूला-मूठा नदियों के किनारे, ताड़ीवाला रोड पर, पुणे में अपना घर बसाये हुए है। वृहत्तर घर उससे दूर हो गया है लेकिन उसकी एक इकाई वह अपने साथ ले आया है, मय चकला-बेलन और बाल-बच्चों के। फिर भी उसका काम करने का तरीका दफ्तर को पसन्द नहीं है। वह दफ्तर को अपनी सल्तनत समझता है। उसके लिए लोगों का महत्त्व वहीं तक है जहाँ तक वे दफ्तर के काम आते हैं।

इस एक दशक में प्रतिभा षोडशी हो गयी है और मनीषा किशोरी। दोनों अपनी तरह से बड़ी हुई हैं। न जाने कैसे प्रतिभा एकदम बहिर्मुखी है। मनीषा अन्तर्मुखी। पिता जिसे वे अब पापा कहती हैं अपने सारे दिशा-निर्देशन के बावजूद यह प्रक्रिया नहीं रोक पाये। यह भी नहीं पता कि कलाप्रेम के प्रथम ज्वार में जब पापा ने प्रतिभा का नाम रोहिणी भाटे की नृत्य कक्षाओं में लिखवाया तब यह शुरू हुआ अथवा तब जब नाजिर हुसैन से दोनों बहनों को शास्त्रीय गायन सिखाने के लिए बाक़ायदा गंडा बँधवाई की गयी। नाजिर हुसैन आकाशवाणी के आला कलाकार थे। वे आसानी से किसी को अपना शागिर्द क़ुबूल नहीं करते थे। लेकिन कविमोहन ने उन्हें अपनी वक्तृता और विनम्रता से इतना प्रभावित कर दिया जब कहा, "खाँ साब हमारा रोयाँ-रोयाँ आपकी शागिर्दी क़ुबूल करता है, इन बच्चियों को सा रे गा मा का हुनर सिखा दें तो आपके पाँव धो-धोकर हम पियें।"

नाजिर हुसैन ने जब दोनों लड़कियों को देखा वे द्रवित हो गये। रेडियो का आला अफ़सर उनके सामने गिड़गिड़ा रहा था। उन्होंने कहा, "बरख़ुरदार हम एक चावल से हाँडी परखते हैं। हफ्ते भर में तुम्हें बता देंगे, हाँ या ना।"

नानापेठ स्थित उनके आवास पर प्रतिभा और मनीषा रोज़ शाम पाँच से छः जाने लगीं। प्रतिभा ने आरम्भिक स्वर आदेशानुसार उठाये किन्तु मनीषा को सा बोलते हुए ही ऐसी हँसी और खाँसी उठी कि खाँ साब की समूची क्लास हिल गयी। मनीषा की पीठ थपकी गयी, उसका सिर सहलाया गया पर खाँसी कुछ ऐसी रही कि लडक़ी के आँसू आ गये। एक रोज़, दो रोज़, यही हाल रहा। आखिरकार खाँ साब ने उसके पिता से कह दिया, "अग्रवाल साब, आपकी छोटी लडक़ी में मौसिकी का छींटा भी नहीं है। हाँ बड़ी को मैं सिखा दूँगा।"

यही हाल रोहिणी भाटे के यहाँ हुआ। मनीषा ने खुद पहले ही दिन विद्रोह कर दिया, "यह क्या ज़मीन छू-छूकर गुरु को प्रणाम करना। हम क्या गुलाम हैं। हमें नहीं करनी ता-ता थैया।"

उसके पापा ने किचकिचाकर कहा, "ऊत की ऊत बने रहना है तुझे।"

अब तक इन्दु लिपस्टिक-पाउडर लगाकर आधुनिका बन चुकी थीं। आन्तरिक आधुनिकता की उन्हें न चेतना थी न परवाह। वह बोलीं, "इसे सारी उमर हमारी छाती पर मूँग दलनी है और क्या?"

अपने कच्चे किशोर कलेजे पर मनीषा ये आघात झेल ले गयी। उसने इससे भी बड़े आघात स्कूल में झेले थे जिनकी कोई जानकारी घरवालों को नहीं थी।

एक दिन दस्तूर नौशेरवान पब्लिक स्कूल में मेडिकल निरीक्षण था। सब छात्राओं के बाल, नाखून, दाँत और गले की जाँच होनी थी और विभिन्न टीके लगने थे। सतारा के मिशन हॉस्पिटल की नर्सें और डॉक्टर हर लडक़ी को अपने सामने खड़ा कर पहले नाखूनों और दाँतों की नुमायश करवाते फिर जीभ निकलवाते और हाथ में दो पेन्सिलों के कोनों से लडक़ी के बालों को जगह-जगह छेदकर देखते कि कहीं जूँ तो नहीं है। जब मनीषा की बारी आयी, नाखून और दाँत तो उसने चुपचाप दिखा दिये लेकिन गले की जाँच पर उसने ज़ोर से कहा, "आ आऽऽऽ। डॉक्टर और नर्सों ने जल्दी से कहा, "ठीक है चिल्ला क्यों रही हो?"

इस जाँच के बाद बारी आयी चेचक के टीके की। क्लास की लड़कियों ने जानबूझकर मनीषा को कतार में सबसे आगे खड़ा कर दिया। जब वह डॉक्टर और कम्पाउंडर के पास पहुँची, उन्होंने एक नज़र उसे देखकर हाथ के इशारे से हटाकर कहा, "जाओ तुम्हें टीके की ज़रूरत नहीं है।" सारी क्लास खिलखिलाकर हँसी। उस दिन मनीषा को समझ आया कि जिसे एक बार चेचक निकल जाती है, वह जीवन भर के लिए इस रोग से प्रतिरक्षित हो जाता है। लेकिन यह ज्ञान उसे एसिड की तरह मिला। हँसती हुई लड़कियों को देखकर उसका मन हुआ इन चुड़ैलों को वह अपनी पीठ पर लादकर मूलामूठा नदी में फेंक आये।

मनीषा जाकर क्लासरूम में बैठ गयी। लड़कियों की हँसी याद कर उसे रुलाई आने लगी। क्या यह हँसी की बात थी? प्रिंसिपल ने उन्हें हँसने पर डाँटा क्यों नहीं।

जब लड़कियाँ 'उई', 'आई' करती अपनी बाँह थामे क्लास में घुसीं, तब तक मनीषा एक अलग इनसान बन चुकी थी। उसने जलती आँखों से उन्हें देखा और मोर्चा बना लिया।

जिस नेता टाइप लडक़ी ने कुछ देर पहले मनीषा को लाइन में सबसे आगे खड़ा किया था, उसका नाम सूरज अहलूवालिया था। वह क्लास मॉनिटर थी। इस वक्त वह बड़े ध्यान से अपनी गोरी बाँह पर बना नश्तर का निशान देख रही थी।

मनीषा ने हाथ में डस्टर छिपाया हुआ था।

कसकर उसने मॉनिटर की बाँह को निशाना बनाया और दूर से मारा डस्टर। सूरज अहलूवालिया बची लेकिन फिर भी डस्टर उसके होंठ पर लगा और मुँह से ख़ून बहने लगा।

क्लास में दहशत छा गयी। मनीषा इस सबसे तटस्थ खड़ी रही। उसे अपनी इस हरकत पर कोई अफ़सोस नहीं था।

इस समय क्लास में कोई टीचर मौजूद नहीं थी। सूरज की जुड़वाँ बहन चाँद अहलूवालिया और दौलत पटेल मनीषा के पास पहुँचीं। उन्होंने लपककर उसे पकड़ा और कहा, "चलो प्रिंसिपल के पास।"

मनीषा खम्भे की तरह अपनी जगह पर अड़ी, खड़ी रही। उसकी क्रुद्ध रौद्र मुद्रा देखकर दोनों लड़कियों की पकड़ शिथिल पड़ गयी। तभी छुट्टी का घंटा टनटना उठा।

अपना बस्ता उठाकर मनीषा ने ठोड़ी से इशारा किया, "वह जानती है मैंने क्यों मारा।"

सब लड़कियाँ सकपका गयीं। मनीषा की खिल्ली उड़ाने में वे सब शामिल थीं। मनीषा आक्रामक उत्तेजना में सीढ़ियाँ उतर गयी।

इस तेवर के पीछे मनीषा की पिछले सात महीने की मेहनत थी जिसके चलते छमाही परीक्षा में उसके उच्चतम अंक आये थे। जिस दिन उसने नौशेरवान दस्तूर स्कूल में दाखिला लिया था, गणित के टीचर मिस्टर होडीवाला ने उसे क्लास में सबसे पीछे की सीट दिखाकर कहा था, 'गो एंड ऑक्युपाय दैट सीट।" मिस्टर होडीवाला उनके क्लास टीचर थे।

मनीषा थी तो पन्द्रह की पर देखने में ग्यारह की लगती। अभी न लम्बाई बढ़ी थी न देह उभरी। दुबली इतनी कि कमर पर से स्कर्ट खिसक-खिसक पड़ता। आगे के छोटे बाल, चोटी से निकलकर सामने आ जाते तो चेहरे का नक्शा बदल जाता।

होडीवाला सर को सुन्दर, दिखनौट लड़कियाँ पसन्द थीं। गणित का सवाल दे चुकने के बाद वे एक-एक छात्र, छात्रा के डेस्क के पास जाकर, उसकी पीठ पर हाथ रखते और कहते, "यस मिसिबाबा, लैट मी सी वॉट यू आर डूइंग।" जितनी देर वे सवाल देखते, उनका हाथ छात्रा की पीठ पर घूमता रहता। रिसैस में लड़कियाँ आपस में यही चर्चा करतीं कि होडीवाला सर उसके पास कितनी देर तक रुके।

मनीषा देखने में एक हद तक सिर्री ही लगती। होडीवाला सर उसके पास कभी नहीं रुकते। उसके किये सवाल हरदम सही होते। वे अपने लाल पेन से एक सही का निशान लगाकर आगे बढ़ जाते, "यस मिसिबाबा लेट मी सी वॉट यू आर डूइंग।"

छमाही परीक्षा में प्रत्येक विषय में मनीषा के सर्वोच्च अंक आये। मजबूरन क्लास टीचर को उसे सामने की सीट पर बैठाना पड़ा। जनरल साइंस, इतिहास, भूगोल और इंग्लिश व हिन्दी में उसकी हाजिर-जवाबी देखने योग्य थी। सब शिक्षकों का मानना था कि इतनी मेधावी छात्रा को सामने बैठना चाहिए। क्लास की बाकी लड़कियाँ इस बात से चिढ़ गयीं। उन्हें मनीषा पहले दिन से सिर्री लगी थी जो थोड़ी कूद-कूदकर जल्दी चलती थी, मुँह धोकर स्कूल चली आती थी और जिसे तर्क और होमवर्क में वे हरा नहीं पातीं।

लड़कियों ने उसे नीचा दिखाने के लिए अपने सवाल गढ़ डाले थे।

-तुम्हारा सरनेम अग्रवाल है, क्या तुम मारवाड़ी हो?

-ओ तो तुम यू.पी. की हो। हमारी कॉलोनी में दूध-दही का सारा धन्धा भैया लोग करते हैं, तुम भैया हो?

-तुम तो तबेले में रहती होगी।

इन पूर्वाग्रहों का खंडन करते-करते मनीषा को अब अग्रवाल सरनेम से ही चिढ़ होने लगी थी। वह घर में कहती, "पापा आपको कोई और सरनेम नहीं मिला था जो यह दकियानूस सरनेम, नाम के साथ चिपका लिया।"

पापा कहते, "इसमें क्या बुराई है?"

"स्कूल में हमें सब छेड़ते हैं। लड़कियों के इतने बढिय़ा-बढिय़ा सरनेम हैं-कुलकर्णी, चिटनिस, अय्यर, नैयर, कृष्णास्वामी।"

"देखो सरनेम में कोई अपनी मर्जी नहीं लगा सकता। यह हमें परिवार से मिलता है। हम लोग बीसा अग्रवाल हैं यानी अग्रवालों में सबसे ऊँचे। हमारा गोत्र बंसल है।"

माँ बोल उठतीं, "हम बंसल भी तो लिख सकते हैं।" उन्हें भी लेडीज़ क्लब में अग्रवाल सरनेम पर टीका-टिप्पणी सुनने को मिल जाती।

"नहीं, हमारी पहचान अपने पूरे नाम से बनती है कविमोहन अग्रवाल। दफ्तर में सब मुझे के.एम. कहते हैं लेकिन पीठ पीछे। सामने तो सब अग्रवाल साब, अग्रवाल साब कहकर हाथ जोड़ते हैं।"

"पापा इसका मतलब मैं जिन्दगी भर मनीषा अग्रवाल ही कहलाऊँगी।"

"ऐसा नहीं है। लड़कियों का सरनेम शादी के बाद बदलता है। कौन जानता है तुम्हारा क्या सरनेम हो जाए। पर अभी तो तुम बहुत छोटी हो। अभी तुम्हें पढऩा-लिखना और नाम कमाना है। अरे तुम्हें तो मैं सरोजिनी नायडू बनाऊँगा, विजयलक्ष्मी पंडित बनाऊँगा।"

"रहने दो, इसे चोटी भी तो करनी नायँ आय, ये बनेगी सरोजिनी नायडू।" माँ, मनीषा को नकारते समय ब्रजभाषा में उतर जातीं।

मज़े की बात यह कि पड़ोस में वाकई एक लडक़ी मनीषा की सहेली थी जिसका नाम था सरोजिनी नायडू। शाम के वक्त वे और कई दूसरी लड़कियाँ साथ-साथ बन्द गार्डन तक घूमने निकलतीं, उससे लगे पार्क में प्रदर्शनी देखतीं और प्लास्टिक के छोटे-छोटे खिलौने खरीदतीं घर आतीं।

मनीषा को नहीं पता था कि सरोजिनी नायडू कोई विशिष्ट नाम है।

उसने सरोजिनी से पूछा।

सरोजिनी उससे एक क्लास नीचे गवर्नमेंट स्कूल में पढ़ती थी। उसने कहा, "पता नहीं अन्ना कहते हैं यह बहुत फेमस पोयट है।"

"पोयट नहीं पोयटैस।" मनीषा ने कहा।

जैसे एक लगन लग गयी। सरोजिनी नायडू कौन है कि पापा उसे उस जैसा बनाना चाहते हैं। और वह विजयलक्ष्मी पंडित।

पापा की बातों से मनीषा के अन्दर रोज़ जिज्ञासाएँ जन्म लेतीं।

दोपहरों में जब वह स्कूल से लौटती, माँ रेडियो सुनते-सुनते ऊँघ चुकी होतीं, दीदी किसी नाटक की रिहर्सल में व्यस्त होती, पापा ऑफिस में होते, और मनीषा बुक रैक में लगी किताबें खखोरती। हर किताब जहाँ से निकालो, वापस वहीं लगाओ, यह उस घर का कानून था। बुकरैक में बहुत-सी जीवनियाँ और आत्मकथाओं के मोटे ग्रन्थों की कतार थी, महात्मा गाँधी, डॉ. राजेन्द्र प्रसाद, जवाहरलाल नेहरू। मनीषा को जैसे उन्माद चढ़ जाता। वह किताब निकालती, पृष्ठ पलटती, कहीं-कहीं पढ़ती। कुछ समझ आता, ज्याजदा अनसमझा रह जाता लेकिन उसका नशा कम न होता। एक-दो घंटे किताबों के बीच बिताकर वह फिर बच्ची बन जाती, हर किसी से लड़ती-भिड़ती, ज़बान लड़ाती मनीषा जिसकी शिकायत माँ तक आती रहती, "आपकी छोटी लडक़ी ने यह किया, आपकी छोटी लडक़ी ने वह किया।" माँ सिर पीटकर झींकती, "क्या बताऊँ, जाने कहाँ से जन्मी थी यह औलाद!"

घर में किताबों के रैक खखोरने पर ही मनीषा को पता चला था कि सरोजिनी नायडू और विजयलक्ष्मी पंडित कौन थीं। उसने अपनी सहेली सरोजिनी को बताया, "तुम्हारा नाम तो बहुत पहले से फेमस है। पता है सरोजिनी नायडू ने बहुत सारी कविताएँ लिखीं और उन्हें 'नाइटिंगेल ऑफ़ इंडिया' भारत कोकिला कहा जाता है। लगता है तुम भी कविता करने लगोगी।"

सरोजिनी ने हँसकर कहा, "नाम भले ही मेरा हो पर कवि तो तुम्हीं बनोगी, तुम्हारे पापा का तो नाम ही कविमोहन है।"

मनीषा को बड़ा गर्व हुआ, "मेरे पापा की पूछो मत। इतनी अच्छी कविता लिखते हैं, मुझे तो कई याद हैं, सुनाऊँ!"

सरोजिनी के अन्दर जरा भी काव्य-प्रेम नहीं था। उसने हाथ जोड़ दिये, "बस-बस बोर मत करो, बन्ध रोड पर चलना है तो बताओ।"

मनीषा ने कहा, "मुझे दीदी को लेने जाना है, उसे रिहर्सल से आने में देर हो जाती है।"

"तुम क्या उसकी सिपाही हो।"

"और क्या, देखी है मेरी कोहनी की नुकीली हड्डी। एक बार किसी को मार दूँ तो वहीं उसकी पसली चकनाचूर हो जाय।"

वाकई मनीषा नृत्य भारती तक पैदल जाकर, अपनी दीदी प्रतिभा को साथ लेकर बबरशेर की तरह लौटती।

प्रतिभा थी बहुत सुन्दर, ऊपर से शोख़ और शरारती। पढ़ाई में भी वह यथा नाम तथा गुण थी। इसी वजह से लड़कियाँ उससे ईर्ष्या रखतीं। और लडक़े अभिलाषा। उसकी एक नज़र के लिए वे नृत्य-भारती के फाटक पर घंटों भीड़ लगाये रहते। नाटकों में प्रमुख भूमिका निभाने से प्रतिभा के अन्दर अपने आप नायिका भाव पैदा हो गया था। छोटे-मोटे फैन पर तो वह नज़र भी न डालती।

'हार की जीत' नाटक में जब उसने नयनतारा की भूमिका अदा की, शहर की पेशेवर अभिनेत्रियों को बहुत अखरा। उनका ख़याल था कि नयनतारा की बहुआयामी भूमिका, जिसमें अभिनय, भाव-नृत्य और कंठ-संगीत, तीनों कलाएँ अनिवार्य हैं, यह सत्रह-अठारह साल की अल्हड़, अनुभवहीन लडक़ी क्या निभाएगी। उन्होंने सोलंकी सर को समझाया, "गुरुजी आपकी प्रतिष्ठा को कलंक लग जाएगा, कच्चे हाथों में पक्का चरित्र हास्यास्पद न हो जाय।" निर्देशक सोलंकी सर, प्रतिभा को वाडिया कॉलेज की स्टेज पर 'बन्दर का पंजा' नाटक में सत्तर साल की बूढ़ी स्त्री का अभिनय करते देख चुके थे। वे आश्वस्त थे। उन्होंने नयनतारा की भूमिका प्रतिभा को ही दी। सिर्फ पैंतालिस दिन के पूर्वाभ्यास से 'हार की जीत' तैयार हो गया। 'बाल गन्धर्व रंगमन्दिर' में इसके प्रीमियर शो में, दर्शकों से हॉल पूरा भर गया। मम्मी-पापा के साथ मनीषा भी शो देखने गयी। उसे एक तरह से समस्त स्क्रिप्ट याद थी क्योंकि दीदी को संवाद रटाने का काम वही करवाती रही थी। खास बात यह थी कि लोगों ने टिकट ख़रीदकर नाटक देखा। समूचा नाटक नयनतारा की भूमिका पर टिका था। प्रतिभा ने सचमुच बेहतरीन अदाकारी की। उसका सौन्दर्य, संवेदनशील अभिनय, कंठ का माधुर्य और चपल नृत्य देखकर दर्शक विभोर हो गये। कर्टेन-कॉल में सर्वाधिक तालियाँ उसके हिस्से आयीं। पापा बोले, "आज मुझे लग रहा है मेरा क़द कई फुट ऊँचा हो गया।" रेडियो से जुड़े कई कलाकार भी नाटक देखने आये हुए थे। उन्होंने कविमोहन से कहा, "आपके घर में ही इतनी बेजोड़ कलाकार है, आप इन्हें रेडियो पर क्यों नहीं लाते।"

कविमोहन ने सगर्व समझाया, "बात यह है जो फिल्म और मंच पर असफल हो जाते हैं, वही कलाकार रेडियो में जाते हैं, दूसरे जब तक मैं यहाँ काम करता हूँ, अपने परिवार के लोगों को कैसे रेडियो में आने की अनुमति दे सकता हूँ?"

कविमोहन के अडिय़ल, कडिय़ल स्वभाव से सब परिचित थे।

शो के बाद अख़बारवालों की भी भीड़ लग गयी। रंगकर्म में आयी नयी कलाकार से सभी बात करना चाहते थे। कवि और इन्दु मनीषा को समझाकर घर चले गये, "जब प्रतिभा ख़ाली हो जाय तो दोनों घर आ जाना। बहन थकी हो तो रिक्शा कर लेना। पैसे घर पर दे देंगे।"

खाली हॉल में एक कुर्सी पर बैठी रही मनीषा।

सोलंकी सर रिपोर्टरों को बताते रहे कि उनकी नायिका कितनी प्रतिभावान है। प्रतिभा के चित्र खींचे जाते रहे। उसने सभी सवालों के बड़े स्मार्ट जवाब दिये।

मनीषा देख-देख खुश होती रही।

एक बात उसकी समझ नहीं आयी। सोलंकी सर बार-बार दीदी का कन्धा या बाँह छू रहे थे और दीदी ने उनका हाथ एक भी बार नहीं झटका जबकि घर में कोई भी अगर दीदी से ज्याकदा लिपटे-चिपटे तो दीदी तुरन्त धमका देती, "दूर बैठो, मुझे घिन लगती है।" एक बार मम्मी ने बिगडक़र पूछा था, "तुझे मेरे से घिन लगती है?" दीदी ने बात बदली थी, "मेरा मतलब है गर्मी लगती है।"

यहाँ 'हार की जीत' का हीरो शिरीष मजुमदार एक तरफ़ उपेक्षित खड़ा था, उसकी तरफ़ कोई ध्यान ही नहीं दे रहा था। नाटक में दस-बारह पात्र थे लेकिन चर्चा केवल प्रतिभा की थी।

घर आने पर प्रतिभा ने जल्दी से कपड़े बदले, मुँह धोया और बिस्तर पर गुड़ुप पड़ गयी। सारा घर उसकी सँभाल में लग गया। माँ ने उसके बिखरे कपड़े समेटे, पापा ने रेडियो पर से मनीषा के छोटे-छोटे इनाम उठाकर ताक पर रखे। नाटक के प्रीमियर पर मेयर द्वारा प्रतिभा को दी गयी चमचमाती शील्ड रेडियो के ऊपर रखी गयी। मनीषा दो बार दीदी के कमरे में आयी पर बात नहीं हो पायी। प्रतिभा आँखें बन्द कर लेटी हुई थी। पापा-मम्मी धीरे-से उसके कमरे में आये। उसे सगर्व दृष्टि से देखते रहे। मम्मी ने आहिस्ता से उसे चादर उढ़ा दी। पापा ने कमरे की बिजली बन्द करते हुए मम्मी से कहा, "बेबी बहुत थक जाती है, इसे रोज़ एक सेब खिलाया करो।"

अगले दो दिन तक मनीषा, दीदी की प्रीमियर सफलता से जुड़े प्रसंगों में लगी रही। पापा ने हलवाई से दस किलो लड्डू बनवाकर पड़ोस में बँटवाये। हर घर में मनीषा ही देने गयी। चार नम्बर, पाँच नम्बर, सत्रह नम्बर, उन्नीस नम्बर, घंटी दबाई, दरवाज़ा खुला, "नमस्ते आंटी, हमारी दीदी का नाटक इस बार भी सुपरहिट हुआ है, उसी की ख़ुशी में मम्मी ने ये लड्डू भेजे हैं, नमस्ते।"

प्रतिभा कहाँ ख़ाली बैठती है। रोज़ छह से आठ तक बीस शो 'हार की जीत' के हुए। बस सिलवर जुबली मनाने में ज़रा-सी कसर रह गयी। ठीक उसके बाद कथक समारोह की प्रैक्टिस शुरू हो गयी। यह उसकी गुरुजी रोहिणी भाटे का ही आयोजन था, अत: इसमें तो पूरी जान लगा देनी थी उसे। उसके ही साथ बैजू, सुनयना और द्राक्षा ने भी मेहनत की। हालत यह हो गयी कि ये शिष्याएँ नाचते-नाचते चक्कर खाकर गिर पड़ीं। पिंडलियों की खाल घुँघरुओं की रगड़ खाते-खाते छिल गयी। मगर लड़कियाँ घाव पर टेप लगाकर फिर उठ खड़ी हुईं। गुरुजी का शो ए-वन जाना चाहिए चाहे जान निकल जाए। यह मनीषा का ही बूता था कि वह कभी जूस लेकर कभी दूध लेकर नृत्य-भारती संस्थान तक दौड़ती रही कि दीदी भूखी न रहे, नाचते-नाचते उसके शरीर में तरलता की कमी न हो जाए।

प्रतिभा थी लगन की पक्की। प्रैक्टिस के समय उसे नृत्य के सिवा और कुछ नहीं दीखता। बहन को देखते ही घुडक़ती, "यहाँ क्या करने आयी है! देखती नहीं प्रैक्टिस चल रही है।"

मनीषा डरते-डरते कहती, "मम्मी ने दूध भेजा है, पी लो तो और अच्छी प्रैक्टिस होगी।"

प्रतिभा थर्मस में से आधा दूध या जूस खुद पीती, आधा निसार खान नाम के अपने तबलावादक को पिला देती। कहती, "ये मुझसे ज्याखदा थक जाते हैं, इन्हीं की ताल पर तो मैं नाचती हूँ।"

वापसी में दोनों बहनें साथ होतीं।

कवि-परिवार की आचार-संहिता थी, बच्चों को पैदल चलना चाहिए। हाँ, किसी के पैर में मोच आ जाए या पेट में बर्दाश्त-बाहर दर्द हो जाए, तब रिक्शा लिया जा सकता है।

इसी उसूल के तहत दोनों बहनें शाम को पैदल घर चली जा रही थीं कि एक लम्बी कार उनके पास आकर रुक गयी।

एक निहायत रूपवान व्यक्ति कार में से उतरा और बड़ी शालीनता से प्रतिभा से मुख़ातिब हुआ। उसने कहा, "मिस अग्रवाल मैं आपको घर पहुँचा दूँ यह मेरी ख़ुशकिस्मती होगी।"

प्रतिभा ने उड़ती नज़र से उसे देखा, "देखिए, मैं आपको जानती नहीं, आप कौन हैं, ऐसे मैं कैसे जा सकती हूँ आपके साथ।"

प्रिंस सांगली को यह बात इतनी बुरी लगी कि वह चुपचाप वहाँ से हट गया। वह उस दिन के बाद से कॉलेज नहीं गया। उसने न सिर्फ वाडिया कॉलेज बल्कि पुणे भी छोड़ दिया।

प्रतिभा को कोई कष्ट नहीं हुआ। उसने कहा, "जिसे मैं जानती भी नहीं, उसकी कार में कैसे बैठ जाती। लिफ्ट देने में लिफ्ट लेनेवाले की मर्जी भी बराबर की हक़दार होती है।"

पापा अपनी बेटी के मौलिक विचारों के कायल हुए, "शाबाश बेबी बेटे, तूने मेरी छाती चौड़ी कर दी, मैं देख सकता हूँ तुझे कभी कोई पराजित नहीं कर पाएगा।"

माँ ने गर्वोक्ति की, "मेरी बेटी गलत रास्ते चल ही नहीं सकती। देख लो, तुम दस साल बाहर रहे, मैंने एक मिनट भी अपना मन मैला नहीं किया, सावन-भादों सब जोगन की तरह बिता दिये।"

प्रतिभा ने माता-पिता की शेखी की तरफ़ कोई ध्यान नहीं दिया। उसकी चेतना में अगली नृत्य-नाटिका और नाटक के संवाद गूँज रहे थे। साथ ही उसे अपने तबला कलाकार निसार का वादा सुनाई दे रहा था, "एक बार बम्बई चलकर देखो आप, मैं आपको मॉडलिंग की दुनिया की मलिका बनाकर दिखाऊँगा।"

फिर आ गया वाडिया कॉलेज का वार्षिकोत्सव। हर तरफ़ चहल-पहल और तैयारियाँ। यह एक दिन का नहीं बल्कि चार दिनों तक चलने वाला आयोजन था जिसमें खेल-कूद, डिबेट, नृत्य और गायन प्रतियोगिताएँ और सांस्कृतिक कार्यक्रम जैसे एकांकी, नाटक आदि होते। विद्यार्थियों में खूब जोश रहता। देर शाम तक रिहर्सल चलते।

बैजू, सुनयना, द्राक्षा और प्रतिभा की इन दिनों बड़ी पूछ थी। सबसे ज्याादा प्रतिभा की, क्योंकि बाकी लड़कियाँ नृत्य और गायन में तो निपुण थीं, अभिनय के क्षेत्र में कोरी थीं। प्रतिभा की खासियत यह थी कि वह ट्रैजिक और कॉमिक दोनों भूमिकाएँ निभा सकती थी। लिहाज़ा उसे एक ही शाम दो ड्रामों में अभिनय करना था। उससे पहले दिन एकल नृत्य का आइटम तो था ही।

कविमोहन ने कहा, "इतने आइटम की तैयारी करेगी तो तेरा बहुत वक्त ख़राब होगा, थक अलग जाएगी।"

"पापा आपको पढ़ाई की फिक्र हो रही है न। मैं परीक्षा में फस्ट आकर दिखाऊँगी, दैट्स अ प्रॉमिस। सोशल गैदरिंग में सब लडक़े-लड़कियाँ लगे हुए हैं, मैं पीछे नहीं हट सकती।"

जे. एम. सिन्ज़ के नाटक 'ऑल माय सन्ज़' में प्रतिभा ने माँ का किरदार निभाया, कुछ इस अन्दाज़ में कि उसकी मार्मिकता ने हर दर्शक को हिला दिया। अन्तिम दृश्य में माँ का संवाद था, "चले गये-सबके सब चले गये। छह-छह बेटे पैदा किये, छहों चले गये। अब जाकर मैं सोऊँगी, चैन से सोऊँगी। जिस दिनसे ब्याही आयी, एक दिन भी नहीं सोयी। कभी किसी के लिए, कभी किसी के लिए जीवन प्रार्थना में बीता। आज इसकी पूजा, कल उसका उपवास। अब सब चले गये। लाख तूफ़ान आएँ, अब मेरा क्या बिगाड़ लेंगे। सागर से मुझे क्या लेना और क्या

देना। भले ही घर में अब भोजन के नाम पर सिर्फ एक सूखी मछली हो, मुझे क्या चिन्ता, किसकी फिक्र! मैं पैर फैलाकर सोऊँगी, भर नींद सोऊँगी।"

प्रतिभा की आवाज़ का उतार-चढ़ाव, संवाद के बीच की उसाँस और चुप्पी, कंठ की थर्राहट और भरभरायापन, इस सबके ऊपर उसकी थकी-हारी चाल सब मिलकर एक मछुआरिन माँ का व्यक्तित्व ऐसा बयान कर रही थीं कि कोई कह नहीं सकता था कि यह भूमिका कुल अठारह साल की लडक़ी द्वारा अभिनीत हुई है।

ठीक इसके बाद प्रतिभा को एक हास्य नाटिका में मुख्य भूमिका करनी थी। 'शादी या ढकोसला' की नायिका के रोल में उसे पुरुष-पात्रों की ख़बर लेनी थी। पिछले नाटक का एकदम विलोम था यह आइटम लेकिन प्रतिभा ने इसमें भी अच्छा अभिनय किया।

अब आया वार्षिकोत्सव का आखिरी चरण-पुरस्कार वितरण समारोह। जैसी अपेक्षा थी, प्रतिभा को सर्वाधिक इनाम मिले। डिबेट, गायन और अभिनय में उसे प्रथम पुरस्कार मिला। कॉलेज की सर्वप्रिय छात्रा का मैडल भी उसे प्रदान किया गया। नृत्य-प्रतियोगिता में वह द्वितीय आयी। उसमें वैजयन्ती उर्फ वैजू को प्रथम पुरस्कार मिला। टेबिल-टेनिस शील्ड भी प्रतिभा की वजह से जीती गयी, उसका विशेष पुरस्कार मिला उसे। प्रतिभा ने मुख्य अतिथि के हाथ से अपने ही अन्दाज़ में पुरस्कार ग्रहण किये। बार-बार अपनी जगह से मंच तक जाना उसे कबूल नहीं। वह वहीं खड़ी रही विंग्ज़ में, एक भक्त छात्र को अपने इनाम पकड़ाती। वहीं से निकलकर वह मुख्य अतिथि से पुरस्कार लेती और फिर वहीं खड़ी हो जाती। लेने की अदा ऐसी जैसे वह पुरस्कार ले नहीं, दे रही हो।

मनीषा भी बैठी थी ताली बजाने वालों में। जितनी बार प्रतिभा का नाम बुलाया जाता, मनीषा को लगता वह लम्बी होती जा रही है। इच्छा तो उसकी हो रही थी कि सीट पर खड़ी होकर ताली बजाये।

जलसे के बाद दोनों बहनें घर लौट चलीं। कॉलेज से घर ज्या दा दूर नहीं था। कुछ इनाम प्रतिभा ने पकड़ रखे थे, कुछ मनीषा ने। मनीषा को लग रहा था जैसे ये सब उसी ने जीते हैं। आखिर वही तो याद करवाती थी दीदी को उसकी डिबेट की स्पीच और ड्रामों के डायलॉग। चाहे काण्ट और हीगेल की सैद्धान्तिकी हो, चाहे ध्रुवस्वामिनी के संवाद, प्रतिभा का कंठस्थ करने का तरीका यह था कि वह बिस्तर पर आँख मूँदकर लेट जाती और मनीषा से कहती, "हाँ मुन्नी, पढक़र सुना।"

मनीषा को इस काम में बड़ा मज़ा आता। स्कूल की अपनी पाठ्य-पुस्तकें चाट जाने के बाद कॉलेज स्तर की पुस्तकें या साहित्यिक नाटक पढक़र सुनाने में नये अनुभव का निरालापन था। कभी-कभी वह बीच में चुप हो जाती यह जाँचने के लिए कि दीदी वाकई सुन रही है या सो गयी। प्रतिभा तुरन्त आँखें खोल देती, "मुन्नी तू चुप कैसे हो गयी। अभी तो पूरा एक दृश्य पड़ा है।"

यह आदत प्रतिभा में पापा से आयी थी। कविमोहन को भी सुने हुए शब्द तुरन्त याद हो जाते। इसीलिए वह अपने आपको वॉकिंग रेडियो कहता। आजकल उसने घर में एक नया शब्द स्थापित किया था, वॉकी-टॉकी। शाम की सैर को वह कहता, "इन्दु वॉकी-टॉकी पर चलना है तो चलो।"

रास्ते में कभी कोई, कभी कोई प्रतिभा को मुबारकबाद दे रहा था। तभी चार लडक़ों के एक ग्रुप ने आकर उसे बधाई दी। फिर उनमें से एक ठिगने मोटे लडक़े ने कहा, "मिस अग्रवाल, हम लोगों में एक शर्त लगी है। राज कक्कड़ का

कहना है यह लडक़ी जो आपके साथ है, आपकी बहन है। मेरा कहना है ऐसा हो ही नहीं सकता। बकवास करना राज की पुरानी आदत है। वह आपकी क़ामयाबी से जल रहा है इसीलिए ऐसी घटिया बात कर रहा है। मुझे पता है यह ज़रा भी सच नहीं है। पर हम सब आपसे सुनना चाहते हैं। हम लोगों में आइसक्रीम की शर्त लगी है।"

प्रतिभा ने निहायत लापरवाही से कहा, "इसमें कौन-सी शर्त की बात है। मेरी बहन है यह, मनीषा।"

लडक़ों के मुँह खुले के खुले रह गये। उन्होंने टकटकी लगाकर मनीषा को देखा जैसे चिडिय़ाघर में बच्चे ज़ेब्रा देख रहे हों।

राज कक्कड़ ने सूरमा अन्दाज़ में बाँहें चढ़ा लीं, "देखा न, मेरी ख़बर गलत नहीं होती। है न धमाका-छाप।"

ठिगने, मोटे लडक़े ने हताश स्वर में कहा,"यह आपकी सगी बहन है मिस अग्रवाल?"

"हाँ बाबा, सगी।" प्रतिभा ने हँसते-हँसते कहा।

"एक ही माँ की?"

"हाँ, और एक ही पिता की।" प्रतिभा ने अपनी तरफ़ से स्मार्ट मज़ाक़ कर मारा जिस पर सब हो-हो कर हँस पड़े।

मनीषा की सूरत रोनी हो आयी। कितने बेहूदा लडक़े हैं। कैसे भद्दे मज़ाक़ करते हैं। यह क्या शर्त लगाने की बात है। इतनी बार वह दीदी के साथ कॉलेज आ चुकी है, बहन नहीं तो क्या वह चपरासिन है।

घर पहुँचकर मनीषा ने किसी से कुछ नहीं कहा पर रुलाई एक अन्धड़ की तरह मन में घुमड़ रही थी। किसी को उसकी तरफ़ देखने की फ़ुर्सत नहीं थी। कोई प्रतिभा की पीठ ठोक रहा था, कोई उसका मुँह चूम रहा था। पापा ने सगर्व, दीदी से कहा, "यू आर माय ब्रेनी डॉटर, शाबाश!"

रात जब मनीषा अपने बिस्तर पर लेटी, इतनी देर की रुकी हुई रुलाई अवश फूट पड़ी। उसे समझ नहीं आ रहा था वह क्यों रो रही है पर आँसू थे कि बहे जा रहे थे। लगातार रोने से नींद भी उड़ गयी।

मनीषा दबे पाँव उठकर गुसलखाने में गयी।

वहाँ लगे शीशे में उसने अपना चेहरा देखा।

नहीं, इतना बुरा तो नहीं कि बरदाश्त न हो। बाल उसके दीदी से लम्बे और मुलायम हैं। त्वचा भी उसकी चमक रही है। फिर उन लडक़ों ने क्यों कहा कि वह दीदी की कोई नहीं। और फिर अगर लडक़ों ने बदतमीज़ी की भी, तो क्या दीदी उन्हें डपट नहीं सकती थी। क्या उसका हाथ अपने हाथ में लेकर, गर्व से नहीं कह सकती थी, "देखो यह है मेरी बहन, मेरी अपनी छोटी बहन, तुम्हें दिखाई नहीं देता?"

मनीषा क्या करे कि अपनी दीदी की बहन लगे। क्या गले में पट्टा लटका ले या आटे के बोरे में मुँह घुसा दे या छील डाले अपनी चमड़ी छिलके की तरह।

मनीषा को इसी तिलमिलाहट में याद आयी उस लाल लहँगे की जिसके कारण उसे माँ से मार पड़ी थी।

दीदी को टाउनहॉल में एकल नृत्य प्रतियोगिता में भाग लेना था। उसके लिए लाल लहँगा, ब्लाउज़ और चूनर बनवाई गयी। प्रतियोगिता वाले दिन प्रतिभा बाज़ार गयी-लाल चुटीला और झूमर खरीदने। पीछे से दर्जी ने आकर पोशाक दी। नयी लाल पोशाक मनीषा को इतनी भायी, उससे रहा न गया। उसने चाव ही चाव में अपनी फ्रॉक उतारकर लहँगा-ओढनी पहन ली। बाक़ायदा सिर ढँककर वह माथे पर टिकुली लगा ही रही थी कि दीदी वापस।

मनीषा को काटो तो ख़ून नहीं। हे भगवान, दीदी ने देख लिया। अब क्या होगा!

"दीदी का पारा गरम हो गया, "तूने मेरी पोशाक क्यों ख़राब की, बता, बता!" दीदी ने उसे झँझोड़ डाला।

"दीदी खराब नहीं की, लो मैं उतार देती हूँ।"

दीदी रोने बैठ गयी, "ऊँ ऊँ ऊँ, अब मैं यह नहीं पहूनँगी। यह पोशाक गन्दी हो गयी।"

मम्मी ने प्रतिभा से कुछ नहीं कहा, बस मुन्नी की धुनाई कर दी, साथ में अपनी भड़ास शब्दों में निकाली, "जन्मी थी औलाद। तू पैदा होते ही मर क्यों नहीं गयी। सब मथुरावालों की देहाती आदतें आयी हैं इसमें, किसी के भी लत्ते लटका लेना, किसी की भी चप्पल पहन लेना। तेरी हिम्मत कैसे हुई बड़ी बहन के कपड़ों को हाथ लगाने की! बेवकूफ़।"

मनीषा हफ्तों सोचती रह गयी, क्या पोशाक इतनी जल्द, इतनी गन्दी हो गयी कि दीदी का डांस बिगड़ गया, उसे पुरस्कार नहीं मिला और घर लौटते हुए उसकी एक पायल भी खो गयी।

तब से मनीषा ने तय किया दीदी का कोई कपड़ा नहीं छूना है, रूमाल भी नहीं। दीदी को दुखी नहीं करना है।

मनीषा को अजीब यह लगता कि सिर्फ उसे और पापा को मथुरावाले कहा जाता। मम्मी कभी दीदी को और अपने को मथुरावाली नहीं कहतीं। वे मथुरा को स्थानवाचक संज्ञा की बजाय गुणवाचक विशेषण बना देतीं। कभी पापा चाय में अतिरिक्त चीनी की माँग कर बैठते तो मम्मी उनकी चाय में आधा चम्मच चीनी और डालकर मिलाते हुए कहतीं, "रहे तुम मथुरावाले ही। कितनी भी चीनी मैं डाल दूँ तुम्हें चाय फ़ीकी ही लगे।"

किसी दिन मनीषा बालों में तेल नहीं लगाती और उसके बाल बिखरे-बिखरे लगते। मम्मी कहतीं, "क्या भग्गो भूतनी जैसी शकल बना रखी है। मेज़ पर तेल की शीशी भरी रखी है पर नहीं इसे तो मथुरावाली देहातिनों की तरह रहना है।"

"तुम नहीं हो मथुरावाली?" पापा छेड़ते।

"ना बाबा, मैं ठहरी फ्रंटियर पंजाब की, मैंने तो शादी के बाद पहली बार तुम्हारी मथुरा देखी।"

"तुम्हें मथुरा याद नहीं आती?"

"ज़रा भी नहीं। मेरे लिए तो मथुरा जेल थी जेल। बड़ी चक्की चलायी, बड़े पापड़ बेले। और रहती तो मर जाती?"

"कैसे मर जातीं?"

"जमनाजी में छलाँग मार देती। पता है एक बार तो दुखी आकर गयी भी थी। पर उस दिन पानी बड़ा गँदला था और वहाँ नंगे मोटे पंडे लोग नहा रहे थे। मैंने सोचा अगर मैं मर गयी तो ये ही पंडे मुझे पानी में से निकालेंगे। मुझे बड़ी घिन लगी और मैं वापस आ गयी।"

"तब तो भगवान पंडों को और मोटा करे। पंडे और भी नंगे रहा करें ताकि औरतें मरने न जायँ।"

"तुम्हें हँसी की बात लग रही है, मेरी जान पर बनी थी।"

"हुआ क्या था?"

"बस अब याद न दिलाया करो। कोई एक बात हो तो बताऊँ। कभी कोई टर्राय, कभी कोई टर्राय। करने वाली एक और हुकुम चलानेवाले चार-चार।"

अब कवि की विनोदप्रियता जवाब दे जाती। वह कहता, "इन्दु तुम्हारे साथ मुश्किल यह है कि तुम रिश्तों की इज्ज़त करना नहीं जानतीं। मेरी माँ एक पैर से लाचार, ऊपर से डायबिटीज़ की मरीज़। क्या हो गया अगर वहाँ काम कर दिया।"

"टाँग की कमी वे ज़ुबान से पूरी कर लेवें। मीठे की तो इतनी चींटा, बिल्कुल तुम्हारी तरह।"

"अच्छा चुप हो जाओ, मुझे गुस्सा आ रहा है।"

बेचैनी में कवि सिगरेट फूँकने की रफ्तार और तादाद यकायक बढ़ा देता। वह रातों में जाग-जागकर सिगरेट पीता। वह सोचता, वह अपने घर, अपने शहर से बड़ी दूर निकल आया है। ताज्जुब की बात यह कि इतनी दूर बैठकर उसे न पिता पर क्रोध आता न माँ पर। दूरी ने पिता से अधिक माँ की एक देव-प्रतिमा उसकी कल्पना में स्थापित कर दी थी। इन्दु के कटु-वचन इस तन्मयता में व्याघात पहुँचाते।

आधुनिकीकरण की प्रक्रिया में इन्दु ने अपने बाल कटवाना, ताश खेलना, मेकअप करना और पड़ोसियों से गप्प-गोष्ठी करना तो सहज ही अपना लिया पर अपने जीवन-साथी का मनोविज्ञान समझना ज़रूरी नहीं समझा। जब दफ्तर से आकर कवि उसे बताना चाहता कि कैसे उसने समस्त मराठी कार्यक्रमों के बीच हिन्दी का एक घंटे का प्रसारण मन्त्रालय से मंज़ूर करवाया, इन्दु को उसकी सफलता का कोई स्पन्दन ही नहीं होता। वर्षों पति से अलग रहकर उसका स्वतन्त्र मानसिक संसार बन चुका था। जितना आनन्द उसे अपनी पड़ोसिनों में आता, उतना पति के सान्निध्य में न आता। कवि के दफ्तर चले जाने के बाद वह पहले एक-डेढ़ घंटे खुरपी लेकर अपनी क्यारियों में व्यस्त हो जाती। घर के पिछवाड़े कच्ची ज़मीन थी जहाँ इन्दु ने पाँच लम्बी क्यारियाँ तैयार की थीं। सेम, मेथी, धनिया, पुदीना, टमाटर और करेले सबके पौधे उसने लगा रखे थे। अहाते की पिछली दीवार पर लौकी और तोरई की बेलें चढ़ी थीं। इन्दु को पौधों के बीच वक्त गुज़ारना अच्छा लगता। उन क्यारियों में इतनी तरकारी पैदा हो जाती कि घर में केवल आलू, अरबी, अदरक जैसी सब्जियाँ बाज़ार से लानी पड़तीं। अपनी उगाई तरकारियाँ इन्दु अड़ोस-पड़ोस में बाँटतीं। घर की उगी तरकारियाँ इतनी कच्ची और कोमल होतीं कि मिनटों में पक जातीं।

स्नान के बाद, अच्छी तरह से तैयार होकर इन्दु का मेल-मिलाप का कार्यक्रम शुरू होता। बगलवाले बँगले की मिसेज़ कुमार, सात नम्बर, उन्नीस नम्बर की महिलाएँ या तो किसी एक के घर में बैठकर बातें करतीं अथवा सब

नीचे अहाते में इकट्ठी हो जातीं। काफ़ी देर खड़े-खड़े गप्प-गोष्ठी चलती। मनीषा को यह देखकर बड़ा कौतुक होता कि सभी महिलाओं की साडिय़ों की पसन्द लगभग एक-सी थी। उनका मेकअप भी एक समान लगता। उनकी बातें भी एक-सी उबाऊ और एकरस थीं। पति की अफ़सरी जताने के लिए एक ऐसे कहती, "हमारे साहब तो नाश्ते में टोस्ट खाते हैं, पराँठे से उन्हें बड़ी चिढ़ है।" दूसरी कहती, "हमारे साहब तो हमारे बिना टूर पर भी नहीं जाते।" इन्दु भी पीछे नहीं रहती, वह कहती, "हमारे साहब की कविताओं की सारी दुनिया में धूम है। रेडियो पर जो तुम सब सुनती हो, उन्हीं की मर्जी से बजाया जाता है।"

दोपहर में मनीषा बदस्तूर स्कूल से लौटती तो पाती माँ की आँख लग गयी है। उसका मन होता माँ उठकर उसे थाली परोसकर दें लेकिन इन्दु रोज़ शाम चार बजे उठती जब प्रतिभा का कॉलेज से आने का वक्त होता। तब उसकी सक्रियता देखने लायक होती। एक तरफ़ बेबी के लिए थाली परोसी जाती, दूसरी तरफ़ चाय चढ़ाई जाती। कटोरदान से मठरी और मर्तबान से अचार निकाला जाता। वे तीनों मिलकर चाय पीते।

थोड़ी देर सुस्ता लेने के बाद प्रतिभा हाथ-मुँह धोकर सफेद साड़ी, सफेद ब्लाउज़ पहन नृत्य-भारती के लिए तैयार हो जाती। कभी इन्दु कहती, "बहुत थकी है, आज न जा।"

प्रतिभा कहती, "नहीं मम्मी, मुझे तो आचार्यजी से भी बड़ी कलाकार बनना है, तुम देखती जाओ।"

कभी-कभी इन्दु मनीषा पर किचकिचाती, "अपनी बहन को देख, कित्ती मेहनत करती है। पढ़ाई क्या, डिबेट क्या, डांस क्या, सबमें आगे। तेरी इच्छा नहीं होती कुछ करने की?"

मनीषा मुँह लटका लेती, "फस्ट तो मैं भी आती हूँ।"

"इससे क्या, कोई हुनर भी तो हो। लडक़ी की जात को सौ कलाएँ सीखनी होती हैं।"

मनीषा मुँहफट हो जाती, "आपने कितनी सीखीं मम्मी?"

इन्दु मुँह बनाती, "मुझे कभी आज़ादी ही नहीं मिली, न या घर न वा घर। अपने भाग सराहो, तुम पर कोई रोक-टोक नहीं। पढऩे और खेलने के सिवा कोई काम नहीं तुम्हें।"

मनीषा कहती, "दीदी की तरह ताता थैया तो मैं कभी न करूँ। और वह पक्का गाना, बाप रे बाप!"

36

दफ्तर से कवि आया तो उसका चेहरा चिन्ता से कुम्हलाया हुआ था। इन्दु ने देखते ही कहा, "क्या फिर तबादला हो गया?"

कवि ने कहा, "नहीं, मथुरा से चिट्ठी आयी है, जीजी की तबीयत ज्याददा ख़राब है।"

इन्दु की मुख-मुद्रा बदल गयी। कठिन स्वर में बोली, "जब मथुरा से चिट्ठी आय, यही सब पचड़ा लिखा रहै वामे। जीजी की तबीयत अच्छी रहती कब है जो ख़राब है।"

"चुप हो जाओ तुम।" कवि ने उसे डपट दिया।

दोनों लड़कियों को दादी की बीमारी का पता चला।

प्रतिभा बोली, "पापा अब क्या करोगे। मथुरा जाना पड़ेगा?"

कवि ने गर्दन हिलाई, "जाना तो हम सबको चाहिए। वैसे भी दो साल हो गये घर गये।"

मनीषा का मन दादी की बीमारी की ख़बर से डाँवाडोल हो रहा था। उसका ख़याल था उन सबको फौरन मथुरा जाना चाहिए। दादी उसे देखते ही ठीक हो जाएँगी।

कवि ने कहा, "इनी तुम तैयारी कर लो तो सुबह की गाड़ी से चला जाय।"

"तुम्हारा सामान बाँध दूँ?" इन्दु ने पूछा।

"क्यों तुम्हारी कुछ नहीं लगतीं जीजी। ऐसे क्यों बोलीं तुम?"

"मैंने जाकर देखा नहीं है क्या? जब जाओ, लड़ाई, झगड़े के सिवा मथुरा में और क्या होता है। बड़ी मुश्किल से उस नरक से निकली हूँ।"

"शट अप। कान खोलकर सुन लो। मैं दोनों बच्चों को लेकर जाऊँगा। क्या पता जीजी को किसकी हुडक़ उठी हो। तुम अकेली यहाँ क्या करोगी?"

इन्दु हतप्रभ हुई। सँभलकर बोली, "मैं मिसेज़ कुमार की लडक़ी नताशा को अपने पास बुला लूँगी।"

प्रतिभा ने प्रतिवाद किया, "पापा सबका जाना झमेले वाला काम है। तीन दिन बाद मेरा नया शो स्टेज होगा। मैं कैसे निकलूँ। आप अकेले चले जाओ न।"

मनीषा पापा की कुर्सी के पीछे जाकर खड़ी हो गयी, "पापा मैं दादी के पास चलूँगी। स्कूल का जो काम हर्ज होगा मैं आकर पूरा कर लूँगी।"

इन्दु को जैसे त्राण मिल गया। बालों को झटका देकर बोली, "वैसे भी हफ्ते भर बाद इसकी गर्मी की छुट्टी हो जाएँगी। तब इसे काम ही क्या है। यहाँ से वहाँ धूप में फक्के मारती डोलेगी आशा, उषा और सरोजिनी के संग।"

"छुट्टी तो बेबी की भी होगी।" कवि ने कहा।

"पापा कॉलेज से छुट्टी होगी पर डांस और म्यूजिक से कहाँ छुट्टी मिलेगी, ऊपर से स्टेज शो।" प्रतिभा ने अपना बचाव किया। उस रोज़ रात के एक बज गये सामान पैक करते। अगले दिन सुबह आठ बजे गाड़ी थी। पापा ने कहा, "मुन्नी ऐसा करते हैं तेरी दादी के लिए गाँधीजी की आत्मकथा ले चलते हैं। वैसे भी जीजी गाँधीजी की भक्त हैं। उन्हें इसमें कहानी का आनन्द आएगा।"

किताबों के रैकों में आत्मकथा की ढुँढ़ाई शुरू हुई। कवि ने पूछा, "इन्दु मैंने शादी पर तुम्हें गाँधीजी की आत्मकथा भेंट की थी वह कहाँ गयी?"

इन्दु ने कहा, "वहीं मथुरा में होगी तुम्हारे कमरे में।"

"तुमने पढ़ी?"

"कभी फुर्सत ही नहीं मिली। पर वहाँ ढूँढऩी मुश्किल है। इत्ते साल पुरानी बात है।"

"किताब कभी पुरानी नहीं होती। फिर गाँधीजी की आत्मकथा तो रामायण और गीता की तरह सँभालकर रखनेवाली किताब है, तुमने कोई क़द्र नहीं की उसकी?"

"तुम्हें लडऩे की इच्छा हो रही है तो जाओ वहीं मथुरा में लड़ो, अपनी मैया की तरह बस गाँधीजी की टेक लेकर बैठ गये।"

कवि ने बड़ी मुश्किल से अपना हाथ इन्दु पर उठने से रोका। घर के नाम पर वह ततैया की तरह डंक मारने लगती। उसके सुन्दर चेहरे में से जैसे एक और ही चेहरा निकल आता टेढ़ा, तना हुआ, आँखें तरेरता। ऐसे समय कवि का मन होता वह इस घर को भी लात मारकर कहीं दूर निकल जाए।

इसी तनावग्रस्त मन:स्थिति में उसने गाड़ी पकड़ी। बम्बई पहुँचकर एक बार फिर गाड़ी बदलनी थी। मनीषा पापा का तनाव देख और समझ रही थी। कवि सिग्नल की तरफ़ मुँह कर लगातार सिगरेट पी रहा था। गुस्सा दबाने और अपने को संयत करने का उसका यह ढंग था। मनीषा अपने सामान पर नज़र जमाए रही। कवि का ध्यान इस ओर नहीं था। उसकी आँखें सैंकड़ों मील पार का घर देख रही थीं जहाँ जीजी हर गाड़ी के इंजन की भभकार के साथ बोल रही थीं, "देखो आज भी कबी नाँय आयौ, मोय लगै बानै अपनी मैया को एकदम्मे भुला दियौ।"

फ्रंटियर मेल में जगह मिलने में उन्हें दिक्कत नहीं हुई। कवि ने टी.टी. से अपनी यात्रा की अनिवार्यता बतायी। उसने उनकी दो टिकटों का पक्का आरक्षण कर दिया।

बहुत दिनों बाद गाड़ी में बैठी थी मनीषा। सामान जमाने के बाद उसका मन उत्फुल्ल हो आया। उसने अपनी समझ से कहा, "पापा आप बिल्कुल फिक्र न करें, दादी एकदम ठीक हो जाएँगी।"

"कैसे?"

"ऐसा है, दादी कहती हैं आदमी और तोते में यही बात कॉमन है कि दोनों को कोई साथ चाहिए। सारे दिन अकेली रहकर उदास हो जाती होंगी। पता नहीं चरखा भी अब चलाती हैं या नहीं।"

दोपहर में कवि की आँख लग गयी। मनीषा ने धीरे-से पापा की जेब में से सिगरेट और माचिस निकाल ली और बैग में रख दी। न दिखेगी, न पिएँगे, उसने सोचा।

कवि का कहना था कि सिगरेट उसके विचार-जगत को सक्रिय करती है जबकि मनीषा को लगता था कि सिगरेट को उसने तनाव-जगत् का अस्त्र बना रखा था। दफ्तर की किसी बात से परेशान होता तो रातों में जागकर सिगरेट पीता। पत्नी की बात पर चिढ़ जाता तो ताबड़तोड़ तीन-चार सिगरेट आधी-आधी पीकर कुचल डालता। उसके मनोविज्ञान को समझने की बजाय पत्नी उसके गुस्से में पलीता लगाती जाती, "घर से दूर रहकर यह अच्छी तबालत गले लगा ली तुमने। मैं भी तुम्हारी तरह कोई लत लगा लेती तब पता चलता तुम्हें।"

ऐसे मौकों पर कविमोहन या तो घर से बाहर जाकर टहलने लगता अथवा अपने कमरे में बन्द हो जाता। उसने अनेक रेडियो नाटक ऐसी मन:स्थिति में लिख डाले थे। मनीषा ने पढ़े तो नहीं लेकिन रेडियो पर सुने थे ये नाटक, इनमें मथुरा गूँजती रहती, कभी बाँसुरी की तरह तो कभी नगाड़े की तरह। जिन दिनों ये नाटक लिखे गये, कविता-लेखन बिल्कुल बन्द रहा। मनीषा को लगता पापा के मन-मस्तिष्क में एक ही विषय बार-बार चक्कर लगाता है कि उसे परिवार में कोई समझता नहीं है। कभी बचपन तो कभी लडक़पन की छोटी-छोटी बातें इन नाटकों में पिरोई गयी थीं। मनीषा में हिम्मत नहीं थी कि पूछे, "पापा क्या यह सब आपके साथ हुआ था?" वह पापा को डिस्टर्ब नहीं करना चाहती थी लेकिन खुद इस बात से काफ़ी डिस्टर्ब्ड थी कि ऐसा क्यों होता है कि एक परिवार में माँ-बाप एक बच्चे के प्रति नरम और एक के प्रति कठोर होते हैं। उसके मन में अपनी दीदी के लिए कोई हिर्स नहीं थी पर माँ का अपने प्रति तिरस्कार वह समझ नहीं पाती थी।

खिडक़ी से बाहर देखते-देखते कब दोपहर हो गयी पता ही न चला। डाइनिंग कार का बैरा दोपहर के खाने का ऑर्डर लेने आया तो कवि ने कहा, "दो शाकाहारी।"

मनीषा खुशी से हँस दी। पापा द ग्रेट! उसके पापा दरियादिल हैं। उसके लिए अलग थाली मँगाई है।

मनीषा के मन में कौंध गयी दो साल पहले की स्मृति जब मम्मी ने इन्दौर से पूना के सफ़र में उन चारों के बीच तीन थाली का ऑर्डर दिया था। पापा ने जब वजह पूछी, मम्मी तिनतिनाकर बोलीं, "तुम्हें पता है बेबी चावल नहीं खाती और मैं रोटी। मनीषा मेरी थाली में से रोटी खा लेगी और बेबी की थाली से चावल। सब्ज़ी-दाल तो मिल-बाँटकर पूरी पड़ जाएगी।"

जब खाना खाते हुए मम्मी ने अपने जूठे हाथों से रोटियाँ मनीषा को पकड़ानी चाहीं, मनीषा को लगा जैसे वह कोई भिखारी है जिसे सबकी जूठी थाली चाटनी है।

"रहने दो माँ, मुझे भूख नहीं।" मनीषा ने कहा था।

माँ का टेपरिकॉर्डर चालू हो गया, "यों कहो तंग करना है। तू चाहती है हम चार थाल मँगाकर चारों में जूठा छोड़ें। अरे छोटे बच्चों का क्या है? थोड़ा यहाँ से टूँगा, थोड़ा वहाँ से टूँगा और पेट भर गया। पर नहीं यह तो हमारा औंड़ा करने पर तुली है। घर में भी तो कई बार दोनों बहनें इकट्ठी खाती हैं।"

पापा ने माँ को समझाया था, "क्यों कौआपन करती हो इनी। भारत सरकार हमें इतना तो देती है कि हम सफ़र में ठीक से खा लें।"

"रहने दो जी, मैं अपने बच्चों की भूख-प्यास अच्छे से जानती हूँ। थाली मँगाकर बिरान करेगी मुन्नी, और कुछ नहीं।" इन्दु ने कहा।

स्टील की ट्रेनुमा थाली में खाना आया। खाना साधारण था लेकिन मनीषा को असाधारण रूप से स्वादिष्ट लगा। दरअसल उसे खाने की साज-सज्जा अच्छी लगी। जालीदार कपड़े में लिपटा नींबू का टुकड़ा, प्लास्टिक के पैकेट में अचार, नन्हें से डब्बे में बर्फी की एक कतली। दाल ज़रूर बेस्वाद थी जो नमक, नींबू मिलाने के बाद भी नहीं सुधरी लेकिन मटर-पनीर अच्छा था। पन्नी में लिपटी रोटियाँ नरम थीं।

खिडक़ी से कोयल की कूक सुनाई दे रही थी।

"पापा कोयल को इंग्लिश में क्या कहते हैं?" मनीषा ने पूछा।

"नाइटिंगेल।"

"क्या यह रात में बोलती है? पर अभी तो दिन है?"

"नाइटिंगेल का नाइट से कोई जोड़ नहीं है। लेकिन यह पत्तों में छुपकर कूकती है, इसीलिए इसका नाम नाइटिंगेल पड़ा होगा।"

"हमारे कोर्स में एक कविता है 'नाइटिंगेल्ज़'।"

" 'ओड टु ए नाइटिंगेल' है क्या?"

"नहीं पापा वैसे मिस ने उसके बारे में भी बताया। वह कीट्स की है। इसका शीर्षक सिर्फ 'नाइटिंगेल्ज़' है।"

कवि को याद आ गयी पूरी कविता। लेकिन इसके कवि का नाम वह भूल रहा था। दरअसल रोमांटिक युग में नाइटिंगेल पर इतनी रचनाएँ लिखी गयीं कि उनकी सिर्फ गिनती याद रखी जा सकती थी।

"मुन्नी यह वाली कविता किसकी लिखी है?"

"रॉबर्ट ब्रिजेज़ की। पापा इसमें कवि और कोयल का सवाल-जवाब बहुत अच्छा है।"

"हाँ, मुझे याद आ रहा है, जहाँ नाइटिंगेल्ज़ कहती है।"

"Barren are the mountains and spent the streams

Our song is the voice of desire that haunts our dreams."

"यह तो काफ़ी मुश्किल कविता है। तुझे समझ में आयी।"

"हाँ पापा मिस भरुचा ने क्लास में हमसे यह कविता इनैक्ट भी करवायी। मुझे उन्होंने नाइटिंगेल बनाया और आदेश को कवि।"

"अच्छा!"

"पापा मिस ने मुझे कोयल क्यों बनाया?"

"क्यों बनाया?"

"क्योंकि मैं काली हूँ, कोयल काली होती है न।"

"किसने कहा तू काली है? मेरे जैसा रंग है तेरा, चाय और कॉफी के बीच का।"

मनीषा को काँटे की तरह कसक गयी एक याद। मम्मी ने पापा के सामने ही उसे लताड़ा था, "काले मुँह की, यह नहीं कि स्कूल से आकर मुँह धो ले, कपड़े बदल ले। कहीं भी चल देती है चप्पल चटकाती।" पापा कुछ नहीं बोले थे। बस विरोध में माँ को घूरा था जिसका उनकी उग्रता पर कोई असर नहीं पड़ा था।

इस वक्त पापा को कुरेदकर मनीषा परेशान नहीं करना चाहती।

प्रकट उसने कहा, "पापा लगता है कोयल और कविता का रिश्ता बहुत पुराना है। सरोजिनी नायडू को भी भारत-कोकिला कहा जाता था न।"

"तुझे तो बहुत-सी बातें पता हैं। घर में तो उधम मचाती रहती है, यहाँ विद्वानों की तरह बोल रही है।"

"पापा मेरी सहेली है न सरोजिनी, उसका सरनेम नायडू है। उसका पूरा नाम सरोजिनी नायडू है पर उसे सरोजिनी नायडू के बारे में कुछ पता ही नहीं है।"

"तुझे पता है?"

"हाँ, हमारी मिस ने बताया सरोजिनी नायडू हैदराबाद में पैदा हुई थीं और लन्दन में पढ़ाई की थी। उनकी एक कविता का अंश हमारे कोर्स में है, 'द फ्लूट प्लेयर ऑफ़ वृन्दावन'। पापा क्या वे वृन्दावन में रही थीं?"

"मुझे इसकी जानकारी नहीं पर देख मुन्नी, कृष्ण, राम पर लिखने के लिए वृन्दावन, अयोध्या में रहना नहीं पड़ता। जो पंक्ति राम के लिए कही जाती है वह कृष्ण पर भी लागू होती है, राम तुम्हारा चरित् स्वयं ही काव्य है, कोई कवि बन जाय सहज सम्भाव्य है।"

"पापा लेकिन वह कविता थोड़ी बोर है।"

"अच्छा तुझे एक मज़ेदार बात बताऊँ। सरोजिनी नायडू ने आज़ादी की लड़ाई में महात्मा गाँधी के साथ मिलकर काम किया। जब गाँधीजी गिरफ्तार हो गये नमक क़ानून तोडने के जुर्म में, तो सरोजिनी ने आन्दोलन सँभाला। उन्होंने लोगों के साथ मिलकर दो घंटे तक नमक बनाया। फिर उन्हें भी गिरफ्तार कर जेल भेज दिया गया।"

"यह तो कोई मज़ेदार बात नहीं हुई पापा।"

"पूरी बात सुन ना। जब आज़ादी मिल गयी, सबने गाँधीजी से कहा, 'आप आराम से विशेष सरकारी भवन में रहो।' गाँधीजी अड़ गये कि मैं तो जनम भर आश्रम में रहा हूँ, अब भी वैसे ही कुटिया छवाकर रहूँगा। तब सरोजिनी बोलीं, बापू आपकी गरीबी देश को काफ़ी महँगी पड़ती है।"

"कैसे पापा?"

"नहीं समझी, अरे बुद्धू, अगर वे किसी सरकारी जगह में रह लेते तो अलग से उनका आश्रम क्यों बनाना पड़ता। इस सारे इन्तज़ाम के लिए कितना सरंजाम किया गया।"

मथुरा पास आ रही थी। मनीषा ने कहा, "मैं दादी को ये सब बातें बताऊँगी।"

"पता नहीं उन्हें होश भी है या नहीं," कहते हुए कवि उदास हो गया।

मनीषा भी सुस्त हो गयी। उसने जल्दी-जल्दी दोनों बर्थ की चादरें तहाकर रखने के लिए बैग उठाकर सीट पर रखा। जिप खोलते ही कवि की नज़र अपनी सिगरेट की डिब्बी पर पड़ गयी। उसने लपककर उठा ली, "यह तूने छुपा रखी थी, मैंने सोचा जेब से कहीं गिर गयी मुझसे।"

"पापा, घर चलना है, नो स्मोकिंग।"

"एक पी लेने दे। वहाँ तो पाबन्दी हो जाएगी। लौंग-इलायची तो है न।"

"ये लो," मनीषा ने छोटी-सी डिबिया पापा को थमा दी।

>>पीछे>> >>आगे>>

शीर्ष पर जाएँ

डाउनलोड मुद्रण

अ+ अ-

उपन्यास

दुक्खम्-सुक्खम्

ममता कालिया

अनुक्रम

पीछे

आगे

अध्याय 8

मथुरा का स्टेशन ज़रा भी नहीं बदला था। रेल रुकने के साथ प्लेटफार्म पर दो-तीन व्हीलर अख़बार के ठेले और मथुरा के पेड़े बेचते खोमचेवालों के अतिरिक्त गतिशीलता का कोई चिह्न वहाँ नहीं था। छह-सात कुली भी सुस्त खड़े थे। वे जानते थे कि इस स्टेशन पर ऐसे यात्री उतरते हैं जो अपना बुकचा ख़ुद उठाकर बाहर चल देते हैं।

इसी तर्ज में कवि ने सूटकेस उठाया और मनीषा ने बैग। दायें हाथ की सीध में नानकनगर दिख रहा था पर कविमोहन को उतावली थी। उसने रिक्शा किया और बैठते ही कहा, "चल भैया नेक जल्दी है, 5 नानकनगर पहुँचा दे।" रिक्शे की सीट से वह पीठ टिकाकर नहीं बैठा। उसके चेहरे की बेचैनी देखकर मनीषा मन-ही-मन मना रही थी, हे भगवान, दादी कुशल से हों।

अप्रैल की धूप सुबह नौ बजे भी दनदना रही थी जब कवि और मनीषा रिक्शे से उतरे। घर के खुले दरवाज़े में चौदह-पन्द्रह साल की एक लडक़ी आकर ठिठकी और उन्हें देखकर फौरन अन्दर भागी "मामाजी आ गये, मामाजी आ गये।"

दादी तख़त पर पस्त पड़ी थीं। दादाजी दुकान पर जाने के लिए धोती के ऊपर कमीज़ पहन रहे थे।

कवि को देखते ही उनकी बौखलाहट फूट निकली, "तू अब आया है कबी, तेरी मैया तेरा नाम रट-रटकर बावली हो गयी रे। बहू कहाँ है और हमारी बिबिया। बड़ी देर लगाई बेटा, अब तू इसे सँभार। मेरे से ये नैया अब खेयी न जाय। देख, जामें नेक-सी जान बची भई है, जनै तेरे लिए या बच्चन के लिए।"

कवि ने पिता को शान्त किया। वह माँ पर झुक गया, "जीजी, जीजी आँखें खोलो, मैं कवि, तुम्हारा कपूत आ गया हूँ। जीजी तुम मेरा इलाज करो। दस दिनों में ठीक हो जाओगी। जे देखो, मुन्नी। तुम्हारी बीमारी की सुन भजी चली आयी। आँखें खोलो जीजी।"

विद्यावती ने बड़ा ज़ोर लगाकर आँखें खोलीं, आँख की पुतली में हल्की-सी पहचान टिमकी, फिर धूमिल हो गयी। वे फिर बेसुध हो गयीं।

कवि को रुलाई आ गयी, "मोय पहले च्यों नायँ बतायौ! मेरी जीजी का यह हाल हो गयौ!"

दादाजी बोले, "रोज़ थोड़ी-थोड़ी तबियत गिरती गयी। वह तो कहो कुन्ती ने अपनी छोरी ये बिरजो भेज दी नहीं तो मरण ही था।"

"यह बिरजो है?" कवि ने अचरज से देखा। मनीषा से आठ महीने छोटी ब्रजबाला, चार भाई-बहनों में आखिरी नम्बर पर थी। स्वस्थ ठिगनी काया में वह मनीषा से बड़ी लग रही थी।

"मामाजी चाय बनाऊँ?" बिरजो ने पूछा। वह जानती थी उसके मामा को चाय का शौक था।

"मुन्नी बनाएगी।" कवि ने कहा।

मनीषा, बिरजो के पीछे रसोई में चली गयी।

"कौन डॉक्टर को दिखाया?"

"बारी-बारी कई जने आकर देख गये। अब तू आयौ है तो तू सँभार। कित्ते दिनों से कारोबार मुनीम पे छोड़ा हुआ है। मैं जाता हूँ।"

तभी हाथ में थाली लेकर लपकती हुई बिरजो पहुँची, "नानाजी पहले खायबे को खा लो।"

नत्थीमल ने स्नेह से नतिनी को देखा, "देख रहौ है कबी, कित्ती सेवा नानी की, कित्ती मेरी इस छोरी ने की। बड़ा पुण्य मिलेगा इसे।"

पिता के जाने पर कवि ने माँ की दवाओं के पर्चे देखे। बिरजो से पूछा, "कौन-सी दवाइयाँ खा रही हैं जीजी?"

"चार दिना से तो सुध ही नायँ नानी को। नानाजी ने कहा, जब होश आयगा तब दवा मँगाएँगे।"

कवि का गुस्सा एक लपट की तरह लहरा उठा, "क्यों, मैं पूछता हूँ क्यों? एक भी गोली बिरान ना जाय इसलिए। जीजी मरासु पड़ी है और दादाजी रुपये आने पाई गिन रहे हैं। ला मुझे पर्चा दे मैं लाऊँ दवाइयाँ।"

कवि पास के केमिस्ट से दवाइयाँ लेकर आया। सडक़ के मोड़ पर छेदीलाल मिले। कवि ने उन्हें प्रणाम किया। वे बड़े ख़ुश हुए, "अब तेरी मैया जी जाएगी। हफ्ता भर पहले रात में बाथरूम जाते समय आलमारी से टकरा जो गयी ही। कनपट्टी में चोट लगी, तभी से बेसुध है। हमने तो नत्थीमल से कही, बड़े अस्पताल ले जाकर दिमाग का एक्सरे करवाओ, पर नहीं, वह तो यहीं के डॉ. चतुर्वेदी का इलाज करते रहे।"

कवि को घर में और भी बातें पता चलीं। माँ का मधुमेह बहुत बढ़ गया था। चाय में उन्होंने चीनी पीना छोड़ा नहीं था। बिरजो ने बताया, "मामाजी कभी मैं चाय में नेक कम चीनी डारूँ तो नानी चाय का गिलास सरका दें-ले जा मोय नायँ पीनी तेरी अलोनी फीकी चा। नानाजी लाख समझायँ, नानी मीठा खाना छोड़ें ही नायँ।"

दवा, सेवा और परहेज के पालन से विद्यावती की तबीयत कुछ सँभली। बिरजो और मुन्नी ने कोई कसर नहीं छोड़ी। दोनों उनकी एक-एक बाँह पकडक़र उन्हें बाथरूम तक ले जातीं। मनीषा कहती, "जैसे गाँधीजी के अगल-

बगल आभा और मनु रहती थीं दादी, वैसे ही मैं और बिरजो तुम्हारी आभा-मनु हैं।"

दादी कुछ देर को प्रसन्न हो जातीं पर यह बात उनके मन पर बोझ बनी हुई थी कि बहू क्यों नहीं आयी। कवि और मनीषा के उत्तर एक से थे पर विद्यावती के सवाल विभिन्न। किसी भी वक्त वे स्वगत कथन करने लगतीं- 'बताओ, मैंने इन्दु के साथ क्या बुरा किया जो वह नहीं आयी। बेबी को भी रोक लिया। अरे इन्हीं गोदियों में ये छोरियाँ बड़ी हुई हैं। सच्ची पूछो तो कवि ने बहू को सिर चढ़ा रखा है।'

मनीषा दादी को समझाती, "नहीं दादी मम्मी तो आ जातीं पर दीदी का नाटक था न।"

"जे कौन-सी नौटंकी कम्पनी में छोरी को डाला है? बीच बाज़ार ढोल बजाती अच्छी लगेगी वह।"

कवि ने बताया, "यह नौटंकी नहीं, बड़े ऊँचे दर्जे के साहित्यिक ड्रामे होते हैं। तुम्हारी बिबिया अब बहुत अच्छा नाचने भी लगी है। पक्का गाना भी सीख रही है।"

दादाजी कहते, "हमसे तो तूने पूछी नायँ कि छोरियों को नाच-गाना सिखाऊँ। मुन्नी भी नौटंकी करै है का?"

कवि बोला, "नहीं मुन्नी की दिलचस्पी नहीं है इस तरफ़।"

"तेरे रेडियो में भी यही सब होता होगा, नाच-गाना नाटक?"

"नहीं दादाजी रेडियो में बड़े काम की बातें आती हैं। सुबह, दुपहर, शाम देश भर की ख़बरें आती हैं, हिन्दी, अँग्रेज़ी और मराठी में। कभी खेती पर प्रोग्राम आता है कभी सेहत पर। समझो चलता-फिरता स्कूल है रेडियो।"

"तेरे दफ्तर में रेडियो मिले तो एक यहाँ भी लेते आना।"

कवि ने कहा, "मेरे दफ्तर का नाम रेडियोस्टेशन है पर वहाँ रेडियो बनता नहीं है। उसके प्रोग्राम बनते हैं।"

इसी मौके पर कवि ने छुट्टी ख़त्म होने की बात शुरू की। उसे आये छः दिन हो रहे थे।

उसने दादाजी को पाँच सौ रुपये दिये, "दादाजी ये जीजी के इलाज के लिए हैं। और बिरजो तू यहीं रहेगी या वापस हिंडौन चली जाएगी।"

"बिरजो का नाम हमने किशोरी रमण में लिखवा दिया है, यहीं रहकर पढ़ेगी।"

कवि निश्चिन्त हुआ, नहीं तो भग्गो की शादी के बाद उसे यही लग रहा था कि माता-पिता अकेले रह गये।

दादी ने कहा, "जाने को तू जा पर मुन्नीऐ यहीं छोड़ जा। बिरजो और मुन्नी का मन लगा रहेगा।

उस समय तो मनीषा चुप रही ऊपर जाकर उसने कवि से कहा, "पापा हम साथ चलेंगे। आप चले गये तो हम वापस कैसे आयेंगे!"

"दादाजी कोई इन्तज़ाम करेंगे। तू दो हफ्ता रुक जा तो जीजी खड़ी हो जाएँ।"

पापा वह तो ठीक पर हमें यहाँ का टॉयलेट गन्दा लगता है, बाथरूम भी बेकार है।"

"परेशानी तो मुझे भी हुई पर क्या करें, यही अपना घर है।"

कवि ने जितनी बार मनीषा को साथ ले चलने की बात की, जीजी ने उसे घुडक़ दिया, "दस साल मेरे पास रही है छोरी अब दस दिना नहीं रह सकती!"

"इसके स्कूल की पढ़ाई का हर्ज होगा।"

"अब तो गर्मी की छुट्टियाँ होबे वाली होंगी। वापस जाकर पढ़ लेगी जो पढऩा है।"

"पर वापस कैसे जाएगी?"

"हम किसी के हाथ भिजवा देंगे।" दादाजी ने कहा।

कवि रात की गाड़ी से चला गया।

मनीषा उदास हो गयी। दादी नींद की गोली खाकर लेट चुकी थीं। दादाजी ने हरी किरमिच के रजिस्टर में दिन का खर्च लिखकर काम समेट लिया था।

बिरजो ने कहा, "चल मुन्नी खाना खाएँ।"

"मुझे भूख नहीं है।" मनीषा ने कहा।

बिरजो ने पास आकर उसके गाल सहलाये, "बावली है, मामाजी खाना खाकर सो भी गये होंगे। अच्छा एक पराँठा खा ले।"

दोनों ने इकट्ठे खाना खाया।

मनीषा ऊपर पापा के पुराने कमरे में सोती थी। वहाँ ज्या,दा सामान नहीं था। पत्रिकाओं और पुस्तकों से ठसाठस भरा एक रैक था, एक मूढ़ा और एक चारपाई। अपनी आदत के मुताबिक मनीषा रैक खखोरने लगी। धूल से अटी पड़ी थीं किताबें। पास पड़े गमछे से उसने किताबें झाड़ीं और सोचा सुबह ठीक से सफ़ाई करेगी। उसने पाया किताबों के बीच में दो-तीन डायरियाँ भी लगी हैं। एक डायरी उसने निकाली।

"अरे इसमें तो पापा की कविताएँ हैं।" मनीषा के मुँह से निकला।

वह डायरी लेकर बैठ गयी। बाप रे! पापा ने इतना लिखा है। सब कविताएँ पूरी नहीं थीं। कोई चार पंक्तियाँ लिखकर बीच में छोड़ दी थी, कोई अगले पृष्ठ पर फिर से शुरू की गयी थी। मोतियों की लड़ी-सी पापा की लिखावट स्पष्ट भी थी।

कविताएँ काफी कठिन हिन्दी में थीं। मनीषा ने दो-चार पढ़ डालीं लेकिन कम समझ आयीं। एक कविता पढऩे में मज़ा आया :

खाना खाकर कमरे में बिस्तर पर लेटा

सोच रहा था मैं मन ही मन, हिटलर बेटा

बड़ा मूर्ख है जो लड़ता है तुच्छ-क्षुद्र मिट्टी के कारण

क्षणभंगुर ही तो है रे। यह सब वैभव धन।

अन्त लगेगा हाथ न कुछ, दो दिन का मेला

लिखूँ एक ख़त हो जा गाँधीजी का चेला।

कुछ भी तो है नहीं धरा दुनिया के अन्दर

छत पर से पत्नी चिल्लायी 'दौड़ो बन्दर।'

मनीषा को माँ का ध्यान आ गया। इस वक्त क्या कर रही होंगी। उसके यहाँ रहने से माँ का तो हाथ टूट जाएगा। कौन सारे दिन बाज़ार के चक्कर लगाएगा। मनीषा को हल्की खुशी भी हुई। अब मम्मी क्या, दीदी को भी पता चलेगा मनीषा के बिना घर क्या चीज़ है।

कहीं-कहीं डायरी में गद्य लिखा था। मनीषा ने पहला पन्ना उलटकर देखा। पापा के हस्ताक्षर थे और सन् लिखा था 1945, यानी वह साल भर की रही होगी जब पापा इतनी भारी-भरकम बातें सोचने लगे थे। हिन्दी में यही मुश्किल है। क्लास में भी हिन्दी की मिस अपनी भाषा से अलग पहचानी जाती है। सब लड़कियाँ कहती हैं मिस बड़ी tongue twisting हिन्दी बोलती हैं। वे तो मिस शब्द पर भी एतराज़ करती हैं। उनका कहना है हिन्दी कक्षा में उन्हें बच्चे अध्यापिकाजी कहा करें। मनीषा की हिन्दी ठीक-ठाक है लेकिन आनन्द उसे इंग्लिश पढ़ने में आता है। हिन्दी मिस चंडोक का उच्चारण उसे अशुद्ध लगता है। वे संयुक्त अक्षरों को अलग करके बोलती हैं तो शब्द अजनबी हो जाते हैं। उनकी पुस्तक में 'सत्य हरिश्चन्द्र' पाठ को वे कहती हैं सत्य हरीशचन्दर। इसी तरह कृष्ण को किरशन कहती हैं। पता नहीं किसने उन्हें अध्यापिका बना दिया। इस पब्लिक स्कूल में बाकी लोगों की हिन्दी उनसे भी खराब है, इसलिए उनका काम चल रहा है। कविमोहन ने घर में नियम बना रखा है जो भी भाषा बोलो, सही, शुद्ध और त्रुटिहीन बोलो। पापा कहते हैं- Your language should be impeccable. वे इस फ़ैशन की हँसी उड़ाते हैं जिसमें बच्चे आधा वाक्य हिन्दी में और आधा इंग्लिश में बोलते हैं। एक बार मनीषा ने कहा, "आज मैं पहले स्कूल गयी, वहाँ से 'बन्द' तक वॉक किया, फिर घर तक वॉक किया, बहुत थक गयी।"

पापा ने कहा, "तुम पैदल चलीं या तुमने वॉक किया?"

"एक ही बात है पापा।" मनीषा ने कहा।

"नहीं, एक बात नहीं है। क्रियापद वाक्य का प्राणतत्त्व होता है। अगर वही आपने दूसरी भाषा में कहा तो वह हिन्दी वाक्य कहाँ रहा?"

"पापा सब ऐसे ही बोलते हैं!"

"तो हर बात में इंग्लिश क्रियापद का इस्तेमाल क्यों नहीं करतीं। कभी तुमने सुना है किसी को कहते कि मैंने आज देर तक स्लीप किया या देर तक ईट किया। फिर यह रियायत 'वॉक' को क्यों दी जाती है।"

मनीषा इस दलील की कायल हो गयी। पापा के सामने बोलने के मामले में अटैंशन।

डायरी में एक जगह लिखा था, "दादाजी ने मुझे मसूरी जाने से रोक दिया। मैं तो पैर पटककर जीजी को मना लेता पर क्या करूँ, रात में दादाजी की तबीयत ख़राब हो गयी। दमे का तेज़ दौरा पड़ गया। कक्षा के सारे बच्चे गये, बस मैं रह गया।"

एक और पन्ने पर लिखा हुआ था, "दादाजी मेरे प्रति बड़ी निष्ठुरता करते हैं। मेरी जिद पूरी करने की कौन सोचे, वे तो ज़रूरतों पर भी ख़र्च नहीं करना चाहते। मन करता है घर से भाग जाऊँ।"

मनीषा ने घबराकर डायरी बन्द कर दी। उसे लगा उससे अपराध हुआ है। डायरी तो किसी की एकदम निजी किताब होती है, उसे पढऩा क्या, देखना भी नहीं चाहिए।

नींद की गोली का असर हल्का पडऩे पर दादी की नींद आधी रात के बाद टूटी तो उन्होंने देखा ऊपर के कमरे में बिजली जली हुई है। उनका मन तो हुआ मुन्नी को आवाज़ लगाएँ पर यह सोचकर कि पास सोये दादाजी की नींद में ख़लल पड़ेगा, वे चुप लगा गयीं।

सुबह उठकर उन्होंने सबसे पहले मनीषा से जवाबतलब किया, "आधी रात तक बत्ती जलाकर का कर रई थी तू?"

उसके बोलने के पहले ही दादाजी बमक पड़े, "रात-रात भर बिजली जलै समझो रुपिया में आग लगै। जो काम रात में करो वह दिन में च्यों न कर लो, हैं?"

मनीषा ने धीरे से कहा,"मैं किताब पढ़ रही थी।"

"अरे दिन में पढ़। मेरे पास बैठकर पढ़ा कर। बिरजो को भी बिठा ले। ये भी पढ़ाई का गुन-ढब सीखे।"

बिरजो का मन पढऩे में ज़रा भी नहीं लगता था। आठवीं कक्षा में जब दूसरी बार फेल हो गयी तो राधेश्याम ने इसे हिंडौन से मथुरा भेजना सही समझा। उन्होंने कहा, "जब नानाजी की कड़ी निगाह में रहेगी, तभी इसकी आठवीं पार लगेगी। इसकी उमर की लड़कियाँ मैट्रिक कर लेती हैं।"

कुन्ती लडक़ी को मथुरा भेजने के पक्ष में नहीं थी पर पति के फ़रमान के आगे उसकी एक न चली। उसने अपने मन को समझा लिया, "चलो जीजी की सेवा हो जाएगी। क्या पता घर से दूर रहकर इसे अक्ल आ जाए।"

बिरजो का मन घर के काम में लगता या फिर गिट्टे खेलने में। पढऩे के नाम पर उसके हाथ में 'चन्दामामा' पत्रिका होती जिसकी एक-एक कहानी वह कई-कई बार पढ़ती।

मनीषा ने भी उससे लेकर चन्दामामा उलटी-पलटी। आधे घंटे में वह सारी कहानियाँ पढ़ गयी।

उसने ब्रजबाला से कहा, "अपना बस्ता ला, तेरी किताब-कॉपी देखूँ!"

"बाद में लाऊँगी, अभी दाल चढ़ा दूँ।"

"दाल बाद में हो जाएगी, पहले बस्ता ला।"

दो दिन के टालमटोल के बाद ब्रजबाला हाथ आयी। उसका बस्ता पुराना था पर किताब-कॉपी एकदम नयी थीं। सब पर करीने से बाँस के कागज़ की जिल्द चढ़ी हुई। सफेद चिप्पी पर नाम कक्षा आदि लिखा हुआ। लेकिन किताबों को देखकर ही पता चल रहा था कि ये बहुत कम खोली गयी हैं। कई किताबों के पन्ने चिपके हुए थे। कॉपियों में प्रश्न लिखे थे, उनके उत्तर नदारद। मनीषा ने अचरज से पूछा, "बिरजो तेरा इम्तहान हो गया?"

"हम्बै, तू आयी उसी दिन ख़त्म हुआ।"

"रिज़ल्ट कब आएगा?"

"का पता!"

मनीषा ने कहा, "तेरी किताब-कॉपी तो कोरी की कोरी पड़ी हैं, कुछ लिखा भी कि ऐसे ही कागज़ धर आयी।"

"मैंने तो खर्रे पे खर्रे लिख डारे, सच्ची।"

"ये कापियाँ कोरी क्यों पड़ी हैं?"

"टीचर ने पूछा ही नहीं। क्लास में बैठी स्वेटर बुनती रहती है वह।"

लाला नत्थीमल गरम होकर बोले, "चल, मैं चलकर पूछूँ तेरे स्कूल में। पाँच का पत्ता फीस जावे है तेरी और पढ़ाई का जे हाल।"

बिरजो रणक्षेत्र से पलायन कर गयी, "खाना बनाने को अबेर हो रही है।" कई बार, कई तरह से फुसलाने के बाद ब्रजबाला किताबों के साथ हाथ आयी।

वैसे ब्रजबाला इतनी प्यारी, गुदकारी और हँसमुख थी कि उस पर गुस्सा करने का मन ही नहीं होता। मिनटों में वह चाय बना लाती। जीजी का पानदान नमक-नींबू से रगडक़र ऐसा चमचमा देती कि लगता वह सोने का बना है। सुबह आँगन, पौली धोकर घर को स्वच्छ बना देती। उसके हाथ में इतना स्वाद था कि मामूली दाल-चावल भी राजसी भोज का आनन्द देता।

मनीषा ने इतिहास की पुस्तक के पन्ने पलटे। बुद्ध और जैन धर्म वाले अध्याय में उसने गौतम बुद्ध का चित्र देखकर पहचान लिया, "बिरजो ये वही तस्वीर नहीं है क्या जो म्यूजियम में रखी है।"

"कहाँ?"

"मथुरा संग्रहालय में। मैंने दो साल पहले देखी ही।"

"गये तो हम भी हैं एक दफे। इत्ता ध्यान नहीं आ रहा। मुन्नी जीजी हमें एक बार ले जाकर दिखा दो न।" बिरजो ने जिद की।

दादी ने इजाज़त दे दी। मथुरा का म्यूजियम कौन दूर है। मुश्किल से आठ आने की दूरी है रिक्शे में।

एक दिन दुपहर में मनीषा और ब्रजबाला म्यूजियम जाने के लिए निकलीं। दोनों ने तय किया, रिक्शे के पैसे बचाकर पैदल चला जाए। उन पैसों की चाट-पकौड़ी खा लेंगी, और क्या! बातों में रास्ते का पता ही नहीं चला।

यह दोपहर का समय था। धूप तेज़ थी। संग्रहालय के बाहर उतनी चहल-पहल नहीं थी जितनी शाम को होती थी। यही गनीमत थी कि संग्रहालय के ठीक सामने, ज़रा दाहिने, बाबाजी की प्याऊ थी। इस प्याऊ का पानी बड़ा ठंडा और सुगन्धित था क्योंकि बाबाजी हर मटके के अन्दर पुदीने की पत्तियाँ डालकर रखते थे। सब मटकों के ऊपर लाल कपड़ा पड़ा रहता जिसे वे पानी से तर करते रहते। दोनों लड़कियों ने जी भरकर पानी पिया।

संग्रहालय के मुख्य सभागार में पन्द्रह-बीस दर्शक थे और अगल-बगल के कक्षों में कुछ छात्र सिक्कों और धातु के अवशेषों का अध्ययन कर रहे थे।

मनीषा को संग्रहालय के केवल मुख्य सभागार में रुचि थी। पुरानी पांडुलिपियों, सिक्कों, आभूषण और बर्तनों को देखकर उसे ऊब लगती। हर पाषाण-प्रतिमा के नीचे उसका परिचय और सन् लिखा हुआ था। वैसे मनीषा को इन पाषाण-खंडों से अधिक उनके आधारपीठ अच्छे लगते। काठ के विशाल खंड पर रखा पत्थर का अनगढ़ टुकड़ा अपने आप विशिष्ट लगने लगता।

गौतम बुद्ध की खंडित प्रतिमा संग्रहालय के मुख्य-पीठ पर स्थापित देख ब्रजबाला को कौतूहल हुआ, "मुन्नी मेरी किताब में से चलकर यह मूर्ति यहाँ कैसे आ गयी?"

मनीषा ने कहा, "बुद्धू बिरजो, यह मूर्ति वहाँ से नहीं, यहाँ से चलकर तेरी किताब तक पहुँची है, तेरी क्या इतिहास की हर किताब तक पहुँची है। इसी की फोटो बनाकर छापी गयी है।"

"अच्छा चल अब यहाँ से। बाहर चलकर पानी के बताशे खायें।"

"बताशे तो मीठे होते हैं। हम तो पानीपूरी खाएँगे।"

"अब तू हो गयी है बम्बई पूना वाली। कल तक तू भी तो इन्हें बताशे कहती थी।"

"दिल्ली में इन्हें गोलगप्पे कहते हैं।"

"एक ही चीज़ है कुछ भी कह।"

पूरा हॉल क्रॉस कर वे दोनों प्रवेश-द्वार के बरामदे तक आयीं। वहाँ यक्षिणी की विशालकाय प्रतिमा के पास एक गंजा ठिगना-सा आदमी कुछ झुककर खड़ा हुआ था। जैसे ही इन लड़कियों पर उसकी नज़र गयी, वह सकपकाकर वहाँ से हटा। ब्रजबाला को शायद इस स्थिति का पहले से अनुमान था, वह आदमी लडख़ड़ाता हुआ बाहर जाने

लगा। उसका चेहरा विचित्र और विकृत लग रहा था। ब्रजबाला ने मनीषा को दिखाया, "यह देख, क्या करके गया है यह!"

मनीषा कुछ नहीं समझी।

ब्रजबाला ने फिर बताया, एकदम उसके कान में "इस मूर्ति की वह जगह एकदम गीली और चिकनी हो रही है। मैंने पहले भी सुनी थी यह बात। दोपहर में लोग यही करने यहाँ आते हैं।"

"कहाँ, क्या?" मनीषा हवन्नक-सी उस प्रतिमा को देखने लगी पर उसे कुछ नज़र नहीं आया।

सामने के हॉल से कुछ लोग आते देख, ब्रजबाला उसका हाथ खींचकर बाहर के फाटक की तरफ़ बढ़ गयी, "तेरा सिर और क्या?"

फाटक के बाहर सिर पर अँगोछा लपेटे दुकान का मुनीम जियालाल खड़ा था।

"तुम यहाँ धूप में क्या कर रहे हो?" ब्रजबाला तुनककर बोली।

"हमें लालाजी ने भेजा कि तुम छोरियों को लिवा लाओ।"

"हम का कोई दूधपीती बच्ची हैं जो तुम लिवा लाओगे।" ब्रजबाला बिगड़ी।

"उस पर क्यों किल्ला रही है, वह तेरा कहा माने या बाबा का?" मनीषा ने कहा।

दोनों का मूड उखड़ गया। गोलगप्पे खाने का ध्यान भी नहीं आया। वे एक गुज़रते रिक्शे को रोककर बैठ गयीं। रास्ते में मनीषा ने कहा, "हमें दादी को आज की यह बात बतानी चाहिए।"

"घनचक्कर है क्या। नानी वह चाँटा लगाएगी कि याद रखेगी।"

"मुझे तो ठीक से समझ भी ना आयी पर अगर तूने कोई ख़राबी देखी है तो घर पर बताना ज़रूर चाहिए।"

ब्रजबाला ने मुँह फुलाकर कहा, "तू तो चार दिना को आयी है, वापस भज लेगी। मेरे ऊपर ऐसी तालाबन्दी बैठ जाएगी कि पूछो मत। फिर बताने से क्या होगा। नानी क्या कोतवाल है जो अजायबघर बन्द करवा दे।"

इस दलील में दम था। मनीषा चुप लगा गयी लेकिन उस रात उसे नींद नहीं आयी। वह देर तक सोचती रही कि ऐसी क्या ख़राबी थी जो बिरजो को दिख गयी पर उसे पता नहीं चली।

आखिरकार उसे लगा चलो हमें क्या। अगले दिन से ही उसने ग़ौर किया कि बिरजो उससे छोटी होने पर भी ज्या दा सयानी थी। घर के छोटे-बड़े कामों में वह पुरखिन की तरह युक्ति लगाती। कभी नाना कहते, "यह रोटी ठंडी आँच की है, दूसरी ला।" वह उसी रोटी को फिर से सेककर दे आती। एक दिन चने की दाल बटलोई में गल ही नहीं रही थी, बिरजो ने सिलबट्टे पर दाल पीसकर तुरन्त दाल तैयार कर दी। नानी रोज़ दोनों वक्त अपने छोटे-से खल्लड़ में भुने चने कुटवाया करतीं ओर उसकी रोटी खातीं। यह मधुमेह पर क़ाबू रखने का उनका नुस्खा था।

बिरजो आटे में कच्चा बेसन मिलाकर रोटी सेक देती। अगर नानी कहतीं, "मोय तो रोटी में कचाँध आ रही है।" बिरजो कहती, "इस बार चने ठीक से भुने नहीं हैं नानी।"

मनीषा को लगता अगर बिरजो का झूठ पकड़ा गया तो क्या होगा लेकिन बिरजो पूरे धड़ल्ले से अपना काम किए जाती।

कई वर्ष पहले दादी ने बेबी-मुन्नी को गली की पीली कोठी के छज्जे पर बैठा एक आदमी दिखाकर बताया था, "यह देखो छोरियो छदम्मीमल। मंडी के बहुत बड़े ब्यौपारी हैं।

प्रतिभा ने फौरन पूछा, "दादी इनका मुँह टेढ़ा क्यों है?"

दादी ने कहा, "जेई तो मैं बता रही हूँ। छदम्मीमल बहुत झूठ बोलते थे। बात-बात में झूठ। देखो भगवानजी ने कौन दशा कर दी इनकी। झूठ बोलने से मुँह टेढ़ा हो जावै है।"

बेबी-मुन्नी दोनों डर गयी। उन्होंने अपने मुँह पर हाथ रखकर कहा, "बाप रे! हम तो कभी झूठ नहीं बोलेंगे, नहीं तो हमारा मुँह भी ऐसा ही हो जाएगा।"

लाला नत्थीमल का स्वभाव पहले से नरम पड़ चुका था। अब घर में उनके क्रोध को झेलने वाले भी नहीं बचे थे। लेकिन उनकी शक़ करने की आदत वैसी की वैसी थी। वे अपना सारा रुपया घर की तिजोरी में रखते और समय-समय पर कमरे के किवाड़ लगाकर पूरी रोकड़ गिनते। घर में दो तिजोरियाँ थीं। एक दिन उन्होंने मनीषा से कई गड्डियाँ गिनवायीं। चौड़े-चौड़े सौ के नोट, मोटे डोरे से बँधे हुए थे। जब मनीषा ने बिना किसी गलती के कई गड्डियाँ एकदम ठीक गिन दीं, लालाजी प्रसन्न हो गये, "है तू पक्की लाला नत्थीमल की नतनी, मान गये उस्ताद!"

मनीषा ने कहा, "बाबा आप ये सारे रुपये बैंक में क्यों नहीं रखते हो। घर में चोरी होने का ख़तरा है।"

दादाजी बोले, "बैंक में तो और ज्यांदा ख़तरा जानो। कभी बैंक का दिवाला पिट जाय तो समझो सारी रकम डूब जाय।"

कुछ साल पहले मथुरा में लक्ष्मी कमर्शियल बैंक का दिवाला पिट गया था और बहुत-से उसके खाताधारी कंगाल होकर सडक़ पर आ गये थे।

"सरकारी बैंक में रखें तो फेल नहीं होता वह।"

"तू बावली है, देख तुझे रुपये का कायदा समझाऊँ। यह देख यह दस का नोट है। इसे मैं नेक देर बाहर की हवा लगाऊँ तो यह भुस्स हो जायगौ।"

मनीषा हँसने लगी, "बाबा जब तक इसे बाज़ार की हवा नहीं लगाओगे यह कैसे भुस्स होगा।"

"वो ही तू नहीं जानै। रुपये का स्वभाव चलायमान होवे। बाज़ार न भी जाओ, कोई तुम्हारे हाथ में देख ले तो उधार माँग लेगा, और कुछ नहीं तो घरवाली को कोई चीज़-बस्त लेनी याद आ जायगी या कहीं रख के भूल जाओगे।"

मनीषा कौतुक से अपने बाबा को देख रही थी जो जितनी बार 'रुपया' शब्द बोलते, अपना मुँह थोड़ी देर खुला रखते।

एक शाम मनीषा और ब्रजबाला आँगन में बैठकर गिट्टे खेल रही थीं कि मनीषा को बड़ी ज़ोर से पेट दर्द हुआ। 'ओह माँ' करती हुई वह वहीं लेट गयी। उसे लगा उसके अन्दर से कोई पिघलता हुआ लावा बाहर बहा जा रहा है।

ब्रजबाला अन्दर से दादी को बुला लायी। दादी ने फौरन ब्रजबाला से कहा, "इसे बाथरूम लेकर चल।"

दादी के निर्देशन में बिरजो ने मनीषा को साफ़-सुथरा कर दिया।

दादी बोलीं, "मुन्नी अब तेरे दूध के दाँत टूट गये, आगे से लड़कियों की तरह चलना सीख, पहरना सीख। अब तू बड़ी हो रही है।"

बिरजो ने कहा, "अम्मा ने तो मोसे कहा था अब तू लुगाई बन गयी छोरी।"

मनीषा बहुत डर गयी। यह क्या मुसीबत लग गयी उसके पीछे कि न अब दौडऩा, न उछलना, न कूद-कूदकर चलना। उसने कहा, "दादी चलकर डॉक्टर से हमारी मलहम-पट्टी करवा दो, हम ऐसे नहीं रहेंगे।"

दादी ने कहा, "पगली इसकी मलहम-पट्टी घर में ही होती है। और अब चौके में मत जाना।"

लो बोलो। बन्दिश तो मनीषा को तनिक बरदाश्त नहीं। उसे बड़ी ज़ोर से अपना घर याद आया।

"तू तो सुच्ची है न बिरजो!" दादी ने पूछा।

बिरजो ने गर्दन हिलाकर हामी भरी।

दादी ने मनीषा को पुचकारा, "चल तू मेरे कमरे में बैठकर मोय गाँधीजी की किताब सुनाया कर।"

मनीषा ने एक रात किताबों का अनुसन्धान करते हुए उन्नाबी किरमिच में बँधी महात्मा गाँधी की 'सत्य के प्रयोग' पुस्तक ढूँढ़ निकाली थी जिसके पहले पृष्ठ पर पापा की लेखनी में लिखा हुआ था-'जीवनसंगिनी प्रिया इन्दुमती को उपहारस्वरूप भेंट।' वह उसके कई अध्याय पढ़ गयी। उसे ताज्जुब यह हुआ कि जहाँ कई अन्य महापुरुषों की आत्मकथाएँ एकदम नीरस और निगूढ़ थीं, महात्मा गाँधी की आत्मकथा सरल और सुबोध थी। छोटे-छोटे अध्याय थे जो हर बार नयी कहानी का आनन्द देते।

मनीषा बोली, "दादी आधी किताब तो मुझे याद हो गयी, तुम मुँहज़ुबानी सुन लो।"

महात्मा गाँधी के लडक़पन के प्रसंग सुन दादी विभोर हो गयीं। बोलीं, "हे भगवान कित्ते सच्चे थे गाँधी बाबा! अरे अपनी गलतियाँ भी लिखकर चले गये। बताओ वे चाहते तो का झूठ नहीं लिख सकते थे?"

मनीषा ने कहा, "दादी, पापा कहते हैं झूठ लिखा तो कहानी होती है, सच लिखो तो आत्मकथा।"

बाबा की आदत थी वे अपने तख्त पर बैठकर कामकाज में लगे रहते मगर एक कान से हर बात सुनते रहते। वे फ़ौरन बोले, "तभी तेरा बाप झूठी कहानी बना-बनाकर रेडियो पर सुनावै है।"

"पापा तो कभी झूठ नहीं बोलते।" मनीषा ने तुरन्त प्रतिवाद किया।

"बोलने की नहीं, मैं लिखने की कह रहा हूँ। शरमनलाल बता रहे थे, जेई घर के बारे में जाने कौन-कौन-सी बातों के जोड़-मेल से ड्रामा बनाया वा ने। उसका नाम भी बताया गया रेडियो में, कविमोहन अग्रवाल।"

"कौन-सी तुमने अपने कानों से सुनी जो पूछ रहे हो?" दादी ने बेटे का बचाव किया।

"असल बात यह नहीं है। सच्ची बात यह है कि छोरे को अपने घर से, अपने माँ-बाप से राई-रत्ती भी मोह नायँ। उसने कभी सोची बहनों के ब्याह हो गये, मेरे माँ-बाप कैसे रहेंगे अकेले। नहीं वह तो सरकारी अफ़सर बनेगा, कुर्सी तोड़ेगा।"

दादी को गुस्सा आने लगा, "तुमने कभी छोरे से मोह दिखाया। हमेशा दुर-दुर करते रहे। प्यार वह चीज़ है जो बाँट-तराजू से नहीं तोली जावै। तुमने बाँट-तराजू के सिवा कुछ जाना ही नायँ।"

लाला नत्थीमल की आँखें लाल होने लगीं, "जे लड़कियाँ घर से जायँ तो तुझे मैं ठीक करूँ, बक-बक करना बहुत आ गया है तुझे!"

मनीषा को बाबा के गुस्से से डर लगता था। उनका चेहरा खिंच जाता, माथे की एक नस उभरकर फडक़ने लगती और उनके हाथ-पैर काँपते। ऐसा लगता जैसे वे अभी किसी को मार देंगे या शाप दे देंगे। बिल्कुल इसी तरह की मुद्रा उसने पापा की भी देखी थी। पापा कभी-कभी गुस्सा करते लेकिन जब करते तब पूरा घर थर्रा जाता।

मनीषा कमरे से बाहर आ गयी। बिरजो चौके में खटर-पटर कर रही थी। मनीषा ने उसकी तरफ़ क़दम बढ़ाये तभी उसे दादी की वर्जना याद आयी। बिरजो ने उसे रसोई में आने का इशारा किया, साथ ही मुँह पर उँगली रखकर चुप रहने का। मनीषा को यह छल क़बूल नहीं था। वह छत पर चली गयी।

उसका मन उचाट हो रहा था। पापा पर गुस्सा आया, हमें यहाँ फँसाकर चले गये और वहाँ से चिट्ठी तक नहीं लिखी। लिखना तो माँ को भी आता है पर किसी को मुन्नी की याद आये तब न। फाइनल यर की पढ़ाई सिर पर है और वह यहाँ टाइम ख़राब कर रही है।

जैसे आकाश के तारों और नीम की पत्तियों ने उसकी पुकार पापा तक पहुँचा दी, सोमवार को ही पूना से पापा की लम्बी-सी चिट्ठी आयी जिसके अन्त में मम्मी ने भी चार लाइनें लिखी थीं 'री मुन्नी तू वहाँ जाकर बैठ गयी। तुझे पता है तेरे बिना मेरा एक भी दिन नहीं कटता। बेबी चार रोज़ से दिल्ली गयी हुई है। जीजी की तबीयत सँभल गयी होगी। तू जल्दी से आ जा। एक दिन कान्ता भी घर आयी थी, तुझे न देखकर बड़ी झींकी।"

मनीषा का मन मम्मी-पापा के प्यार में सराबोर हो गया। मेरे मम्मी-पापा। देखा मुझे कित्ता चाहते हैं। कवि शैले की तरह उसका मन हुआ कोई उसे पेड़ का पत्ता बना दे, चिडिय़ा बना दे, कागज़ का टुकड़ा बना दे और वह उड़ती-उड़ती अभी पहुँच जाय पूना। वह स्टेशन रोड पर कान्ता के घर जाकर उसे चौंका दे। वह मम्मी को बन्द गार्डन पर

भेलपुरी खिला लाये। रात को पापा के पैरों में दर्द होता है। मनीषा नहीं है तो कौन उनके पैरों पर खड़ा होता होगा। यकायक मनीषा वर्तमान में लौटी। उडऩा तो दूर इस वक्त तो वह ठीक से चल भी नहीं पा रही। ऐसा लग रहा है जैसे टाँगों के बीच में बिस्तरबन्द बँधा है।

विद्यावती ने कहा, "इत्ती दूर छोरी अकेली कैसे जायगी?"

लालाजी ने कहा, "दो एक जने से बात कर के देखूँ, ऐसे परदेस में बैठा है छोरा कि जल्दी कोई वहाँ जाने को तैयार भी नहीं होगा।"

"बलराम से पूछो, उसे घूमबे-फिरबे का शौक है।" विद्यावती ने सुझाव दिया।

लीला बुआ का बड़ा लडक़ा बिल्लू ही अब अपने पूरे नाम बलराम से पुकारा जाता था। उसने चक्की का काम छोटे भाई गिल्लू उर्फ गिरीश को थमा दिया था और खुद खादी भंडार में सेल्समैन हो गया था। उसकी शादी इटावा के एक व्यापारी परिवार की लडक़ी कालिन्दी से हो गयी थी। कभी-कभी वह आकर नाना-नानी का हाल देख जाता।

बलराम के हामी भरने पर बाबा ने पूना के दो टिकट कटाये। बिरजो मचलने लगी, "हम भी जाएँगे मुन्नी के संग। हमने तो हिंडौन और मथुरा छोड़ और कुछ देखा ही नायँ।"

लालाजी ने डाँट लगायी, " चुप्पे से यहाँ बैठकर पढ़ाई कर। फेल हो गयी तो हमारी नाक कटाएगी।"

मनीषा का थोड़ा-सा सामान था, एक थैले में समा गया। लेकिन दादी को चैन कहाँ। उन्होंने कहा, "मथुरा से कोई पेड़े लिये बिना भी जाता है। और मुन्नी चूसमा आम कवि को बड़े भायें, एक डोली ले जा।" लीला बुआ ने घीया के लच्छे और खुरचन भिजवा दी। बाबा ने बड़े सुन्दर कपड़े का एक थान बाज़ार से ला दिया, "दोनों बहनें अपने सलवार-कमीज़ बनवा लेना, बड़ी हो गयी हो, फ्रॉक मत पहरा करो।"

मनीषा को थोड़ी झेंप लगी। कहीं बाबा को उसके पेट दर्द का पता तो नहीं चल गया। उसका बस चलता तो अपने दादी-बाबा के आगे अनन्त काल तक बच्ची ही बनी रही आती। चलते वक्त दादी ने मनीषा को घपची में भरकर ख़ूब दुलार किया, "अब तू हर छुट्टी में अइयो अच्छा।" बाबा ने उसे दस रुपये का नोट देकर आशीर्वाद दिया।

वापसी का सफ़र आगमन के सफ़र जैसा नहीं था। इस बार आरक्षण तो करवाया नहीं गया था। सामान्य डिब्बे में ठूँसमठूँस मुसाफिर भरे हुए थे। जिस भी डिब्बे के दरवाज़े पर वे जाते लोग कहते, आगे जाओ यहाँ जगह नहीं है।

बलराम ने एक डिब्बे में लोगों को धक्का-मुक्का देकर किसी तरह चढऩे लायक गुंजाइश निकाली। गरमी से सबका बुरा हाल था। कानपुर पहुँचने पर उन्हें बैठने की जगह मिली। खिडक़ी वाली सीट बलराम ने ले ली, "यहाँ कोयला उड़ेगा, तू सामने वाली सीट पर बैठ।"

रात सोने से पहले मनीषा को टॉयलेट जाने की ज़रूरत पड़ी। वह यात्रियों के बीच जगह बनाती किसी तरह गयी लेकिन वहाँ का दृश्य देखकर उलटे पैरों लौट आयी। टॉयलेट के दरवाज़े तक लोग अपने असबाब समेत ज़मीन पर बैठे हुए थे। कई मुसाफिर तो बैठे-बैठे सो रहे थे।

बलराम ने पूछा, "क्या हुआ, मुँह क्यों बना लिया?"

"कुछ नहीं।" मनीषा बोली।

"बाथरूम जाना है तुझे, चल मैं रास्ता बनाऊँ।" बलराम आगे-आगे चला।

बलराम पहलवान की तरह लम्बा और बलिष्ठ था। सिर पर चोटी, बदन पर खादी का कुर्ता-पाजामा, लोग दूर से उसे नेता या लठैत समझते। उसके जाते ही ज़मीन पर बैठे लोगों ने सिकुड़कर इतनी जगह निकाल दी कि मनीषा एक पाँव टिकाती टॉयलेट में घुस पायी।

टॉयलेट का अन्दर का नज़ारा और भी भयानक था। नल में से टोंटी ग़ायब थी और ज़ंजीर से मग। इससे पहले मनीषा ने हमेशा आरक्षित डब्बों में सफ़र किया था। सरकारी तबादलों में वे सब प्रथम श्रेणी में यात्रा किया करते थे। वहाँ टायलेट साफ़ हुआ करते। एक ही राहत थी। मनीषा का रक्तस्राव रुक गया था। उसने अपने को बन्धनमुक्त किया, बहते नल से हाथ स्वच्छ किये और मन-ही-मन भगवान को याद किया, हे भगवान यह तबालत अब फिर कभी न हो।'

बिरजो ने रास्ते के लिए पूरियाँ, आलू की सूखी सब्ज़ी और भरवाँ करेले रख दिये थे। ठीक यही खाना बुआ ने बलराम के साथ रखा। देखकर मनीषा को हँसी आ गयी। उसे लगा इस डिब्बे में हर मुसाफिर के पास यही खाना निकलेगा। जब चखकर देखा तो अन्तर समझ में आ गया। दोनों खानों के स्वाद में फ़र्क था, मिर्च-मसाले में, यहाँ तक कि शक्ल-सूरत में भी। मम्मी की बात याद आयी कि चीज़ वही होती है पर हर हाथ के साथ खाने का स्वाद बदलता है।

तीस घंटे के लम्बे सफ़र में न नींद मिली न आराम, केवल घर पहुँचने की ललक ने मनीषा को सजग रखा। पूना स्टेशन पर उतरकर उसे लगा जैसे वह बरसों बाद अपने शहर लौटी है। उसकी फ्रॉक काफ़ी मैली हो गयी थी और बाल बिखर गये थे। बलराम का भी हुलिया ख़राब था। सफेद कुर्ता-पाजामा इस वक्त तक चितकबरा लग रहा था, उसमें रास्ते की इतनी धूल और इंजन की कालिख समा गयी थी।

जब वे घर पहुँचे माँ उन्हें देखकर खुश बाद में हुई, हक्की-बक्की पहले। पापा ऑफिस जा चुके थे। बलराम ने रिक्शे से उतारकर सामान अन्दर रखा।

"यह क्या धजा बना रखी है अपनी?"

"जनरल डब्बे में आये हैं, बैठे-बैठे।" मनीषा ने बताया।

"मामीजी प्रणाम!" बलराम ने इन्दु के पैर छुए।

"मैं तो पहचानी ही नहीं बिल्लू तू इतना बड़ा हो गया।" इन्दु ने जल्दी-जल्दी लीला बीबीजी का समाचार लिया और कहा, "तुम लोग एक-एक कर नहाते जाओ।"

खाने के बाद मनीषा अपने बिस्तर पर ऐसी सोयी कि शाम सात बजे उसकी नींद खुली।

कविमोहन दफ्तर से आकर चाय पी चुका था और अब बलराम के साथ मथुरा की बातें कर रहा था।

मनीषा रसोई में जाकर माँ के गले से झूल गयी, "मम्मी दीदी कब आएगी?"

"अभी छह दिन और लगेंगे। यूथ फेस्टिवल दस दिन का होता है, बाकी आने-जाने के तीन दिन और जोड़ लो।"

"किस आइटम में गयी है।"

"उसके कॉलेज से ग्रुप डांस का ड्रुप गया है। बैजू, सुनयना, द्राक्षा सब गयी हैं।" माँ ने आवाज़ थोड़ी दबाकर कहा, "ये कित्ते दिन रहेगा?"

"कौन?" मनीषा नहीं समझी।

"बिल्लू और कौन। इत्ती भारी ख़ुराक है इसकी बाप रे! कौन इसकी रोटियाँ बनाएगा!"

कवि को सबसे सुखद ख़बर यह लगी कि मन्नालाल आठ साल बाद घर वापस आ गये हैं। कहाँ रहे, कैसे रहे, कुछ नहीं बताते पर अब साधु-सन्तों का साथ एकदम छोड़ दिया है। चक्की पर भी नहीं जाते। बरामदे में बैठकर अख़बार पढ़ते रहते हैं। घर की अच्छी चौकीदारी हो गयी है। कोई धनिया-पुदीना भी लेने निकले तो उनसे पूछकर जाय।

"अब तो लीली दीदी खुश होंगी।" कवि ने कहा।

"अम्मा को दूसरे दुख हो गये हैं। अब वे बहुओं से परेशान रहती हैं और बहुएँ उनसे।"

"अब जीजाजी से लड़ती तो नहीं?" कवि ने शरारत से पूछा।

"अम्मा ज़रा नहीं बदलीं। बाबूजी से कहती हैं सुखवास की उमर में बनवास दे दिया, बनवास की उमर में कौन सुख देने आये हो?"

"पगली है, जीजाजी को गुस्सा आ गया तो फिर भाग खड़े होंगे।"

"पहले से काफ़ी झम गये हैं बाबूजी। कहते हैं मैं सगुन-निरगुन सब देख आया।"

"चलो बीबीजी के माथे से कलंक उतरा।" इन्दु ने कहा।

"ऐसा नहीं है। जैसी अकडफ़ूँ वे पहले थीं वैसी ही अब हैं। मजाल है पड़ोस में उनके गये बिना कोई करवाचौथ या सकट मना ले। अभी भी अपने को अमर सुहागिनों में गिनती हैं। उनका कहना है सुहागिनों में सबसे ऊँचा दर्जा उनका है।"

"पर अब तो ननदोईजी लौट आये।"

"इससे क्या। अम्मा अपने ऊपर तो मक्खी भी नहीं बैठने देतीं। कहती हैं, मोय का मिलौ। पहले इनके गये की बेडिय़ाँ पाँव में पड़ी रहीं, अब इनके आये की पड़ी हैं।"

इन्दु की मुख-मुद्रा भी सोचग्रस्त हो गयी। उसने कहा, "कहती तो जीजी सही हैं। पति घर में न हो तो लाख तोहमतें ऐसे ही लग जाती हैं। औरत का तो वह हाल है न मायके सुख न ससुराल सुख।"

"अम्मा की तो कोई ससुराल भी नहीं है। फिर भी वे दुखी दिखाई देती हैं।"

इन्दु बलराम से बात तो अच्छे से करती रहीं। उसे अपनी क्यारियाँ भी दिखलायीं। बस खाना खिलाते समय वह विचित्र व्यवहार करती। रात में ढेर से चावल बना दिये। बलराम ने धीमी आवाज़ में कहा, "मुझे बादी की शिक़ायत है, चावल तो मैं दिन में भी नहीं खाता।"

इन्दु ने भवें सिकोडक़र कहा, "इत्ती गरमी में मेरे से रोटी नहीं सेकी जाती, ब्रेड खा लो।"

कवि ने बात सँभालने की कोशिश की, "चलो आज हम सब बाहर चलकर खायँ, घूमना भी हो जाएगा।"

बलराम बोला, "मेरे लिए परेशान मत हो मामाजी, मुझे भूख ही नायँ।"

"हमें तो लगी है भूख।" कहकर कवि ने उसे मनाया।

इन्दु जल्दी से बन-ठनकर तैयार हो गयी।

मनीषा ने भी फ्रॉक बदली और बालों में नये रिबन लगाये।

बलराम ने मामी की तरफ सराहना से देखकर कवि से कहा, "हमारी मामीजी तो फिल्मस्टार लग रही हैं, एकदम नूतन जैसी।"

इन्दु ने अकड़ से कहा, "नूतन तो, लोग कहते हैं, काली है।"

पग-पग पर इन्दु का फूहड़पन झेलना कवि के लिए आसान न था, वह बलराम के सामने बहस कर तमाशा नहीं खड़ा करना चाहता था। उसने बरामदे में निकलकर सिगरेट सुलगा ली।

वे सब कैम्प स्ट्रीट में 'इंडस' में जाकर बैठे। यहाँ का टोमाटो सूप और तन्दूरी पराँठा मनीषा को बहुत पसन्द था। उसने पापा को बता दिया।

कवि हँसने लगा, "दोनो का क्या मेल है। पराँठे के लिए सब्ज़ी नहीं लेगी।"

इन्दु ने अपना पुराना सिक्का चलाया, "यह मेरे में से खा लेगी।"

कवि ने बिना उसकी तरफ़ देखे अपना ध्यान बच्चों पर फोकस रखा, "यहाँ थाली सिस्टम नहीं है। अपनी मर्जी का खाना मँगाने को इंग्लिश में a la carte कहते हैं।"

"पापा गलत! इंग्लिश में नहीं फ्रेंच में।" मनीषा चहकी।

पापा की गलती निकालने का मौक़ा भी कब-कब मिलता है उसे!

"इंग्लिश ने यह शब्द अपना लिया है तो इंग्लिश का ही माना जाएगा न। अच्छा इसका मतलब समझा दे। तू तो फ्रेंच पढ़ती है।"

दस्तूर स्कूल में मनीषा द्वितीय भाषा के रूप में फ्रेंच पढ़ रही थी। उच्चारण के सिवा उसे फ्रेंच भाषा की हर अदा पसन्द थी। उसने कहा, "इसका मतलब है, सूची में दिये गये हर व्यंजन की कीमत अलग-अलग है।" बलराम को हैरानी हुई, "इत्ती लम्बी बात के लिए बस दो-ढाई शब्द।"

"और क्या। फ्रेंच तो इंग्लिश से भी ज्यासदा समृद्ध है। आपने शादी के कार्डों के नीचे लिखा देखा होगा RSVP। यह भी फ्रेंच शब्द है respondez si'l vous plait मतलब 'कृपया उत्तर दें'।"

"अच्छा अब तू अपना ज्ञान मत बघार।" इन्दु ने कहा।

खाने के बाद जब वे बाहर निकले, बाज़ार अभी खुला हुआ था। 'दोराबजी' और 'स्पेन्सर्स' के बड़े स्टोर देखकर बलराम को बड़ा अचम्भा हुआ, हाँ खादी भवन यहाँ भी वैसा ही था जैसा मथुरा में। बलराम ने पूछा, "मामाजी क्या वजह है कि कुछ चीज़ें तो बहुत बदल जाती हैं पर कुछ वैसी ही पुरानी रही आती हैं।"

"बहुत अच्छा सवाल पूछा है तुमने बिल्लू। देखो समाज दो तरह से बदलता है, एक प्रकृति के नियम से, दूसरा सभ्यता के दबाव से। खान-पान, पहनावा और निवास पर प्रकृति का नियम लागू होता है। बाकी सब चीज़ों पर समय और सभ्यता का असर पड़ता है।"

"इतनी दुकानें बदलीं, इतना बाज़ार बदला पर खादी भंडार क्यों नहीं बदला?"

"तुम्हें पता है खादी भंडार गाँधीजी के सिद्धान्तों पर चलाए जाते हैं-सादा जीवन, उच्च विचार। बाकी दुकानों में जो भी तडक़-भडक़ डाली जाती है उसका ख़र्च तो ग्राहक की जेब से ही जाता है न।"

"मामाजी अगर आपको अबेर न हो तो मैं नैक यहाँ का खादी भंडार देख आऊँ।" बलराम कहने के साथ ही अन्दर चला गया।

वे तीनों बाहर शो विंडो के पास खड़े थे। कवि ने कहा, "मेरा मन है लीली दीदी को खादी सिल्क की एक बढिय़ा साड़ी भेजूँ। बलराम ले जाएगा।"

"बीबीजी ने तुम्हारे लिए कछु भेजा जो तुम भेजने की सोच रहे हो।"

"लीली दीदी हमेशा मुझे देती रही हैं। तुम हर चीज़ में अड़ैंच क्यों डालती हो।"

"अड़ैंच कहाँ, मैं तो कह रही थी बलराम खादी भंडार में काम करता है, जितनी मर्जी साड़ी खरीदे और माँ को पहराये।"

बात आयी-गयी हो गयी। लेकिन कवि के कलेजे में उसकी फाँस चुभी रह गयी। ऐसे ही लमहों में उसका मन अपने घर से उचाट हो जाता। उसे लगता जैसे वह अपने नहीं किसी और के घर में रह रहा है। सबके निमित्त वह कमाता रहे, अपने निमित्त कुछ भी करने की आज़ादी उसे नहीं है। उसे यह भी लगता कि घर-परिवार में अगर इतनी

जकड़बन्दी रही तो वह दिन दूर नहीं जब घर-परिवार समाप्त हो जाएँगे। अपने प्रिय कवि की पंक्तियाँ उसे कई बार याद आतीं-'घर रहेंगे हमीं उनमें रह न पाएँगे' या 'जब-जब सिर उठाया, अपनी चौखट से टकराया'।

अगले दिन बलराम की वापसी थी। वह बड़े सवेरे उठकर नहाकर तैयार हो गया। इन्दु ने कहा, "तुम्हारी गाड़ी तो ग्यारह बजे है, तुमने अभी से सामान बाँध लिया।"

"बस मामीजी, घर में सब रास्ता देख रहे होंगे। और खादी भंडार पर तो उससे भी ज्यादा। सबसे पुराना वर्कर तो मैं हूँ, बाकी तो आते-जाते रहते हैं।"

"यहाँ मन नहीं लगा तुम्हारा?" इन्दु ने पूछा।

"ऐसी बात नहीं है मामीजी। आपने वह मिसल सुनी होगी न,

मथुरा की छोरी और बिन्दावन की गाय

जो और कहीं ब्याहो, तो भूखी रह जाय।"

इन्दु कुछ शर्मिन्दा-सी वहाँ से हट गयी। उसे लगा वह बलराम के साथ कुछ ज्योादा बेदिली दिखा गयी। पर अब क्या हो सकता था।

वह कवि के पास गयी और दबे स्वर में बोली, "क्यों जी तुम्हारे कुरते-पाजामे का कोरा कपड़ा जो रखा है, बलराम को दे दें।"

कवि बोला, "रहने दो, वह तो कपड़ों के बीचोंबीच बैठा है, जो मर्जी बनवा ले।"

इन्दु भुनभुनाती वहाँसे चली गयी, "मेरी तो कोई बात इन्हें अच्छी ही नायं लगे।"

38

तालकटोरा बाग में हुए दस दिवसीय यूथ फेस्टिवल में समूह नृत्य प्रतियोगिता में पूना विश्वविद्यालय ने प्रथम स्थान पाया। सभी अख़बारों में इस आइटम की तस्वीर छपी। कवि-परिवार ने आँखें गड़ाकर प्रतिभा को पहचानने की कोशिश की। समूह नृत्य में कुल छह लड़कियों का झुंड था। सज-धजकर सब एक समान सुन्दर लग रही थीं। बड़ी मुश्किल से प्रतिभा की पहचान हो पायी। अख़बारों की प्रतियाँ सँभालकर रख ली गयीं।

वाडिया कॉलेज का नाम सुर्खियों में आ गया। फर्गुसन कॉलेज से परिचर्चा और वाद-विवाद प्रतियोगिता के लिए विद्यार्थी गये थे। डेक्कन कॉलेज की संगीता कुलकर्णी शास्त्रीय गायन में प्रतियोगी थी। केवल समूह-नृत्य में पूना विश्वविद्यालय विजयी हुआ था। बड़ी-सी शील्ड मिली थी जो कॉलेज में प्रिंसिपल के कार्यालय में सजा दी गयी। प्रतिमा को प्रमाण-पत्र और चाँदी का एक कप मिला।

प्रतिभा के लौटते ही घर में रौनक आ गयी।

इन्दु ने अलमारी से किताबें खिसकाकर उसके प्रमाण-पत्र और इनाम के लिए जगह बनायी।

"अरे अरे, किताबें क्यों हटा रही हो?" कवि ने टोका।

"और कहाँ रखूँ। रेडियो और ताक, दोनों जगह तो इनामों से ठसाठस भरी हुई हैं।"

"पुराने वाले इनाम एक पेटी में रख दो, जब बेबी का ब्याह होगा, अपने साथ ले जाएगी।" कवि ने कहा।

प्रतिभा बीच में बोली, "नो चांस। फिर तो पेटी पड़ी रहेगी सारी उम्र। मुझे शादी करनी ही नहीं।"

"हर लडक़ी यही कहती है, फिर भी हर लडक़ी की शादी होती है। जैसे ही मिस्टर राइट मिला, लड़कियों का इरादा बदल जाता है।"

"पापा, मुझे चिढ़ाओ मत नहीं तो मैं सच में चिढ़ जाऊँगी।"

"अब तो तेरा बी.ए. हो गया, आई,ए.एस. की तैयारी शुरू कर दे।"

प्रतिभा उलझी हुई सी पापा को देखने लगी। उसे लगा यही मौक़ा है अपनी बात बोलने का।

"पापा, हमें आई.ए.एस. नहीं देना।"

"फिर क्या करेगी। एम.ए. करके लेक्चरर बनेगी?"

"नहीं पापा, मैं बम्बई जाऊँगी। वहाँ बड़ा स्कोप है। फेस्टिवल में हमें कई ऑफ़र मिले।"

"यही कसर बची थी। अब फिल्मों में नाच दिखाएगी।" इन्दु बिगडऩे लगी।

"नहीं माँ, फिल्मों में नहीं, हमें मॉडलिंग के लिए एक बड़ी एजेंसी ने कहा है। तुम मैगज़ीन पढ़ती हो, उसमें आधे से ज्यादा पन्नों पर विज्ञापन छपते हैं। बस यही करना होता है। कोई साबुन या टूथपेस्ट हाथ में लेकर फोटो खिंचाओ, और लखपति हो जाओ।" प्रतिभा ने समझाया।

"कितनी घटिया ऐम्बिशन लेकर आयी हो तुम दिल्ली से। क्या इसी के लिए तुम्हें इतना पढ़ाया-लिखाया और कलाएँ सिखायीं?" कवि को गुस्सा आ गया।

"पापा अगर नाटक में काम करना, नृत्य करना ठीक है तो मॉडलिंग में क्या बुराई है यह बताइए। इस शहर में कितने ही शो कर चुकी हूँ मैं, नाम के सिवाय कुछ नहीं कमाया मैंने।"

"और क्या कमाना है तुझे बोल। क्या शकल दिखाकर पैसे कमाएगी। हमारे मुल्क में मॉडल को किस नज़र से देखा जाता है, तू नहीं जानती। कान खोलकर सुन ले। कोई मॉडलिंग-वॉडलिंग नहीं करनी है। चुपचाप आगे पढ़ो, पढ़ाई में नाम कमा, कला में नाम कमा। पैसा कमाने को मैं बैठा हूँ।"

"पापा मेरे साथ की वैजू, सुनयना सब बम्बई जाने वाली हैं, बस एक बार मैं उनके साथ हो आऊँ, प्लीज़।"

"तेरी यही बात हमें बुरी लगे। पूना में तुझे डांस, म्यूजिक और स्टेज़ के मौक़े मिल तो रहे हैं।"

"पर पापा यहाँ मुख्य रूप से मराठी रंगमंच का बोलबाला है, हिन्दी रंगमंच की कोई पहचान नहीं है।"

"अभी तू छोटी है। जब मेरा तबादला बम्बई होगा तब देखी जायगी।"

"आपकी भारत सरकार को सपने नहीं आ रहे हैं। पूना के बाद वह आपको विजयवाड़ा भी भेज सकती है। हो सकता है बम्बई पहुँचने में आपको दस साल लग जायँ। मैं तो तब तक बुड्ढी हो जाऊँगी।"

"तुझे क्या जल्दी है। पढ़-लिखकर नाम कमा। क्या-क्या मैंने सपने देख रखे हैं तेरे लिए। तुझे तो मैं विजयलक्ष्मी पंडित बनाऊँगा।"

"पापा वह मैं कभी नहीं बन सकती क्योंकि उसके लिए पहले आपको मोतीलाल नेहरू बनना होगा।" प्रतिभा ने कहा।

जैसे कमरे में सनाका खिंच गया। पिता के रूप में कवि की समस्त उपलब्धियों को ध्वस्त करता, प्रतिभा का आक्षेप उसकी असहमति, असन्तोष और अस्वीकार का घोषणा-पत्र बन गया। कवि अब तक यही सोचता रहा कि बेटी का विकास वहीं तक है जहाँ तक वह उसके जीवन में रोशनी डालता चलता है। उसे नहीं पता चला कि अपने समवयस्क साथियों, पुस्तकों, अख़बारों और पत्र-पत्रिकाओं के जरिये बेटी ने अपने सपनों की नयी दुनिया देख ली है। दुख यही था कि इतनी आज़ादी और अग्रगामिता के बावजूद वह न लेखक बनना चाहती थी न कलाकार, न वह अफ़सर बनना चाहती थी न लेक्चरर, वह मॉडल बनना चाहती थी। उसे बाहरी तडक़-भडक़, सौन्दर्य की सराहना, समृद्धि के सरल उपाय अपनी ओर खींच रहे थे।

पिता-पुत्री के बीच विवाद अनिर्णीत रह गया। प्रतिभा तमककर अपने कमरे में चली गयी। कवि घायल सिंह सा अँधेरे बरामदे में इधर से उधर, तेज़ क़दमों से घूमता रहा। उसकी उँगलियों से सिगरेट एक मिनट को भी न छूटी, न बुझी।

इन्दु रसोई में भुनभुनाती रही, "जब अच्छी-भली कॉलेज की नौकरी छोडक़र रेडियो थियेटर में आने का कौल भरा था, तभी सोचना था लड़कियाँ कौन चाल की बनेंगी। बड़ी विज्ञापनबाज़ी करेगी, कित्ती जगहँसाई होगी, आस-पड़ौस के लोग क्या कहेंगे। इसी पर सारी उम्मीदें टिकी थीं, यही ऐसी निकल गयी। छोटी तो अलग ऊदबिलाव है, उससे तो पहले ही कोई आशा नहीं है।"

सरोजिनी, आशा, उषा, सब दूसरे स्कूल में पढ़ती थीं, तुकाराव माध्यमिक विद्यालय। नौशेरवान दस्तूर स्कूल में साथ पढ़ती थी कान्ता चोपड़ा, जिसके साथ सुबह स्कूल जाना और दोपहर को घर लौटना रोज़ का नियम था। कान्ता उसकी हमउम्र थी, उससे ज्योदा सेहतमन्द और सक्रिय। उसके पिता रेलवे में चीफ़ गुड्स इंस्पेक्टर थे और उन्हें स्टेशन के पास ही बँगला मिला हुआ था।

महीने भर बाद जब छुट्टियों का होमवर्क उतारने मनीषा उसके घर पहुँची वह रूसी हुई थी, "जा मैं नहीं बोलती, बिना मुझे बताये इतनी दूर जाकर बैठ गयी।"

मनीषा ने मनाया, "मेरी प्यारी कन्तू, तू बता मैं कब बताती तुझे। दादी माँ बीमार थीं, पापा ने दफ्तर से आकर ख़बर दी। सवेरे तो हम चले गये।"

"मरी चिट्ठी नहीं लिख सकती थी, कैसे मैंने एक-एक दिन काटा है।"

थोड़ी देर की रूसा-रूसी के बाद कान्ता अपना बस्ता लेकर आयी। उसने सभी कापियाँ दिखायीं और कहा, "एक ख़बर मुँहज़ुबानी सुन लो। प्रिंसिपल ने कहा है, एस.एल.सी. क्लास में पहले दिन वे सब लड़कियों का यूनिफॉर्म चेक करेंगी। सब चीज़ क़ायदे की होनी चाहिए, ट्यूनिक, जूते, बैग, यहाँ तक कि अन्तर्वस्त्र भी।"

मनीषा बात में उलझ गयी, "यूनिफॉर्म तो हम पूरा पहनते हैं। अन्तर्वस्त्र का क्या मतलब है। हम घर में सिली शमीज़ पहनते तो हैं।"

"यह नहीं, उनका मतलब है बाज़ार में सिले अन्तर्वस्त्र जैसे निम्मी, बारबरा और गर्टरूड पहनती हैं।"

"यह तो मुश्किल पड़ गयी।"

स्कूल खुलने में दस दिन बचे थे। उनमें होमवर्क पूरा करना था। मम्मी से यह कहने की हिम्मत नहीं थी कि मम्मी मैं बड़ी हो रही हूँ। तुम्हारी तरह मेरे लिए भी अन्तर्वस्त्र पहनना ज़रूरी है।

मम्मी कतरब्योंत की विशेषज्ञ थीं। जब भी कभी मनीषा के लिए कपड़े सिलवाने की बात चलती, मम्मी अपनी पुरानी साड़ी या प्रतिभा का पुराना सलवार-सूट और कैंची लेकर बैठ जातीं, "अभी घंटे भर में मुन्नी की ड्रैस बन जाएगी। छोटे बच्चों का क्या है, वे तो कुछ भी पहन लें।"

पौ फटने की बेला में कलियों का चटखकर खिलना किसने देखा है, होशियार से होशियार माली ने भी नहीं। इसी तरह लड़कियों का बड़ा होना होता है। उन्हें नहीं पता कब उन्हें फ्रॉक पहनते-पहनते, सलवार-कुरते की ज़रूरत महसूस होने लगती है; कूद-कूदकर चलने की बजाय, धीमे-धीमे, छोटे पग उठाने को कुदरत मज़बूर कर देती है। अपने को लडक़ा मानने की हेकड़ क़ायम रखना मनीषा और कान्ता के लिए दुश्वार हो रहा था। देह के अलावा मनोजगत में भी कई परिवर्तन हो रहे थे।

मनीषा ने कान्ता को बताया कि मथुरा में उसकी जान को क्या बला लग गयी थी।

"थैंक गॉड, वह गंगा-यमुना चार दिनों में खत्म हो गयी। मैं तो बड़ी डर गयी थी।" मनीषा ने कहा।

"ले, मैं तो दो साल से भुगत रही हूँ," कान्ता बोली, "मम्मी मुझे रसोई में जाने से रोक देती हैं, बस सिलाई मशीन के सामने बैठा देती हैं, कि सियो घर भर के डस्टर और पाजामे।"

"तूने मुझे नहीं बताया?"

"क्या बताती, तू तो पहाड़ी घोड़े की तरह कूद-कूदकर चलती थी। तेरी समझ में क्या आता।"

"अब बता इस नयी तबालत का क्या करना है। अन्तर्वस्त्र कहाँ से लायें।"

"एक मिनट। मैंने मम्मी को खरीदते देखा है, डेढ़ रुपये की आती है। अपन दोनों डेढ़-डेढ़ रुपया जुटा लें तो बाज़ार चलें।"

डेढ़ रुपया जुटाना कोई मुश्किल काम नहीं था। मुश्किल थी गोपनीयता। इस खरीदारी के लिए उन दोनों ने दोपहर का एक ऐसा वक्त चुना जब सडक़ पर ज्यिादा भीड़ न हो और उन्हें कोई दुकान की सीढिय़ाँ चढ़ते न देखे।

आपस में दोनों ने तय किया था कि ऐसी दुकान पर चलें जहाँ सेल्सगर्ल हो। बाज़ार में ऐसी कोई दुकान थी ही नहीं। फिर लड़कियों ने कहा, "चलो ऐसी जगह चलें जहाँ बुज़ुर्ग सेल्समैन हो।" ऐसी भी कोई दुकान नहीं मिली। अन्त में वे एक ऐसी दुकान की सीढिय़ाँ चढ़ गयीं जहाँ कोई ग्राहक नहीं था और सेल्समैन बूढ़ा तो नहीं पर अधेड़ ज़रूर था। अन्दर पहुँचकर कान्ता ने मनीषा को कोहनी मारी, "तू बोल।" मनीषा क्या बोलती। पता ही नहीं था अन्तर्वस्त्र की खरीदारी कैसे करते हैं, क्या बोलना पड़ता है।

सेल्समैन ने कुछ भाँपकर कहा, "कहिए, क्या दिखाएँ ब्रा, पैंटी या रूमाल?"

मनीषा ने तुरन्त अनजान बनते हुए कहा, "हाँ, वह क्या कहते हैं, रूमाल दिखाइए।"

कान्ता आँखों ही आँखों में मनीषा को घुडक़ रही थी पर मनीषा पूरी एकाग्रता से रूमाल देखने लगी। चार-चार आने में कैमरिक के सुन्दर रूमाल मिल रहे थे।

मनीषा ने चार खरीद लिये। एक रुपया चुकता कर दुकान से चल दी। पीछे-पीछे गुस्से से लाल-पीली कान्ता पैर पटकती, सीढिय़ाँ उतरी।

कान्ता ने बिगडक़र कहा, "अब स्कूल इंसपेक्शन पर तेरे रूमाल पहनकर जाएँगे क्या?"

"तो क्या करती! सेल्समैन के बोलते ही मैं इतनी घबरा गयी। कैसे आँखें फाड़-फाडक़र हमें देख रहा था!"

कान्ता के पास उसका डेढ़ रुपया सुरक्षित था।

मनीषा बोली, "अगली दुकान चलकर तेरे लिए तो ब्रा ले लें। मेरी देखी जाएगी।"

"क्या देखी जाएगी?" कान्ता भडक़ी।

"मैं मम्मी या दीदी की पहन लूँगी।"

"हाफक्रैक है तू। कोई किसी की ब्रा नहीं पहन सकता। सबकी अपनी अलग होती है।"

तभी दिमाग में बल्ब जला।

कान्ता का।

उसे याद आया रोज़ शाम पाँच बजे उसकी कॉलोनी में एक ठेलेवाला आता था। उसके ठेले पर रोज़मर्रा की ज़रूरत की हर चीज़ उपलब्ध रहती-किताब, कॉपी, पेन्सिल, पेन से लेकर कद्दूकस और नींबू निचोडऩी तक। एक कोने में वह फ्रॉक के कपड़े, सलवार-सूट और होजियरी का सामान भी रखता। वहीं कुछ पतले गत्ते के डब्बे भी लगे रहते। कान्ता को लगा ज़रूर ये डब्बे अन्तर्वस्त्रों के होंगे तभी उसके ठेले पर लड़कियों और स्त्रियों की इतनी भीड़ जमी रहती। रामलाल का ठेला पूरी कॉलोनी में मशहूर था। होता यह था कि वह एक के अहाते में ठेला खड़ा करता। कुछ

देर में आस-पास के घरों के बच्चे-बच्चियाँ, लड़कियाँ, स्त्रियाँ सब वहीं इकट्ठी हो जातीं। एक उत्सव-सा होता उसका आना। वहाँ सब जनी एक-दूसरे का हाल पूछतीं और सौदा देखतीं। रामलाल मुस्कराकर अपना टेढ़ा दाँत दिखाते हुए कहता, "देख लो, देख लो, देखने का कोई दाम नहीं लगता।"

छोटे बच्चे एक रबर या एक पैकेट च्यूइंगम खरीदकर खुश हो जाते। लड़कियाँ नेल पॉलिश, लिपस्टिक के डब्बों की तरफ़ हसरत से देखतीं। सौदेबाज़ी में गृहणियाँ हावी रहतीं क्योंकि उन्हीं की अंटी में पैसे होते।

वैसे कान्ता को ठेलेवाले से सामान लेना पसन्द नहीं था। ठेले की सीमित सामग्री में बाज़ार घूमने की उत्तेजना कहाँ! पर अन्तर्वस्त्र खरीदने के लिए गोपनीयता और विश्वसनीयता भी चाहिए थी।

साढ़े चार बजे शाम, हाथ-मुँह धोकर मनीषा ने अपनी साइकिल अभी बाहर रखी ही थी कि माँ की घुडक़ी सुनाई दी, "इत्ती धूप में कहाँ जाना है। यह नहीं कि घर में बैठकर पढ़े-लिखे। तू जा रही है तो बाहर से कपड़े कौन उठाएगा?"

रोज़ साढ़े चार बजे, पिछवाड़े की रस्सी से, सूख रहे कपड़े उठाना मनीषा का काम था।

मनीषा ने खुशामदी आवाज़ में कहा, "नाराज़ क्यों होती हो मम्मी। मैं अभी उठा देती हूँ।"

उसका रोज़ का एक खेल यह था कि वह बाकी सारे कपड़े कन्धे पर डालकर लाती पर मम्मी और दीदी के अन्तर्वस्त्र फुटरूलर या किसी डंडी पर लटकाकर लाती और अन्दर आकर चिढ़ाती, "यह किसकी ऐ ऐ है?" मम्मी और दीदी लपककर अपने कपड़े पकड़तीं और कहतीं, "जब तू पहनेगी न, तब हम बताएँगे।" आज यह खेल नहीं हुआ तो माँ ने अचरज से मनीषा की तरफ़ देखा, "आज तो बड़ी सिधाई से कपड़े उठाये हैं।"

"साइन्स कॉपी लेनी है, दो रुपये दो।" मनीषा ने कहा।

"अभी कल तो तूने डेढ़ रुपया लिया था।" माँ ने त्योरी चढ़ाई।

"उसके मैंने रूमाल ले लिये। मेरे रूमाल फट गये थे।" मनीषा ने कहा।

मम्मी ने मुँह-ही-मुँह में बड़बड़ाते हुए पर्स से दो का नोट निकाला।

जब मनीषा रेलवे कॉलोनी पहुँची, पाँच बजने ही वाले थे। कान्ता ने मनीषा के लिए दूध में बर्फ और रूहअफ़ज़ा शर्बत डालकर अपनी तरह का मिल्कशेक बनाया। उसने एक प्लेट में बेसन के मोटे सेव रखकर कहा, "ले पकौड़े खा।"

मनीषा हँसने लगी, "हर बात उलटी बोलती है, ये पकौड़े कहाँ हैं, ये तो सेव हैं।"

"हमारे पंजाब में इन्हें पकौड़े ही बोलते हैं।"

सेव बहुत स्वादिष्ट थे, उनमें साबुत काली मिर्च और धनिये के दाने पड़े हुए थे।

कान्ता ने खिडक़ी से बाहर झाँका।

रामलाल का ठेला, बगल के अहाते में चार नम्बर की मिसेज़ खान के घर के सामने खड़ा था।

"चलो वहीं चलते हैं।" कान्ता ने मनीषा को साथ लिया।

ठेले पर जैसे ही जरा उछीड़ हुई कान्ता ने रामलाल से धीरे से कहा, "लेडीज़ वाली बनियान दिखाना।"

"कौन से नम्बर की?" रामलाल ने पूछा।

वे क्या बतातीं। कभी नापा ही नहीं था। यह पहली बार का अनुभव था।

मनीषा ने अक्ल से काम लिया, "सबसे छोटी।"

रामलाल ने दो पतले, चपटे डब्बे उन दोनों की तरफ़ बढ़ा दिये, "ट्राइ कर लो बेबी लोग।"

समस्या यह थी कि इन्हें कहाँ, कैसे ट्राइ करके देखा जाए।

मिसेज़ ख़ान उनकी मुश्किल ताड़ गयीं। उन्होंने कहा, "मेरे बाथरूम में ट्राइ कर लो न।"

उनके घर के दो बेडरूमों में दो बाथरूम थे।

किसी तरह तनियों, हुकों और इलास्टिक के पेचीदा व्याकरण को समझकर जब मनीषा ने ब्रा पहनी तो पता चला कि यह सबसे छोटा नम्बर यानी 26 भी बहुत बड़ा है। उसे उतारकर उसने अपने कपड़े वापस पहने। मनीषा बाहर निकली, यह सोचती कि कान्ता भी अन्तर्वस्त्र नापास कर चुकी होगी। पर वह तो प्रसन्न खड़ी थी।

"एकदम ठीक है।" उसने घोषणा की।

मनीषा ने ठेलेवाले से कहा, "और छोटी वाली नहीं है।"

"जीरो साइज़ नहीं आती।" रामलाल ने कहा और पैकेट वापस रख लिया।

कान्ता ने उसे डेढ़ रुपया दे दिया।

मनीषा ने तय किया वह वही अपनी रोज़ वाली शमीज़ पहनकर जाएगी, प्रिंसिपल को जो सज़ा देनी है, दे। कह देगी उसका साइज़ बनता ही नहीं है।

अगले दिन स्कूल का पहला दिन था। पहनना तो सबको यूनिफॉर्म ही था पर हर लडक़ी की सजधज निराली थी। किसी ने यूनिफॉर्म के साथ कैमरिक का ब्लाउज़ पहना हुआ था तो किसी ने लिनिन का। हर लडक़ी का सीने का उभार, नये अन्तर्वस्त्रों में विशाल लग रहा था, उनमें गर्व का अहंकार था। मनीषा जैसी दो-चार मरियल-करियल लड़कियाँ थीं जो अपने पिछले साल के यूनिफॉर्म और अन्तर्वस्त्रों में नज़र आ रही थीं।

लेकिन प्रिंसिपल तो उस दिन आयी ही नहीं। उन्हें आई.सी.एस.ई. बोर्ड की मीटिंग में भाग लेने मुम्बई जाना पड़ा। कई लड़कियों की जान में जान आयी। कुछ लड़कियों के अन्तर्वस्त्र पुराने, मटमैले या बेढंगे थे, उन्हें डर था कि प्रिंसिपल उन्हें कसाई की तरह भँभोड़ेंगी और किचकिचाएँगी। कुछ लड़कियों की समस्या यह थी कि उन्होंने

छुट्टियों में अपने कान छिदवा लिये थे। स्कूल का नियम था कि कोई छात्रा या शिक्षक नाक या कान में कोई आभूषण पहनकर न आये। अगर लड़कियों की हथेली पर मेंहदी दिख जाए तो उन्हें सज़ा मिलती थी। स्कूल को उत्सव और शृंगार से बेहद चिढ़ थी। मिसेज़ भरूचा, मिस पावरी, मिस दस्तूर और मिसेज़ कोठावाला इतनी गोरी थीं कि उनका रंग ही उनका आभूषण था लेकिन छात्राओं में तो केवल दस प्रतिशत पारसी थीं, बाकी उत्तर या मध्य भारत की थी जिनके परिवारों में पर्व-त्यौहार, मेले-उत्सव के अनुष्ठान पारम्परिक तरीके से मनाये जाते। ऐसे परिवारों की लड़कियों को स्कूल जेलख़ाना लगता। वे सोचतीं कब हम सीनियर सेकेंडरी लेवल इम्तहान ख़त्म करें, कब हमें यहाँ से छुटकारा मिले।

>>पीछे>> >>आगे>>

शीर्ष पर जाएँ

डाउनलोड मुद्रण

अ+ अ-

उपन्यास

दुक्खम्-सुक्खम्

ममता कालिया

अनुक्रम अध्याय 9 पीछे

प्रतिभा अग्रवाल न जाने कब टीनएजर से सीधी वयस्क हो गयी। यह परिवर्तन नृत्य-भारती संस्थान आते-जाते हुआ या वाडिया कॉलेज आते-जाते अथवा यह युवा-समारोह में जाकर हुआ, इसकी पड़ताल करना बेहद मुश्किल था लेकिन यह एक बेहद जटिल स्विचओवर, बहरहाल, हो गया।

अभी तक जो लडक़ी अपने पापा की हर बात को एक भक्त की दृष्टि से देखा करती अब नास्तिक की दृष्टि से देखने लगी। कवि दफ्तर से आकर दफ्तर के कारनामे सुनाता, प्रतिभा कन्नी काटकर अपने कमरे में चली जाती। रातों में वह फुस-फुस मनीषा को बताती, "पता है मुन्नी, पापा को दफ्तर के लोग ज़रा भी पसन्द नहीं करते। उन्होंने प्रोड्यूसरों का जीना हराम कर रखा है। मुझे निसार सर ने बताया, जितना मैं रेडियो स्टेशन पर तबला बजाकर कमा रहा हूँ इससे तिगुना मैं घर बैठे कमा लूँगा।"

"वह कैसे?"

"बड़ी-बड़ी नृत्यांगनाओं के शो होते रहते हैं। वे मुँहमाँगे दामों पर तबला संगतकार बुलवाती हैं। अपने साजिन्दों को विदेश तक ले जाती हैं। नाच की जान तबले में बसी होती है।"

"बोल और गाने में नहीं होती।" मनीषा पूछती।

"थोड़ी-थोड़ी सबमें होती है पर सबसे ज्याछदा तबले में।"

"निसार सर पापा की बुराई क्यों करते हैं?"

प्रतिभा बुरा मान जाती, "वे बुराई थोड़े ही करते हैं। वे सचाई बताते हैं। आकाशवाणी में प्रोग्राम का जिम्मा प्रोड्यूसरों का है। संगीत के प्रोड्यूसर नगेन्द्र गौतम अच्छे आदमी हैं पर पापा उनके ऊपर अफ़सरी झाड़ते हैं, कहते हैं तीन महीने का प्लान बनाकर मीटिंग में पेश करो, फिर लाल पेन से उनके कागज़ों पर निशान लगा देते हैं कि इस कलाकार को हर बार क्यों ले रहे हो, उस कलाकार को क्यों नहीं लिया? अगर कोई बड़ी कलाकार स्टूडियो में आ जाय तो खुद जाकर कंट्रोलरूम में बैठ जाते हैं।"

मनीषा समझ न पाती कि इन बातों में बुराई क्या थी। बहन से झगड़ा न हो जाय इसलिए वह उसके कमरे से हट जाती। मनीषा जानती थी कि पापा रेडियो में प्रोग्राम प्रसारण की गुणवत्ता से कोई समझौता नहीं कर सकते। वे कहते, "मेरे पद का नाम है प्रोग्राम एक्ज़ीक्यूटिव यानी कार्यक्रम को कार्यान्वित करनेवाला। रेडियो में कोई भी प्रोग्राम मुझसे ओके करवाये बग़ैर नहीं जाएगा।" केन्द्रनिदेशक चावला कविमोहन को बोलने देते क्योंकि वे उनकी योग्यता से प्रभावित थे। वे कहते, ऐसा आदमी रेडियो को बड़ी मुश्किल से मिलता है जिसे प्रशासन और प्रोग्राम दोनों की समझ हो।

ऑल इंडिया रेडियो का नाम आकाशवाणी अब ज़ोर पकड़ गया था लेकिन जनता के बीच में अभी भी रेडियो स्टेशन नाम ही चलता। धीरे-धीरे सूचना और प्रसारण मन्त्रालय ने रेडियो में प्रोड्यूसर-स्कीम लागू कर दी। उच्चस्तरीय बैठक में यह तय किया गया कि प्रोग्राम की देखभाल और प्लानिंग का काम विषयगत विद्वानों को सौंपा जाए। यह किसी ने नहीं सोचा कि क्या विद्वानों को रेडियो जैसे तन्त्र की अभियान्त्रिकी का ज्ञान है। वरिष्ठ साहित्यकारों, संगीतकारों और कलाकारों की प्रोड्यूसर पद पर नियुक्तियाँ की गयीं।

बुद्धिजीवियों के बीच इस सरकारी क़दम का व्यापक स्वागत हुआ। लेकिन रेडियो के वरिष्ठ अधिकारियों को काफ़ी तकलीफ़ हुई।

प्रोग्रामों का रचनात्मक पक्ष अब पूरी तरह से प्रोड्यूसरों के हाथ में चला गया। अफ़सरों के जिम्मे महज़ दफ्तर का अनुशासन रह गया।

अनुशासन कवि की जीवन-शैली बन गया था। पर वह अनुशासन के बटन कई बार ज़रूरत से ज्यासदा कस देता।

काम करनेवाला बिलबिला उठता।

ननकू ऐसे ही एक दिन चला गया। पचास साल का अधेड़ नौकर। रात में बिस्तर पर उसने चादर बिछायी। कवि वहीं खड़ा था। उसने कहा, "चादर टेढ़ी बिछी है।" ननकू ने दायें-बायें खींचकर चादर सीधी की। कवि ने कुछ ज़ोर से कहा, "अभी भी टेढ़ी है।"

"हमसे नहीं होता," कहकर ननकू अन्दर जाने लगा। कवि ने उसे कन्धे से पकडक़र धमकाया, "कान पकडक़र उठक-बैठक लगा और बोल अब से चादर टेढ़ी नहीं बिछाऊँगा।"

ननकू ने कान तो पकड़े पर कुछ बोला नहीं। रोनी सूरत लिये वह आँगन में आ गया। सुबह जब घर के लोग उठे, देखा पीछे का दरवाज़ा उढक़ा हुआ है और ननकू ग़ायब है।

इन्दु को बहुत तकलीफ़ हुई। डेढ़ साल पुराना, घर का काम सीखा हुआ नौकर एक रात में काम छोड़ गया। पर कवि को कोई अफ़सोस नहीं हुआ। बोले, "गलती उसकी थी, मेरी नहीं।"

बेटियों पर भी उनका अनुशासन बहुत कठोर था। दरअसल कवि को हर समय एक ही धुन सवार रहती, दूसरों के निर्माण और सुधार की। गर्मी की लम्बी छुट्टियों में वे बच्चों को कभी दोपहर में सोने की छूट नहीं देते। वे सुबह ही उन्हें कोई मोटी-सी किताब पकड़ा देते, डॉ. राजेन्द्र प्रसाद या पंडित नेहरू की आत्मकथा और कहते, "इसका एक चैप्टर पढक़र याद करना, मैं ऑफिस से आकर पूछूँगा।" मनीषा को महापुरुषों की आत्मकथाओं या जीवनियों से

वितृष्णा उसी उमर से शुरू हुई थी। कभी इन महापुरुषों के संघर्ष-काल में वह कोई तारीख़ भूल जाती तो पापा तुरन्त होमवर्क दे देते, "चलो, यह चैप्टर तीन बार लिखकर दिखाओ।"

सख्ती का आलम ऐसा था कि रोज़ बेबी जो पूना में रोहिणी भाटे के स्कूल में कत्थक सीख रही थी, उससे कहा जाता, "दिखाओ, आज कौन-से स्टेप्स सीखे तुमने।"

घर का सामान बाज़ार से ख़रीदकर लाना मुन्नी के हिस्से का काम था। कॉलेज से लौटने के बाद उसका काफ़ी समय बस दौड़ते बीतता। कभी घर में बेसन ख़त्म तो कभी बिस्किट-ब्रेड। फिर बिजली का बिल, गैस सिलिंडर का इन्तज़ाम सब मुन्नी के जिम्मे। जैसे ही वह सामान लेने बाहर निकलती, कवि फुटनोट लगा देते, "देख पैसे ठीक से सँभाल और सुन रसीद ज़रूर लेकर आना।"

मनीषा का दिमाग भन्ना जाता। यह एक हिदायत सुन-सुनकर उसके कान पक गये। सब्ज़ी ख़रीदते हुए वह सोचती, 'पाव भर भिंडी और आध किलो बैंगन की रसीद कैसे मिले। रास्ता चलते, सौदा ख़रीदते, वापस आते वह सोचती, पापा का नाम कविमोहन नहीं रसीदमोहन होना चाहिए था। रसीद कच्ची हो या पक्की, होनी ज़रूर होती।

घर में हर रोज़ ख़र्च लिखा जाता। एक भूरे रंग का किरमिच का रजिस्टर था। उस पर खड़े हाशिये डालकर रोज़ का ख़र्च दर्ज होता। पहले कवि लिखा करते पर जब से दफ्तर का काम बढ़ता गया कवि ने यह महकमा इन्दु को सौंप दिया। इन्दु ऐसे लिखतीं : -) मिरची, =) अदरक, °) धनिया। तब रुपये-आने चलते थे। अक्सर घर में एक रुपये की सब्ज़ी आती, एक रुपये का फल। एक रुपया लेकर कवि दफ्तर जाता। एक रुपये रोज़ का दूध आता।

लेकिन रोज़ रात माँ बिस्तर पर बैठ हिसाब मिलाकर कहतीं, "बाप रे! आज तो बड़ा ख़र्च हो गया।"

मनीषा हँसती, "माँ ज्यारदा कहाँ एक-एक रुपया ही तो ख़र्च हुआ है।"

"एक-एक कर ही तो सारे रुपये निकल जाते हैं। तेरे पापा इत्ती मेहनत करते हैं, कभी इन्हें चवन्नी का दही न खिला सकी।"

दोनों के बीच में ऐसा प्रेमतन्तु था कि उनमें कभी विवाद या संघर्ष भी न होता।

कवि रोज़ डायरी लिखते। पहले बेटियाँ सोचती थीं कि पापा भी ख़र्च का हिसाब लिखते हैं। वे आपस में चुहल करतीं कि कैसे दो आदमी मिलकर सारा दिन ख़र्च का हिसाब लिखते हैं पर हिसाब है कि निपटने में ही नहीं आता।

बहुत बाद में पापा की एक पुरानी डायरी मनीषा के हाथ पड़ गयी। उसने जल्दी-जल्दी उसके पृष्ठ पलटे। उसमें कहीं कोई ख़र्च का हिसाब नहीं लिखा था। उसमें पापा के विचारों का गंगासागर था। उन सुभाषितों से उनके सौन्दर्यबोध, विचार-सम्पदा, बौद्धिक ऐश्वर्य और मौलिक चिन्तन का परिचय मिलता था। वे कभी आधी रात में उठकर टेबिल लैम्प जलाकर लिखते, कभी भोर में जाग जाते। वे पढ़ते, प्रतिक्रियायित होते और स्फुट विचार लिखते। उन पर किसी वाद, प्रतिवाद का प्रभाव या बन्धन नहीं था। कई बार प्रगतिवादी मित्रों ने इन्हें प्रगतिशील साहित्य गोष्ठियों में प्रतिबद्ध साथी की तरह दर्ज करना चाहा पर वहाँ जाकर वे सृष्टि के रहस्य और अलौकिक शक्तियों की मीमांसा पर भाषण झाड़ आये। जहाँ किसी तात्त्विक विषय पर शाश्वत चिन्तन होता वहाँ वे समाज की समकालीन समस्याओं पर बोलने लगते। उन्हें अपने बारे में विभ्रम बनाये रखना अच्छा लगता।

अकेले में वे इन्दु से कहते, "सरकारी आदमी को केवल अपने कर्तव्य से बँधा होना चाहिए। विचारधारा से बँधना अपने गले में चौखटा बाँधना है।"

इसमें कहीं उनका असुरक्षा-बोध भी शामिल रहता। उन दिनों प्रतिबद्ध होने का अर्थ कम्युनिस्ट होना होता था और कम्युनिस्ट का ठप्पा लगते ही नौकरी से हाथ धोना पड़ता।

तब भी देश में लोकतन्त्र था लेकिन लोकतन्त्र के एक हिस्से को हमेशा शक की निगाह से देखा जाता था। हालाँकि माक्र्सवादी और कांग्रेसी दोनों अपनी-अपनी तरह के क्रान्तिकारी रहे थे, एक के हिस्से सत्ता आयी थी तो दूसरे के हिस्से संघर्ष। कवि से जब कोई उसकी राजनीतिक विचारधारा जानना चाहता वह टाल जाता। वह कहता यह न सतयुग है, न कलियुग, यह तो छद्मयुग है। इसमें सावधान रहना ही सबसे अच्छा है। जो हो उससे उलट प्रचारित करो तभी सुरक्षा है। वह रैक में सबसे सामने किताब रखता 'द गॉड दैट फेल्ड'।

फिर भी दफ्तर में छोटी-बड़ी बातों पर लडऩा उसके स्वभाव का अंग था। एक बार एक संगीत-सभा में रसूलनबाई पधारीं। ऐन उस समय जब संगीत-सभा शुरू होनी थी, उनका पनडब्बा खो गया। बिना पान मुँह में दबाये, वे गाती नहीं थीं। ऐसा लगा जैसे उनका कार्यक्रम नहीं हो पाएगा। रेडियो स्टेशन में उनके पनडब्बे की ढूँढ़ मची। अन्त में दफ्तर के चपरासी, ढोंढू बुवा ने मंच के तख्तम के नीचे से उनका पनडब्बा ढूँढ़ निकाला। संगीत-सभा न होने का संकट टल गया। बनारसी पान की गिलौरी मुँह में दबा रसूलनबाई ने ठुमरी के बोल उठाये 'बैरन भई रतियाँ'। अगले रोज़ एक पैक्स अजय श्रीवास्वत ने दावा किया कि पनडब्बा उसने ढूँढ़ा था। उसे इसका क्रेडिट मिलना चाहिए। कवि भिड़ गया। उसने कहा, ढोंढू बुवा ने जब पनडब्बा ढूँढ़ा वह वहीं था। अजय श्रीवास्तव फिज़ूल में तिल का ताड़ बना रहे हैं।

रेडियो में अजय श्रीवास्तव जैसी मानसिकता के लोगों की बहुतायत होती जा रही थी। वे काम कम और काम का शोर ज्यायदा करते। और भी दस किस्म की कमज़ोरियाँ उनमें थीं। ड्रामा विभाग में कैज़ुअल कलाकारों का शोषण शुरू से होता आया था। बेचारे कैज़ुअल कलाकार चुपचाप अफ़सरों और प्रोड्यूसरों की ज्याअदती सहते पर कहते कुछ नहीं। उन्हीं दिनों यह भी उजागर हुआ कि ड्रामा प्रोड्यूसर हर कैज़ुअल आर्टिस्ट को अपनी रंग मंडली का सदस्य बनाते हैं। इसके लिए बाकायदा गंडा-बँधवाई का अनुष्ठान होता है। कलाकार अपना एक माह का मानदेय गुरुदक्षिणा के रूप में प्रोड्यूसर को सौंपता है। महिला कलाकारों का शारीरिक-शोषण होता है। यहाँ तक कि शहर के लोग धीरे-धीरे रेडियो स्टेशन को रंडियो स्टेशन कहने लगे।

कवि शिकायत करने में ज़रा भी देर न लगाता। एक बार ड्रामा प्रोड्यूसर गिरधर पांडे कमल देसाई नाम की कैज़ुअल आर्टिस्ट का चुम्बन लेते हुए स्टूडियो में पकड़े गये। केन्द्र निदेशक मामले को दबा देना चाहते थे पर कवि ने पत्रकारों को असलियत बताकर तूफ़ान बरपा कर दिया। स्थानीय अख़बारों में कई दिन तक रेडियो स्टेशन के खिलाफ़ छपता रहा। बात मन्त्रालय तक पहुँची। केन्द्र निदेशक ने जवाबतलबी में अपनी रिपोर्ट में लिखा कि ये अफ़वाहें निराधार हैं। प्रोड्यूसर महोदय स्टूडियो में अपनी पत्नी के साथ थे, उस समय किसी नाटक की कोई रिहर्सल नहीं थी। पति अपनी पत्नी से कहीं भी प्रेम प्रदर्शित कर सकता है।

प्रोड्यूसर की निरीह पत्नी ने सारी घटना की ताईद कर दी और प्रोड्यूसर की कुर्सी बची रह गयी लेकिन शहर में मज़ाक बन गया, 'अपनी बीवी से मुहब्बत करनी है तो रेडियो स्टेशन आइए।'

जिन दिनों कवि रेडियो स्टेशन की गतिविधियों से अघा जाता, वह अपना पूरा ध्यान किताबों में लगा देता। वह अपनी बेटियों को भी सलाह देता, "तुम लोग अपना लक्ष्य तय कर लो, साल भर में कम-से-कम सौ किताबें तुम्हें पढऩी हैं। कोर्स की नहीं, कोर्स की किताबें तो तोते पढ़ते हैं, साहित्य पढ़ो, दर्शन पढ़ो।"

बेबी की रुचि नृत्य और संगीत की पुस्तकों में थी। मुन्नी, मनीषा, किताबों से ज्याकदा घूमने-फिरने, भाषण झाडऩे और वाद-विवाद में हिस्सा लेने में लगी रहती। कवि कहता, "देखो, किताब अँधेरे में एक लालटेन की तरह होती है, वह तुम्हारी राह आलोकित करती चलती है।"

'सुनीता', 'त्यागपत्र', 'परख', 'गबन', 'गोदान' और 'शेखर एक जीवनी', कवि बच्चों के कमरे के रैक में रख देता और इन्तज़ार करता कि वे आकर बताएँ, 'पापा हमने ये सब पढ़ लीं, अब और किताबें दीजिए।'

वह अख़बारों को बड़े सुथरे ढंग से जमा करता जाता। उसकी बैठक के एक कोने में अख़बार और पत्र-पत्रिकाओं के ढेर लगे रहते। वह एक पुर्जा भी किसी को छूने न देता। उसका विचार था कि इन सबका इस्तेमाल वह लेखन में उस दिन करेगा जब रिटायर हो जाएगा।

"कब लिखेंगे, वक्त निकलता जा रहा है अग्रवाल साहब।" पाठक जी कहते।

"रचना करना और कीर्तन करना एक बात नहीं है। यह नित्य कर्म नहीं, विशिष्ट कर्म है।" कवि कहता।

पाठक जी बुरा मान जाते। उनके यहाँ हर शुक्रवार को ज़ोर-शोर से कीर्तन होता था। उनका नन्हा पोता शिखर, कीर्तन में ठुमक-ठुमक नाचता। इस आयोजन से पाठक जी सप्ताह भर के लिए जैसे परिमार्जित हो जाते।

किताबों में लोगों की दिलचस्पी कम होती जा रही थी, यह देखकर कवि क्षुब्ध होता। वह कहता, "आनेवाले वर्षों के लिए हम मूर्खों की पीढ़ी तैयार कर रहे हैं, दस-बीस किताबों पढक़र डिग्री पानेवाले ये मूर्ख, देश को कहीं का नहीं छोड़ेंगे, ये भविष्य की पीढिय़ों को न विचार दे पाएँगे न दर्शन। किताबों के बिना लोगों के घर कितने नंगे लगते हैं। ऐसे भी घर होते हैं जहाँ टेलीफोन डायरेक्टरी के सिवा और कोई किताब नहीं होती, हॉरिड।"

मनीषा कहती, "इस मामले में हमारा घर तो बहुत पहना-ओढ़ा लगता है पापा।"

"बिल्कुल," पापा गर्व से तन जाते, "यू नेम एन ऑथर, वी हैव हिम ऑन द रैक।" वाकई उनकी ऊँची-ऊँची आलमारियों में शेक्सपियर से लेकर एडवर्ड एल्बी, जॉन ऑसबॉर्न और विजय तेन्दुलकर सब मिल जाते। उन्हें पता रहता, कौन किताब कहाँ रखी है। घर में अन्दर का एक कमरा ऐसा था जिसमें सिर्फ एक छोटीसी खिडक़ी थी। उसमें एक लद्धड़ पंखा लटका था जो आवाज़ ज्याकदा करता, हवा कम देता। वहीं किताबों के ऊँचे-ऊँचे रैक लगे थे। एक रैक के कोने पर झाडऩ टँगा था। कवि अपना बहुत-सा वक्त इसी कमरे में बिताते। मनीषा भी कभी-कभी इस कमरे में वक्त बिताती। उसे डिबेट के चक्कर में विवेकानन्द और राममनोहर लोहिया की पुस्तकें खखोरनी पड़तीं। वह कमरे से पसीना-पसीना जब बाहर निकलती तो झींकती हुई, "इस कमरे में एक टेबिलफैन क्यों नहीं लगा सकते हम!" पर पापा कहते,

"अलभ है इष्ट अत: अनमोल,

साधना ही जीवन का मोल।"

किसी छुट्टी के दिन कवि को गोष्ठी या सभा में जाना पड़ जाता। वह कहता, "बेबी, आज किताबें तू झाड़ देना।"

प्रतिभा बिगड़ जाती, "ना बाबा, मैं उस कमरे में नहीं जाऊँगी। धूलल से मुझे अलर्जी हो जाती है। पसीने से मेरी स्किन ख़राब हो जाएगी।"

कवि आहत हो जाता, "अच्छा मुन्नी, तू झाड़ देना किताबें।"

फुरसत में कवि परिवार को समझाता, "यह देखो निराला की 'अपरा'। इसमें से कोई कविता लेकर बैठो, कितने अच्छे सान्निध्य में तुम्हारा एक घंटा बीतेगा। और किताब पढने़ में कुछ ख़र्च भी नहीं होता। जितनी बार पढ़ो, कविता का नया अर्थ सामने आता है।"

इस पुस्तक-प्रेम ने उसे समृद्ध तो किया था, उसके अन्दर तरह-तरह की काल्पनिक शंकाओं को भी जन्म दिया था। लोग जीवन से किताबों की समझ विकसित करते हैं, कवि किताबों से जीवन को तौलता-परखता। लड़कियों का रवैया देखकर कहता, "मुझे लगता है तुम लोग मुझे रीगन ओर गॉनरिल की तरह यातना दोगी। मैं ऐसा किंग लियर हूँ जिसके जीवन में कॉर्डिलिया है ही नहीं।"

उनकी बात समझने के लिए लड़कियाँ समूचा नाटक 'किंग लियर' तो न पढ़तीं पर रात में चाल्स लैम्ब की लिखी 'टेल्स फ्रॉम शेक्सपियर' उठाकर 'किंग लियर' का सार-संक्षेप पढ़ जातीं। सुबह मनीषा पापा से उलझ पड़ती "आपने क्या समझकर मुझे गॉनरिल बनाया। आप मुझे कॉर्डिलिया नहीं कह सकते थे!"

बिजली जाने पर इन्दु अगर मोमबत्ती हाथ में लिये दरवाज़े बन्द करती नज़र आती कवि कहता, "तुम लेडी मैकबेथ की तरह हाथ में मोमबत्ती पकड़े मत घूमा करो, मुझे इसमें षड्यन्त्र की बू आती है।"

माँ समझती नहीं थीं इसलिए बुरा भी नहीं मानतीं। उन्होंने पति को भगवान की तरह अपने जीवन में प्रतिष्ठित कर रखा था। वे पूरे मनोयोग से उनकी सेवा में लगी रहतीं। इन्दु बड़ी अच्छी श्रोता थीं। दफ्तर से आकर कवि रेडियो की तरह चालू हो जाता, "चावला ने आज यह कहा, मैंने उस पर यह कहा। हिन्दी वार्ता के प्रोड्यूसर ने आज लिखा कि जन्माष्टमी पर 'श्रीकृष्णजन्म' शीर्षक वार्ता का प्रसारण हो। मैंने टिप्पणी लिखी कि द्वारिकाधीश मन्दिर की ओ.बी. के बिना जन्माष्टमी पर किसी भी वार्ता का कोई औचित्य नहीं है।"

पापा के दफ्तर-पुराण से बेटियाँ बोर होने लगतीं। यहाँ तक कि दिन भर बजते रेडियो के प्रति भी वे उदासीन हो जातीं। कभी कोई अच्छी गज़ल या गीत सुन पड़ता तो ज़रूर कान लगा देतीं पर उनके ज़ेहन में रेडियो सिलोन एक सपने की तरह गूँजता।

प्रतिभा तो धड़ल्ले से पद्मनाभन के घर जाकर बिनाका गीतमाला कार्यक्रम सुनकर आती, मनीषा घर बैठे ही अन्दाज़ लगाती आज कौन-सा गाना किस पायदान पर होगा। प्रतिभा के पास गानों की एक मोटी कॉपी थी जिसमें फिल्मी, ग़ैर-फिल्मी गीत लिखे हुए थे।

पड़ोस के पाठक जी आयकर अधिकारी थे। वे कवि के महकमे को ज्याकदा अहमियत नहीं देते। उन्हें लगता था कि आयकर-विभाग देश की नब्ज़ है। वे छुट्टी की सुबह बरामदे में दिख जाते। हलो, कैसे हैं की औपचारिकता के बाद वे कहते, "अब तो इंडिया में टेलीविज़न भी आ रहा है। अग्रवाल साहब आप रेडियो वाले अब क्या करोगे। कोई नहीं सुनेगा रेडियो। अपने लिए प्रसारण करते रहो आप!"

कवि कहते, "पाँच साल और बूढ़े हो जाओ, तब पूछूँगा, भई रेडियो अच्छा है या टी.वी.। कुर्सी पर उठंग बैठकर देखना पड़ता है टी.वी.। आँखें अलग चौपट। रेडियो का क्या है, बैठकर सुन लो, लेटकर सुन लो। घूमते हुए सुन लो; काम करते हुए सुन लो। तुम बाथरूम जाओ तो यह बाथरूम चला जाएगा, तुम पाखाने जाओ तो पाखाने। रेडियो के समाचार-वाचकों का उच्चारण देखो, विश्वस्तर का होता है। आपके दूरदर्शन की क्या नाम है आसमां सुलतान एक ल$फ्ज़ भी सही नहीं बोल पाती, प्रधानमन्त्री को पदानमन्त्री कहती है।"

पाठक जी निरुत्तर हो जाते। वे अपने घर प्रस्थान कर जाते।

मनीषा कहती, "पापा आप तो घर आये के एकदम पीछे पड़ जाते हैं। आखिर हर एक को अपना मत रखने का हक़ होता है।"

"यह मत नहीं मतिभ्रम है, मेरी बातों में दख़ल मत दिया कर।"

मनीषा अब तक चश्मा लगाने लगी थी और अपने चश्मे से चीज़ों को देखना भी सीख रही थी।

यह वह समय था जब वह अपने माता-पिता और बहन की खूबियों-खामियों से परिचित हो रही थी। इसीलिए उस दिन उसे कोई ज्याथदा ताज्जुब नहीं हुआ जब बी.ए. उत्तीर्ण करने के तुरन्त बाद प्रतिभा ने एक रात घर में घोषणा की, "मैं बहुत जल्द निसार सर के साथ बम्बई जा रही हूँ।"

कवि एकदम से बौखला गया, उसने कहा, "क्या कहा, ज़रा फिर से तो कहना।"

प्रतिभा ने दूनी हिमाकत से दुहराया, "विश मी लक पा, मैं अपने पहले मॉडलिंग असाइनमेंट पर निकल रही हूँ।"

माँ ने उबलकर पूछा, "वह मियाँ भी साथ जा रहा है?"

"ऐसे मत बोला करो माँ, निसार सर बहुत बड़े कलाकार हैं। विज्ञापन-जगत् में उनकी बड़ी पहुँच है।"

"उस बदमाश को मैं कल ही ठिकाने लगाता हूँ। एक मेरा ही घर मिला है उसे बिगाडऩे को।" कवि चिल्लाया।

"उन्होंने कुछ नहीं किया। वे तो मेरी मदद कर रहे हैं। आपने मुझे पहले जाने नहीं दिया। देखिए उनके मार्गदर्शन में वैजू और सुनयना कितनी तरक्की कर गयीं।"

"क्या तरक्की कर गयीं। बी.ए. हुआ उनका।" कवि ने पूछा।

"दोनों ने अपनी डांस अकादमी खोल ली। बी.ए. की डिग्री का वे क्या करतीं।"

"तेरा कहने का मतलब पढ़ाई-लिखाई का कोई मतलब नहीं है?"

"कर तो लिया मैंने बी.ए. इससे क्या होता है। इन्सान के पास हुनर होना चाहिए।"

"तुझे दुनिया में यही हुनर दिख रहा है कि तू मॉडल बन जाय। यह अकल का नहीं शकल का धन्धा है।" माँ ने कहा।

"इतनी फूहड़ सोच है आपकी माँ। किसी भी कला को इतना मत गिराइए।"

कवि ने डाँटकर सबको चुप किया। गम्भीर स्वर में उसने कहा, "देख बेबी, उस आदमी के साथ तो मैं तुझे हरगिज़ नहीं जाने दूँगा। लोग कहेंगे अग्रवाल साहब की लडक़ी एक तबलची के साथ भाग गयी। हाँ, अगर वह विज्ञापन कम्पनी, यहीं, पूना आकर तेरा फोटो सेशन करे तो मैं विचार करूँ।"

"पापा आप निसार सर को तबलची कहकर उनकी बेइज्ज़ती कर रहे हैं। वे इतने नामी तबला-कलाकार हैं। जो आप समझ रहे हैं, वह सब गलत है। सर बाल-बच्चेवाली जिम्मेदार आदमी हैं। वह सिर्फ मेरे कैरियर की फिक्र में जा रहे हैं।

"फिर भी लोगों को यह सब क्या पता? तू खुद सोच, इस बात का आशय क्या निकलता है?"

"मैं लोगों की परवाह नहीं करती। लोग हमारे किस काम आते हैं!"

"बेवकूफ़ है तू। समाज के बिना व्यक्ति की कोई जगह नहीं होती। समाज में आज भी विवाह से पहले लडक़ी का घर से बाहर चला जाना अपचर्चा का कारण बनता है।"

"पापा आपकी बातें असंगत हैं। वैसे तो आप बड़े मॉडर्न, क्रान्तिकारी बनते हैं। क्या मैं मानूँ आपकी समस्त शिक्षा-दीक्षा गलत निकली।"

"बेबी," पापा ने धमकाया, "तू बड़-बड़ किए जा रही है। जिसे तू बड़ा भारी कैरियर मान रही है वह कुछ नहीं सिर्फ ऐय्याश लोगों का, लड़कियों को बहकाने का बहाना है।"

"एक ग़ैर जाति के लफंगे के साथ तुझे कैसे जाने देंगे हम, चुपचाप घर बैठ, टांग तोड़ दूँगी तेरी।" माँ ने आखिरी चेतावनी दी।

"दरअसल रोहिणी भाटे, नगेन्द्र गौतम, कुमार साहब जैसे मठाधीशों ने निसार अहमद को सिर चढ़ा रखा है। मैं अबकी इसका कॉन्ट्रेक्स कैंसिल करवाकर छोड़ूँगा।"

"आपसे ऐसी ही घटिया बात का खटका था। मुझे सर ने पहले ही कहा था ऐसा आप करेंगे। ठीक है वे मेरे संग नहीं जाएँगे। यहीं बैठे फोन से सारा इन्तज़ाम कर देंगे पर पापा मैं अब यहाँ नहीं रहूँगी। आपका यह एम.ए. डी.फिल. वाला रास्ता मैं नहीं चलूँगी।"

"तो तू रोहिणी भाटे का नृत्य-भारती जॉयन कर ले। नाच सिखाने की तेरी इच्छा पूरी हो जायगी।"

"यह आप तय नहीं करेंगे पापा, मैं क्या करूँगी।"

"तेरे अच्छे के लिए ही कह रहे हैं पापा।" माँ ने कहा।

"पापा आप हमें कठपुलती समझते हैं, जैसे मर्जी घुमा दिया, जैसे मर्जी नचा दिया। बनाओ आप मुन्नी को, जो बनाना है। मुझे मेरे हाल पर छोड़ दो।" प्रतिभा सारे घर को आक्रोश और असन्तोष में फनफनाता छोड़ अपने कमरे में चली गयी।

क्रान्ति का बिगुल बज चुका था। अपनी-अपनी जगह मोर्चे तन गये। मनीषा को मध्यस्थ की भूमिका निभानी थी। उसके या कोलीन के हाथ प्रतिभा के कमरे में नाश्ता, खाना भिजवाया जाता। एक-दो बार मनीषा ने दबे स्वर में दीदी को समझाया, "दीदी तुम एक बार जाकर पापा को सॉरी बोल दो। इतने दिनों से पापा न सोये हैं, न खाना खा रहे हैं, बस सिगरेट पिये जा रहे हैं। तुम्हें उनका कोई ख़याल नहीं!"

प्रतिभा ने भभककर कहा, "उन्हें मेरा ख़याल है? उन्हें जो प्रयोग करना है अपनी जिन्दगी से करें।"

मनीषा पापा को समझातीं, "पापा आप इतना सोचना छोड़ दीजिए। आप कोई नयी किताब प्लान कीजिए, आप कोई नयी किताब पढ़िए।"

जवाब माँ देतीं, "तुम बेटियों ने बड़ा इन्हें पढने़-लिखने लायक छोड़ा है न।"

माँ से बात करना मनीषा को गवारा नहीं। उनमें तर्क नहीं है, बस तेवर और ताने हैं।

एक दिन सवेरे कोलीन प्रतिभा बेबी के कमरे में नाश्ता लेकर गयी तो हड़बड़ाई हुई वापस प्लेट लेकर आयी, "बेबीसाब अपने कमरे में नहीं हैं।"

सब उस कमरे में लपके। वहाँ मेज़ पर किताब से दबाया हुआ छोटा-सा ख़त था जिसमें प्रतिभा ने लिखा था :

"पापा मेरा इस घर में वक्त ख़त्म हो गया है। बम्बई से मुझे बार-बार बुलावा आ रहा है। मैं वहाँ, फिलहाल वैजू और सुनयना के साथ गोरेगाँव वाले घर में रहूँगी। दुखी न हों, आपका शुक्रिया।"

घर के तीनों सदस्य चीत्कार कर उठे। कोलीन घबरा गयी। वह बोली, "क्या हुआ बेबी मेमसाब को? स्यूसाइड करने को गयी क्या?"

इन्दु ने उसे डपटा, "बकवास मत कर। बेबी बम्बई गयी है, चिट्ठी में यह लिखा है।"

"अपना बॉयफ्रेंड के साथ?" कोलीन का सवाल था।

मनीषा ने होठों पर उँगली रखकर उसे चुप कराया। कमरे से कोलीन के जाते ही इन्दु भरभराकर बिस्तर पर गिर गयीं, "मेरी पली-पलाई लडक़ी चली गयी, बेबी तो मेरी जान थी।"

कवि ने थरथराते हाथों से प्रतिभा की चिट्ठी आगे करते हुए कहा, "बीस बरस हमने इसे बताशे की तरह रखा, जवाब में यह सूखा-सा शुक्रिया थमाकर चली गयी।"

मनीषा के अलग आँसू बह रहे थे। कवि ने उसे पुचकारकर चुप किया, "रोते नहीं हैं बेटे। बेबी अपना पता-ठिकाना बताकर गयी है। कोई पूछे, सुन लो इनी, मुन्नी, यही कहना है, बेबी भागी नहीं है, काम पर गयी है, उसे जाना ही था, वह पहले ही कह रही थी।"

मनीषा को घपची में भरकर पापा बोले, "बेबी हैज़ चीटेड मी। बी फेथफुल टु मी मुन्नी।"

सन्ताप के उन क्षणों में मनीषा के मन में वचनधर्मिता की उत्ताल तरंगें उठीं। पापा के सीने से सट उसने अपना सुबकता हुआ सिर हिलाया, "हाँ पापा, हाँ।"

दुख में रात जितनी लम्बी और यातनादायक होती है उतनी ही रक्षात्मक भी। रात में समाज और परिवेश की ताकी-झाँकी से निजात मिलती है। कवि अपने अन्तर्बाह्य के अँधेरों में उतरकर सोचता रहा बेबी की परवरिश में उन लोगों से कहाँ गलती हुई। बगल के बिस्तर में जब तब करवट लेती इन्दु की हाय, आह सुनाई पड़ रही थी। धीरे-धीरे ये कराहें बन्द हो गयीं। कवि को लगा पत्नी की आँख लग गयी है। काफ़ी देर बाद ही उसे लगा जैसे इन्दु की निश्चलता स्वाभाविक नहीं है। उसने उसे हिलाया, "इनी, इनी।"

इन्दु पर बेहोशी छायी थी। कवि ने मुन्नी को आवाज़ दी।

सोयी वह भी नहीं थी। फ़ौरन आ गयी।

इन्दु पर जब-तब बेहोशी के दौरे पड़ते थे। उसका रक्तचाप मन्द हो जाता और हाथ-पैर ठंडे पड़ जाते। मनीषा ने माँ के मुँह में कॉरामीन की बूँदें ज़बरदस्ती टपकाईं, पानी के छींटे डाले और उनके पैरों के तलवे मले। थोड़ी देर में इन्दु ने आँखें खोल दीं और बेबी-बेबी पुकारने लगीं। एक बार फिर तीनों पर रुलाई का दौरा पड़ा।

संयत होने पर कवि ने पूछा, "इन्दु, बेबी के पास रुपया-धेला कुछ है या बस यों ही चप्पल पहनकर निकल गयी!"

इन्दु ने याद किया, "मेरे पास उसने अपने पाँच सौ रुपये जमा कर रखे थे। अभी परसों ही मुझसे माँग लिये कि मम्मी मेरे रुपये दे दो?"

"और तुमने दे दिये?"

"उसने कहा किताबें खरीदनी हैं उसे। फिर ये उसी के इनामों के पैसे थे।"

"न तुम देतीं, न वह जाती।" कवि पछताने लगा।

"इत्ती बड़ी बम्बई में पाँच सौ रुपये पाँच घंटे भी न चलें। अकड़ू वह इतनी है कि मर जायगी, उधार नहीं माँगेगी।"

मनीषा बोली, "जिन्होंने उसे बुलाया है, वे देखभाल भी करेंगे।"

दफ्तर में निसार अहमद ने पहले की तरह ही कविमोहन का आदाब किया। कवि का मन हुआ एक चपत उसके चेहरे पर लगाकर पूछे, "कहाँ भगाया तूने मेरी बेटी को, बोल।" बड़ी मुश्किल से उसने अपना गुस्सा पिया, सिगरेट के लम्बे कश के साथ।

दफ्तर में सारा दिन कवि का मूड उखड़ा रहा। वह बार-बार घड़ी देखता, पाँच बज ही नहीं रहे थे। प्रोड्यूसरों को थोड़ा ताज्जुब हुआ कि आज अग्रवाल साहब स्टूडियो और कंट्रोल रूम में एक भी बार नहीं झाँके। उन्होंने आपस में कहा, "लगता है अग्रवाल साहब की तबीयत नासाज़ है या ऊपर से झाड़ पड़ी है कि हमारे काम में दख़लन्दाज़ी छोड़ो।"

रेडियो स्टेशन का रिवाज़ था कि यहाँ हर नयी बात को सीधे मन्त्रालय से मिली डाँट-फटकार का असर समझा जाता। सूचना प्रसारण मन्त्री शास्त्रीय संगीत के ज्ञाता भी थे इसलिए कलाकारों के मन में विश्वास बना रहता कि वे जो भी करेंगे कलाकारों के हित में करेंगे।

कई महीनों के बाद डाक से प्रतिभा की चिट्ठी आयी। सबसे पहले पत्र-पेटी में पड़ी चिट्ठी पर मनीषा की नज़र पड़ी। चिट्ठी लेकर वह पत्ता-तोड़ अन्दर भागी।

"दीदी की चिट्ठी, मम्मी पापा देखो।"

सब बैठक में इकट्ठे हो गये।

कवि ने ख़त खोला। पूरे दो पन्नों का था। प्रतिभा ने पूरी तफ़सील से अपने फोटो सेशन और इंटरव्यू के बारे में बताया था। वह उम्मीद से भरी हुई थी कि बहुत जल्द किसी अच्छी विज्ञापन एजेंसी का उसे कॉन्ट्रेक्ट मिल जायगा। अन्तिम पंक्तियों में उसने लिखा था मम्मी आप फिक्र मत करना। यहाँ वैजू, सुनयना ने पूरी गृहस्थी जमा रखी है, बिल्कुल घर जैसा खाना मिल रहा है। मनीषा के लिए लिखा था, "मुन्नी मेरे पैर जम जाएँ तो तुझे बम्बई बुलाऊँगी। अभी चौपाटी, कमला नेहरू पार्क, मछली-घर कुछ नहीं देखा, तेरे साथ घूमूँगी।"

कुछ देर को कवि-परिवार में आल्हाद छा गया। बहुत दिनों के बाद आज नाश्ता स्वादिष्ट लगा। कवि ने कहा, "अकल तो प्रतिभा में बहुत है पर गलत दिशा में लगा रही है। उसे यह नहीं पता मॉडलिंग में कैरियर मुश्किल से दस साल का होता है। तीस की होते ही मॉडल को बाहर का दरवाज़ा दिखा दिया जाता है।"

इन्दु बोलीं, "उसने घर छोड़ा नहीं है। विज्ञापन का काम बम्बई में होता है इसलिए चली गयी। देखा, कैसे अच्छे से लिखी है चिट्ठी।"

कवि एक बार और पढने के लिए चिट्ठी अपने कमरे में ले गया। उसके चेहरे पर अवसाद और सन्तोष के धूप-छाँही बादल मँडरा रहे थे। मन में अभी नाराज़गी बनी थी कि घर की लाड़ो-कोड़ो बच्ची, जिसे बेटे से भी ज्याददा प्यार-दुलार से पाला, सभी कलाओं में प्रवीण बनाया, न जाने किन ताक़तों के परामर्श पर विश्वास कर, अपना घर छोडने को प्रेरित हुई। कौन कमी थी यहाँ कि वह इतने उथले-छिछले कैरियर की तरफ़ लपकी। ये लाइन से लाइन भरी किताबों की आलमारियाँ, ये इनाम से सजे ताक उसके जीवन में ज़रा-सी भी रोशनी नहीं डाल सके।

सन्तोष था तो बस इस बात का कि शहर में किसी ने प्रतिभा की अनुपस्थिति को चरित्रहीनता से जोडक़र अपवाद पैदा नहीं किया। कवि के दुश्मनों ने भी सिर्फ इतना कहा, "अग्रवाल साब ने नसीहतें दे-देकर बच्ची को इतना सताया होगा कि वह भाग खड़ी हुई।"

अभी प्रतिभा के बारे में मथुरा कोई ख़बर नहीं की थी कवि ने। क्या फ़ायदा, जीजी और दादाजी वैसे ही अकेले, अस्वस्थ और असहाय हैं, उन्हें एक धक्का और क्यों दिया जाय।

इन्दु ने बेबी की चिट्ठी बार-बार पढ़ी, पढ़ते हुए कभी हँसी, कभी रोयी, फिर उसने चिट्ठी अपने तकिये के नीचे दबा ली। बिस्तर पर लेटे हुए उसे धुर बचपन की बेबी दिखती रही, कैसा रूप था मेरी लाली का। कहीं बाहर उसे लेकर जाती तो लोग रास्ते पर रुककर उसे देखा करते। वह उसे जो भी रंग पहनाती वही उस पर फूट-फूटकर खिलता। उसकी दादी हर बार टोकती-'इन्दु मैंने कित्ती बार कही छोरी को लाल रंग न पहराया कर, याय नज़र लग जाय है।' काला, नीला, हरा, गुलाबी हर रंग पर यही नसीहत मिलती क्योंकि बाहर से लौटकर बेबी की तबीयत थोड़ी ख़राब हो जाती। कभी उसकी नाक बहने लगती, कभी आँखें आ जातीं तो कभी पेट चल निकलता। अभी छह बरस की भी नहीं हुई थी तो कवि ने उसे दो हाथों में तश्तरी थामकर नाचना सिखाया था-'ऐ मालिक तेरे बन्दे हम, ऐसे हों हमारे करम, नेकी पर चलें और बदी से डरें ताकि हँसते हुए निकले दम।'

दादी ने तभी टोक दिया था, "यह दम निकलने वाला कौन-सा गाना हुआ। हमें इसे नचनिया नायँ बनानौ, रहने दे कवि।"

मनीषा फूल की तरह हल्का महसूस कर रही थी क्योंकि उसके मम्मी-पापा खुश थे। वह सोच रही थी चलो दीदी ने इतना तो सोचा कि चिट्ठी लिख दे। पता नहीं क्या कर रही होगी दीदी। कौन उसके कपड़ों की तह लगाता होगा, कौन किताब पढक़र सुनाता होगा? याद तो आती होगी मुन्नी की। इस वक्त मनीषा को बहन की सिर्फ अच्छी बातें याद आ रही थीं। एक बार मनीषा के पैर में फोड़ा निकला था। पैर ज़मीन पर रखना दुश्वार था। इम्तहान के दिन थे। वह सुबह से रो रही थी मेरा पेपर छूट जायगा, मैं फेल हो जाऊँगी। प्रतिभा ने उससे कहा, 'चल आटे की बोरी बन जा मेरी पट्ठी पर, तुझे स्कूल ले चलूँ।' मम्मी पापा हैं-हैं करते रह गये दीदी ने उसे पट्ठी चढ़ाकर स्कूल पहुँचाया।

एक बार थर्ड स्टैंडर्ड में मनीषा के नम्बर थोड़े पिछड़ गये और वह अव्वल की जगह तीसरे नम्बर पर आयी। रिपोर्ट कार्ड लेकर घर जाने में उसे भय हो रहा था कि पापा मारेंगे या सज़ा देंगे। प्रतिभा उस बार पाँचवीं में फस्ट आयी थी। उसने अपना रिपोर्ट कार्ड मनीषा को देकर कहा, "डर मत, तू यह वाला दिखा देना, मैं तेरा वाला दिखा दूँगी।"

यादें ज्यापदा देर सुहानी नहीं रहीं। बीच के बरसों में प्रतिभा का उसे बार-बार टोकना, रोकना और बेबात दौड़ाना भी मनीषा को भूला नहीं था। दिन में दो-चार बार उसे क्रैक (पागल) और हाफ-क्रैक (आधी पागल) कहना बड़ी बहन का शगल था। घर में प्रतिभा ऐसे रहती जैसे कमल के पत्ते पर ओस की बूँद। वह समस्त काम का बोझ मनीषा पर डाल देती कि कहीं उसके हाथ मैले-गीले न हो जायँ। यहाँ तक कि मम्मी के बीमार पडऩे पर भी वह चौके में हाथ न बँटाती। वह पापा से कहती, "पापा कोलीन को भेजकर खाना ढाबे से मँगाते हैं, मुँह का स्वाद बदल जाएगा।" वह यह न सोचती कि मरीज क्या खाएगा। तब मनीषा ही रसोई का रुख करती कि जैसी भी उसे आती है, मम्मी के लिए लौकी की सब्ज़ी और मूँग की दाल उबाल दे।

और अब वह मनीषा को ऐसी परिस्थिति में फँसा गयी थी जिससे निकलने की राह आसान नहीं थी। उसके ऊपर अपने आचरण की जिम्मेदारी तो अपनी जगह थी, अपनी बहन के आचरण का निराकरण भी उसे ही करना था। गुड गर्ल का खिताब हासिल करने के लिए उसे दिन-रात घर की कसौटी पर घर्र-घर्र करना था। वे जताते नहीं थे

पर मनीषा को अन्दाज़ था कि उसके कॉलेज जाने और आने के वक्त का हिसाब सिर्फ घड़ी नहीं वरन् घर के लोग भी रख रहे थे।

41

घर से निकलने के बाद हर दिन, जीवन की पाठशाला में एक नया अध्याय जोड़ता है, यह तथ्य और सत्य पिछले एक वर्ष में जितना प्रतिभा ने जाना उतना कोई लडक़ी नहीं जान सकती। यह ठीक है कि उसे सिर छुपाने की जगह के लिए संघर्ष नहीं करना पड़ा। वैजयन्ती और सुनयना ने उसे स्टेशन पर ही रिसीव कर लिया।

उसने पाया उन दोनों लड़कियों के पास गोरेगाँव के यशवन्तनगर में तीन बैडरूम का कॉटेज $फ्लैट है। उन्होंने खुले दिल से एक कमरा प्रतिभा को दे दिया। नाश्ते में साबूदाने की खिचड़ी और कॉफी मिली जो घर के खाने-नाश्ते से एकदम हटके थी। दोनों समय शकुबाई नाम की सेविका आकर खाना बना देती।

वैजू और सुनयना ने पहले दिन ही, भोजन के पश्चात् प्रतिभा पर स्पष्ट कर दिया, "हमारी अकादमी का सिद्धान्त है, 'परिश्रम ही सफलता दिलाता है।' सबसे बड़ी बात यह कि डांस स्कूल ही हमारी इन्कम की नींव है। तुम जिस मॉडलिंग का सपना देखकर यहाँ आयी हो, वह हमने भी करके देखी है। वहाँ बड़ी गला-काट दौड़ है, आज एक विज्ञापन मिला, फिर कहो तो छह महीने तक कुछ नहीं। कहीं विज्ञापन बनने के बाद रिजेक्ट हो जाय तो मॉडल को बेवजह मनहूस करार देते हैं। डांस स्कूल में पचास-साठ बच्चे हमेशा रहते हैं। हमारी मानो तो तुम भी इसी को अपनी जीविका समझो। जो आमदनी होगी उसका बीस प्रतिशत तुम्हारा।"

प्रतिभा को ये शर्तें स्वीकार करनी ही थीं। उसके पास कोई और विकल्प नहीं था। मात्र एक संकल्प था कि हारे हुए सिपाही की तरह घर नहीं लौटना है।

प्रतिभा के हिस्से सुबह की कक्षाएँ आयी थीं। पहला पीरियड सात बजे, जूनियर्स का होता। छोटी, गुलगुली, गदबदी बच्चियाँ जिन्हें अभी ठीक से चलना भी नहीं आता था, आँखें मलती डांस सीखने पहुँच जातीं। कुछ तो आसपास की थीं, दो-तीन दूर की थीं जिनके पिता उन्हें छोड़ जाते। प्रतिभा को सुबह जल्द उठने का अभ्यास न था। अक्सर उसकी नींद बच्चों की कॉलबेल पर ही टूटती। एक-दो दिन बच्चे बैठे इन्तज़ार करते रहे और प्रतिभा को तैयार होकर आने में देर लगी।

वैजयन्ती ने अपने कमरे से अलार्म क्लॉक लाकर उसके कमरे में रख दी, "प्रीति डियर साढ़े छ: बजे का अलार्म सैट कर लो। आध घंटा बहुत होता है तैयार होने के लिए। तुम्हें तो निवृत्त होकर बस मुँह धोना होता है।"

वैजू और सुनयना का रंग दबा हुआ था। वे स्नान के बाद जो मेकअप चेहरे पर चढ़ातीं, वह फिर रात को ही धुलता। प्रतिभा का गोरा भभूका रंग और तीखे नाक-नक्श खुद अपना शृंगार थे। वह नृत्य-भारती की परम्परा में सुबह सफेद सलवार-कमीज़ पहनकर तैयार होती। लेकिन सुबह जागना उसे अखर जाता। बड़ी शिद्दत से अपना घर और कमरा याद आता जहाँ वह सुबह आठ बजे तक सोती और तभी उठती जब मम्मी या कोलीन उसे चाय का प्याला थमातीं।

आखिरकार बारह तारीख़ के साथ-साथ निसार सर नमूदार हुए। अकेले नहीं। उनके साथ उल्का एडवर्टाइजिंग की पूरी टीम थी। वे सब वैजू और सुनयना को पहले से जानते थे।

इमरान ख़ान के साथ कैमरामैन नरिन्दर बेदी और रोज़ी पिंटो भी थीं जिन्होंने तय किया कि आज ही फोटो सैशन शूट कर लिया जाय। एक-दो शॉट्स उन्होंने नृत्य-मुद्रा में प्रतिभा के वहीं ले लिये और बाकी के लिए वे सब उसे लेकर आरे मिल्क कॉलोनी के हरियाले परिसर में चले गये। बेदी ने प्रतिभा को हर कोण से क्लिक किया और अन्त में कैमरा समेटते हुए बोले, "शी इज़ फेंटैस्टिक।"

खाली होते ही प्रतिभा ने निसार सर को घेरा, "मेरे पापा कैसे हैं, आपके साथ कोई लड़ाई-झगड़ा?"

"दुखी इनसान सबसे पहले अपने आपसे लड़ता है।" निसार ने जवाब दिया, "जब से तुम गयी हो, अग्रवाल साब का गुस्सा भी कहीं चला गया है, एकदम चुपचाप, तुम्हारा गम पी गये लगते हैं।"

प्रतिभा का मन भर आया, "यहाँ आकर तो मैं डांसटीचर बनकर रह गयी हूँ। यही बनना था तो पूना क्या बुरा था।"

"एक बार ब्रेक मिलने की देर होती है, फिर तुम अलग कहीं रह लेना। तुम्हारी हिफ़ाज़त करनी कौन आसान है।"

फोटो सेशन के बाद इंटरव्यू में भी प्रतिभा ने सबको प्रभावित कर लिया। उल्का एडवर्टाइजिंग ने एक साल का अनुबन्ध किया मगर सी.ई.ओ. इमरान ने कहा, "यह प्रतिभा नाम बड़ा बेढब है, तुम्हारा नाम बदलना पड़ेगा। मॉडलिंग की दुनिया में छोटे नाम चलते हैं। तुम्हारा नाम बहार या निखार जैसा कुछ कर दें?"

प्रतिभा ने एतराज़ किया, "बहार, निखार तो बड़े ख़राब नाम हैं।"

निसार ने कहा, "प्रतिभा का नाम बदलने पर छोटा हो सकता है जैसे प्रीति या प्रिया। एकदम से बदल देना तो गलत है।"

"हाँ, प्रीति कुछ ठीक है, वैसे प्रीतिलता नाम की एक और मॉडल त्रिकाया में है।"

"मेरा ख़याल है कॉन्ट्रेक्ट में प्रीति अग्रवाल लिख दिया जाय। इसी नाम से इनका बैंक खाता भी खुलवाना होगा।" निसार ने कहा।

मॉडलिंग के कैरियर का सूत्रपात प्रतिभा के लिए सौन्दर्य-साबुन के प्रचार के लिए बनी विज्ञापन फिल्म से हुआ। वर्षों से इस्तेमाल में आ रहा था यह साबुन। हिन्दुस्तान प्रॉडक्ट्स के इस सौन्दर्य-साबुन में अब कुछ परिवर्तन किए गये थे।

न सिर्फ इसका साइज़, वरन ख़ुशबू और रंग भी बदल दिये गये। इन्हीं विशेषताओं को दर्शाता एक ज़ोरदार जिंगल था जो फिल्म की पृष्ठभूमि में बजना था।

प्रतिभा को यह करना था कि खंडाला के जल-प्रपात में इस साबुन से नहाना और हँसना था। निर्देशक की हिदायत थी, "आँखें खुली रखनी हैं, साबुन की टिकिया हाथ से न छूटे यह ध्यान रखना है और ज़रा भी झिझकना नहीं है।"

सिर्फ एक मिनट की फिल्म थी लेकिन उसके लिए कितनी तैयारी, ताम-झाम और तकलीफ़ गवारा की गयी, यह प्रतिभा ने पहली बार देखा। यहाँ तक कि उल्का की ओर से एक डॉक्टर का भी इन्तज़ाम था कि ज्या-दा देर

नहाकर यदि मॉडल को ज़ुकाम-खाँसी हो जाय तो उसका तुरन्त उपचार हो। रोज़ी पिंटो ने हर एक्शन का लिखित ब्योरा अपनी फ़ाइल में रखा हुआ था।

प्रतिभा, पिछली रात, बहुत उत्तेजित और व्याकुल रही थी। वैजू उसका हौसला बँधा रही थी, "तुम एकदम नैचुरल रहना। जैसे अपने बाथरूम में नहाती हो, वैसे ही नहाना।"

सुनयना ने कहा, "पर टिकिया कसकर पकड़े रहना। खंडाला फॉल्ज़ का वेग इतना तेज़ होता है कि एक बार तो इनसान हकबका जाता है।"

प्रतिभा डर गयी, "क्या खंडाला जाकर नहाना ज़रूरी है। यहाँ बाथरूम में नहीं हो सकती यह फिल्म?"

"लोकेशन का भी आकर्षण होता है। खंडाला फॉल्ज़ देखना किसे नहीं पसन्द! इस साबुन की शूटिंग पहले भी हमेशा खंडाला-फॉल्ज़ में हुई है। लकी माना जाता है यह।"

"पर मुझे तो लग रहा है मैं फँस गयी। इतने लोगों के सामने नहाने का दृश्य?"

वैजू हँसी, "मॉडलिंग-जगत में नहाने का दृश्य प्रवेश-द्वार होता है। इसे पार कर गयी तो मॉडल बन गयी।"

सुनयना ने कहा, "मज़ेदार बात यह कि तुम्हें तो घर में भी नहाने के लिए ठेलना पड़ता है, और अब तुम वहाँ जाकर नहाओगी तो कमाओगी।"

"कपड़ों का क्या होगा?"

"साइट पर पता चल जायगा।"

"तुम दोनों भी चलो।"

"ना बाबा, स्कूल की नागा नहीं करनी।"

यह तो अगले दिन लोकेशन पर पहुँचकर ही पता चला इस विज्ञापन फिल्म पर 'जिस देश में गंगा बहती है' फिल्म का जबरदस्त प्रभाव था। प्रतिभा के जिस्म पर बिल्कुल पद्मिनी शैली में सफेद साड़ी लपेटी गयी। आये लोगों के बीच वह मन-ही-मन संकोच से सिकुड़ती जा रही थी। उसने रोज़ी पिंटो से कहा, "आप यहाँ से भीड़ को हटवा दें, हमें अच्छा नहीं लग रहा।" रोज़ी ने कहा, "गेट यूज्ड टु दिस। विज्ञापन-फिल्म तो लाखों लोग देखेंगे।"

फिर भी इमरान ने ताली बजाकर भीड़ को रफ़ा-दफ़ा करने की कोशिश की।

जैसे ही प्रतिभा जल-प्रपात के नीचे पहुँची, बर्फीले ठंडे पानी के स्पर्श से उसका सर्वांग काँप गया। वह तो हमेशा गर्म पानी से नहाने की अभ्यस्त रही थी। यहाँ तक कि गर्मियों में भी वह गर्म पानी से नहाती।

एक बार को उसका मन हुआ कि इस विज्ञापन-जाल से मुक्त होकर वह वापस चली जाय पूना जहाँ घर की सुरक्षा और सुविधा उसका इन्तज़ार कर रही है। लेकिन उसने पाया कैमरा, निर्देशक, स्पॉटबॉय सब अपनी पोजीशन ले चुके हैं। वापस निकल भागने के सभी रास्ते बन्द थे।

तीन रिटेक में शॉट ओके हो गया। सितारा साबुन की टिकिया हाथ में लेकर प्रतिभा की आह्लालादपूर्ण हँसी उसके रूप और यौवन के साथ और भी रसवन्ती हो गयी। शॉट ख़त्म होने पर ही वह झरने से बाहर निकली, एक आदमी नया ड्रेसिंग गाउन लेकर खड़ा मिला। उसे जल्दी-जल्दी दो कप कॉफी पिलाई गयी।

सभी ने उसे बधाई दी कि उसने बहुत अच्छा अभिनय किया। वह सोच रही थी अभिनय कहाँ किया वह तो असल में नहा ली। संवाद तो कोई बोला ही नहीं। गूँगी गुडिया की तरह बाँहों पर, चेहरे पर साबुन मला और चट्टानों से सटकर झरने की धार बदन पर पडने दी।

इस मूक फिल्म में आवाज़ और जिंगिल डबिंग लैब में और धार सम्पादन-कक्ष में डाली गयी। वहाँ रील तराश कर चुस्त बनाई गयी। सितारा साबुन के बारे में चार पंक्तियों की कमेंट्री भी जोड़ी गयी। इस सबके बाद उल्का के कर्मियों के साथ बैठकर सम्पादन-कक्ष में, प्रतिभा ने विज्ञापन फिल्म देखी तो औरों के साथ वह भी अपने पर फिदा हो गयी। सबने उसे बधाई दी और इमरान ने घोषित किया, "ए न्यू स्टार इज़ बॉर्न टुडे-प्रीति।"

जल्द दो और उत्पादों की विज्ञापन-फिल्में प्रतिभा ने कीं क्योंकि इनके अकाउंट उल्का के ही पास थे। इनमें एक क्रीम विज्ञापन था तो दूसरा शैम्पू का। प्रतिभा को लगा शैम्पू की विज्ञापन-फिल्म के लिए उसे फिर नहाने का दृश्य करने को कहा जायगा पर गनीमत थी कि दोनों की शूटिंग स्टूडियो में हो गयी।

प्रतिभा अपने काम में रोज़ नये अनुभवों से गुज़र रही थी। घर में वह महसूस कर रही थी कि वैजू और सुनयना उससे थोड़ा फ़ासला रखने लगी थीं। दरअसल अपनी नयी व्यस्तता में प्रतिभा डांस क्लास को वक्त नहीं दे पा रही थी। प्रतिभा की आमदनी में यकायक इजाफा हो रहा था। उसके अन्दर नया आत्मविश्वास पैदा हो रहा था। आत्ममुग्ध तो वह पहले भी थी, जब से मॉडलिंग में उसके काम की तारीफ़ हुई वह और भी स्व-प्रेमी हो गयी। उसकी विज्ञापन फिल्म में जिंगिल-गायिका का नाम गोपनीय रखा गया था। प्रतिभा को लगता जैसे यह जिंगिल उसी ने गाया है। किशोर लडक़े-लड़कियाँ इस जिंगिल को फिल्मी गीत की तरह गाते-गुनगुनाते। ज़ेहन पर प्रतिभा का ताज़ादम, चंचल चेहरा हावी रहता। उसके व्यक्तित्व में अभी ऐसी कच्ची कमनीयता थी कि बाकी समस्त मॉडलों के चेहरे बासी और बुज़ुर्ग लगने लगे। चार महीने के अन्दर ही उसे नयी चुनौतियों और चालबाजियों का सामना करना पड़ा। रतन वाधवानी, परसिस कोठावाला, मेहर मिस्त्री, सपना सारंग विज्ञापन-जगत की जानी-मानी ए-ग्रेड मॉडल थीं। सितारा साबुन, टाटा शैम्पू और पॉण्ड्ज़ क्रीम की एड-फिल्मों से वे प्रीति नाम की इस नयी मॉडल के प्रति ख़बरदार हो उठीं। रतन ने कहा, "हू इज़ दिस चिट ऑफ अ गर्ल? क्या जानती है यह मॉडलिंग के बारे में?" उसके फोटोग्राफर मित्र सचिन पॉल ने बताया, "इसकी कैमरा-उपस्थिति बहुत प्रभावी है, तुम्हें दिखता नहीं है क्या?"

प्रीति की चपलता और सौन्दर्य पेशेवर मॉडलों के लिए खतरे की घंटी बनने लगा। सितम्बर की एक शाम उल्का एडवर्टाइजिंग वालों ने 'एम्बेसडर होटल' में एक पार्टी रखी जिसका परोक्ष उद्देश्य बिड़ला सीमेंट का अकाउंट प्राप्त करना था और प्रत्यक्ष उद्देश्य प्रीति के प्रवेश की औपचारिक घोषणा। इस पार्टी में नगर की सभी प्रमुख मॉडल आमन्त्रित थीं। प्रतिभा को साथ देने के लिए वैजयन्ती और सुनयना को भी बुलाया गया था। कुछ पुरुष मॉडल भी आये थे जिनमें जयन्त कुकरेजा तो लगातार सितारा साबुन का जिंगिल ही गाता रहा। विवेक पसरीचा बार-बार प्रतिभा के पास आकर कहता रहा, "मैं तुम्हारे बारे में थोड़ा और जानना चाहता हूँ।"

प्रतिभा सबसे खुलकर मिल रही थी, अपने प्रति व्याप्त सराहना पहचान रही थी लेकिन जब किसी ने उसके हाथ में विस्की का ग्लास देने की कोशिश की वह एकदम कठिन और गम्भीर हो आयी, "मैं बिल्कुल नहीं पीती, एक्सक्यूज़ मी।"

रतन वाधवानी ने व्यंग्य से कहा, "यह तो अभी दूध पीती बच्ची है, इसे दूध पिलाओ।"

प्रतिभा ने अपनी बड़ी-बड़ी आँखें हैरत से रतन पर टिकाते हुए कहा, "अरे आप तो बिल्कुल मेरी दादी माँ की तरह बोल रही हैं।"

हॉल में एक ज़बरदस्त ठहाका लगा और रतन वाधवानी एकदम अपदस्थ हो गयी। उस शाम सब लोग उसे दादी माँ सम्बोधन देते रहे। वह कुढ़ती रही और प्रतिभा को खूनी नज़रों से घूरती रही।

बाकी मॉडल भी प्रतिभा के सामने फ़ीकी पड़ रही थीं हालाँकि उन्होंने चटक कपड़े पहने हुए थे। प्रतिभा ने काले रंग का साड़ी ब्लाउज़ पहना था जिस पर

सितारों का काम था। वह महफिल का चाँद नज़र आ रही थी। वैजू ने आज चुस्त सलवार-कमीज़ पहना था और सुनयना ने चनिया-चोली। सपना सारंग टॉप और स्ट्रेच पेंट्स में थी तो परसिस मैक्सी में। कोई अपनी अदा से तो कोई अपने अवयवों से पार्टी में जमने की कोशिश में थी पर पार्टी का फोकस प्रतिभा ही रही।

जैसा तय हुआ था, इस बार निसार सर जब पूना से आये उन्होंने महसूस किया कि गोरेगाँव उपनगर से कफ परेड तक आने-जाने में प्रतिभा का बहुत वक्त और श्रम बरबाद होता है। उल्का के मालिक पहले कई बार कह चुके थे कि प्रीति को कहीं आस-पास कमरा लेना चाहिए। प्रतिभा निसार सर की सलाह के बिना कोई रद्दोबदल करना नहीं चाहती थी।

"हर इतवार मुझे बम्बई की दौड़ लगानी पड़ती है," निसार ने कहा, "इससे तो अच्छा है मैं नौकरी दोडक़र तुम्हारा सेक्रेटरी बन जाऊँ।"

प्रतिभा ने कहा, "सर आपके लिए तो मैनेजर की पोस्ट भी छोटी है, आप तो मेरे गॉडफादर हुए।"

"वह तो ठीक है पर तुम्हें एक बार पूना जाकर शकल दिखानी चाहिए। कितने महीने हो गये तुम्हें आये हुए।"

"डरती हूँ कहीं पापा ने गेटआउट कह दिया तो?"

"इसकी गारंटी मैं नहीं दे सकता, फिर भी घर घर ही होता है। ख़ैर, अभी तो तुम्हारा यह फ़ैशन टूअर का प्रस्ताव आया है। लैक्मे फ़ैशन वीक दिल्ली, जयपुर और लखनऊ में लाइव शो करा रहा है। पूरा प्री-पेड टूअर है। पचास हज़ार ऊपर से मिलेगा। मेरा दस परसेंट याद रहेगा न तुम्हें।"

"अरे आप पूरा रख लीजिए सर, पर मैंने तो लाइव-शो कभी किया नहीं? क्या करना होगा?"

"वहाँ बताने वाले होंगे। बस यह समझ लो कि नामी-गरामी फ़ैशन-डिज़ाइनरों की बनायी गयी पोशाकों में सजकर रैम्प पर चलना, मुडऩा और फिर चलना है; देखो ऐसे।" कहकर निसार ने कमर पर हाथ रखकर चलने का

अभिनय किया।

वैजू सुनयना भी प्रतिभा के साथ हँसने लगीं, "कित्ती लकी है तू प्रीति, तुझे निसार सर जैसे सलाहकार मिले हैं, हमें तो अब मॉडलिंग के ऑफ़र भी मिलने बन्द हो गये।"

निसार ने कहा, "माशाअल्ला अभी आप लोगों की उमर ही क्या है। तीस के पहले ही रिटायर हो जाओगी तो खाओगी क्या?"

"दरअसल हम इस डांस के रूटीन से बँध गयी हैं, फील्ड से हमारा कॉन्टेक्ट छूट गया।

"आपको काम दिला सकता हूँ पर बीस परसेंट मेरा हिस्सा।"

"पन्द्रह का रेट है।" वैजू बोली।

"मुझे कुछ बचता नहीं है। पूना से बम्बई तक की भाग-दौड़ काफ़ी मँहगी पड़ती है। जमता है तो बोलो मेरे पास एक टूथपेस्ट का और एक घी का प्रपोजल है। कल तक मॉडल बतानी है।"

वैजू ने कहा, "ठीक है निसार भाई आप हमारा नाम दे दीजिए थोड़ा चेंज हो जायगा।"

अब निसार ने बताया कि प्रतिभा को यहाँ से किसी दूसरी जगह शिफ्ट करने की बात है, गोरेगाँव ज़रा दूर पड़ता है।

"काम चल निकला तो गोरेगाँव दूर लगने लगा," सुनयना बोली, "प्रतिभा तुम शिकायत करती रही हो?"

"नहीं तो, मुझे तो कुछ पता भी नहीं," प्रतिभा ने गर्दन हिलायी।

तय यह हो रहा था कि रोज़ी पिंटो के घर पर प्रतिभा पेइंग गैस्ट की तरह रह ले। प्रतिभा ने इस इन्तज़ाम पर थोड़ी ना-नुकुर की। रोज़ी पिंटो काफ़ी रौब वाली महिला दिखाई देती थी। उसका दोस्त बनना या उसे अपना दोस्त मानना बेढब काम था। उम्र में भी वह प्रतिभा की दोगुनी थी। उल्का के ऑफिस में लोगों ने उसे बहुत कम हँसते देखा था।

"सर मैं यहीं से आती-जाती रहूँगी, रोज़ी मैम के साथ मुझे मत बाँधिए।" प्रतिभा ने इसरार किया।

निसार ने कहा, "दरअसल ये बातें मैंने नहीं इमरान ने तय की हैं। इस तरह वह यह भी पक्का करना चाहता है कि कोई दूसरी विज्ञापन एजेन्सी तुम्हें न ले उड़े।"

"पर मेरी मर्जी भी तो पूछनी चाहिए। मैं कॉन्ट्रेक्ट पर हूँ, कोई नौकरी पर नहीं कि वे मेरी हर बात तय करें। वैसे ये रोज़ी मैम रहती कहाँ है?"

"बान्द्रा।"

"बान्द्रा कफ परेड से बहुत पास तो नहीं है, मुश्किल से चार-पाँच स्टेशन का फर्क पड़ेगा।"

"प्रतिभा तुम समझा करो। जब रोज़ी को लेने स्टाफ कार आएगी, तुम्हें भी ले जाया करेगी। कितनी सहूलियत हो जाएगी।"

"सिर्फ आने-जाने की सहूलियत के लिए उस बोर औरत के साथ कौन रहेगा। फिर उनकी तो नौकरी है। मुझे तो कभी-कभी उल्का जाना रहता है।"

वैजू ने कहा, "निसार भाई टाइम्स में शनिवार को ढेर विज्ञापन आते हैं पेइंग गेस्ट जगहों के। हम देख लेंगे माकूल ठिकाना। ऐसी क्या जल्दी है।"

जगह की ढुँढ़ाई शुरू की गयी। शनिवार को दो अख़बार वे लोग और लेने लगीं। जिन जगहों में गुंजाइश नज़र आती उन पर बैजू Ö का निशान लगा देती। फोन से बात की जाती।

सोचा यह था कि किसी महिला द्वारा दिये गये पेइंग गेस्ट के विज्ञापन पर उँगली रखेंगे लेकिन सर्वेक्षण से पता चला कि आधे से ज्या दा विज्ञापन ऐसे

पुरुषों ने दे रखे थे जो पेइंग गेस्ट को अपना लिव-इन पार्टनर बनाने के इच्छुक थे। पैसे वाले, निठल्ले अमीरज़ादों का यह शगल था कि चन्द रुपयों में अख़बार में रहने की जगह का विज्ञापन छपवा दो। अगले दस-पन्द्रह दिन उनका फोन बजता रहता। कभी-कभी कोई पेइंग गेस्ट फँस भी जाता होगा। कुछ विज्ञापन पारसी और क्रिश्चियन प्रौढ़ाओं के थे जिनके पास बड़ी-सी पुश्तैनी कॉटेज़ थी और जो अपने अकेलेपन का इन्तज़ाम भी किरायेदार से करना चाहतीं। प्रतिभा ने नाक चढ़ाकर कहा, "अगर बूढ़ों के साथ ही रहना है तो रोज़ी पिंटो क्या बुरी है।"

वैजू ने कहा, "लगता है गोरेगाँव तुमसे छूटेगा नहीं। हम जैसी जवान मकान-मालकिन तुम्हें ढूँढ़े न मिलेगी।"

42

इस बार दादी के बीमार होने की ख़बर पर मनीषा मथुरा नहीं जा पायी। माँ ससून हॉस्पिटल में भरती हैं। एक हफ्ते से कोमा में हैं। कभी-कभी कराहने के सिवा उनमें चेतना का कोई चिह्न नहीं है। आठ दिन पहले रात में बाथरूम जाने के लिए इन्दु बिस्तर से उठीं तो आलमारी का कोना उनकी कनपटी में चुभ गया। वह लद्द से गिरीं, आधी ज़मीन पर, आधी बिस्तर पर। मुँह से चीख भी नहीं निकली। सुबह चार बजे कवि की आँख खुली। कुछ देर वह यही सोचता रहा कि इन्दु बाथरूम में है। बायीं करवट पर ही उसे आभास हुआ कि कोई गिरा हुआ है। उसने तुरन्त बिजली जलायी। बड़ी मुश्किल से पत्नी की शिथिल, अचेत देह बिस्तर पर की और मनीषा को जगाया।

बहुत देर तक पिता-पुत्री इन्दु के उपचार में लगे रहे। जब भी इन्दु बेहोश होतीं कोरामिन की बूँदें, गरम पानी की बोतल, ठंडे पानी के छींटे और तलवों की मालिश से उन्हें कुछ देर में होश आ जाता। लेकिन इस बार ये सारे उपचार व्यर्थ सिद्ध हुए।

आखिर सुबह नौ बजे डॉ. मेढेकर को बुलाया गया। उनकी सलाह पर ही इन्दु को ससून में दाखिल किया।

डॉक्टर का कहना है कि माँ के मस्तिष्क का स्कैन करना होगा। माँ का बार-बार बेहोश होना मिरगी के कारण हो सकता है या रक्तप्रवाह में कहीं रुकावट हो सकती है। समस्त परीक्षणों की रिपोर्ट आये बिना डॉक्टर कुछ कहने की स्थिति में नहीं हैं। घर में एक तरह से ताला ही पड़ गया। मनीषा माँ की परिचर्या में दिन-रात हॉस्पिटल में

उनके पास है। हर तीन घंटे पर उनकी नाक में लगी नली के रास्ते पानी और फलों का रस देना उसी की जिम्मेदारी है। डॉक्टरों की टीम दिन में दो बार आकर देख जाती है। दवाओं से बस इतना फ़ायदा हुआ है कि कभी उनमें थोड़ी-सी चेतना लौटती है। इन्दु आँखें फाडक़र हॉस्पिटल के कमरे की दीवारें देखती हैं। डॉक्टर का सफेद एप्रन देखते ही यन्त्र की तरह कह उठती है "माय नेम इज़ इन्दु अग्रवाल।" डॉक्टरों को पूरी उम्मीद है कि वे उन्हें ठीक कर लेंगे। कवि दफ्तर से सीधा हॉस्पिटल आ जाता है। रात नौ बजे मनीषा और वह कैंटीन से मँगाकर खाना खाते हैं। दिन भर की बैठक और मानसिक तनाव से पस्त कवि तब सिर्फ सोने के लिए घर का रुख़ करता है। हॉस्पिटल में मरीज़ के पास सिर्फ एक परिचारक को ठहरने की इजाज़त है।

मथुरा से तार मिलने पर कवि बौखला गया। तार दादाजी ने दिया था-विद्यावती सीरियस, कम इमीजियेटली।

पापा का हौसला पस्त होता देख मनीषा तुरन्त आगे आ गयी, "पापा आप जाकर दादी को देखिए, मैं माँ के पास हूँ न।" शायद बोलते-बोलते आवाज़ में गीलापन आ गया।

कवि ने भर्राई आवाज़ में कहा, "मेरी चार पहियों की गाड़ी में दो पहिये टूट गये मुन्नी।"

"नहीं पापा आपकी गाड़ी को कुछ नहीं होगा, आप जाएँ।"

नितान्त स्वयं पर माँ का समूचा चिकित्सा-भार लेने की अगली सुबह मनीषा का मन बेचैन हो उठा। माँ की आँखों के चारों ओर काले धब्बों का गोल घेरा बनता जा रहा था जैसे किसी ने उनके चेहरे पर चितकबरा चश्मा लगा दिया हो। जब नर्स उनकी कलाई में लगी इंजेक्शन की सुई में सिरिंज से नयी दवा उँडेलती, इन्दु अपना बायाँ पैर और हाथ बड़ी तेज़ी से पटकती। मनीषा उनके कान के पास जाकर पुकारती, "मम्मी, मम्मी।"

इन्दु फटी-फटी आँखों से उसे देखती पर उनमें कोई पहचान न उभरती।

मनीषा डॉक्टर बंडी और सिपाहा से कहती, "मम्मी क्यों नहीं जाग रही हैं आप बताते क्यों नहीं।"

डॉक्टर दिलासा देते, "हम पूरी कोशिश कर रहे हैं, हमें सत्तर परसेंट उम्मीद है।"

उनके उत्तर से मनीषा तिलमिला जाती, "आपके सत्तर प्रतिशत का क्या फ़ायदा, मम्मी तो अभी भी बेहोश हैं।"

डॉक्टर ज्यीदा बात नहीं करते। आपस में सलाह-मशविरा करते निकल जाते।

सिस्टर जूलिया बताती, "तुम इस तरह पेशेंस खोएगा तो ठीक बात नहीं। कोमा पेशेंट तो कभी-कभी एक साल, चार साल, कितने भी साल लगाता। हम देखेगा। तुम जाकर अपना काम करो बेबी।"

मनीषा क्या करे। उसका मन ही नहीं करता उठकर बाहर जाने का। आज इतने दिनों से कॉलेज का रुख़ नहीं किया है उसने। फ्रेंच ऑनर्स की पढ़ाई इतनी आसान नहीं है कि वह क्लास से ग़ैर-हाजिर रहकर काम चला ले।

उसे बारी-बारी से कई लोगों ने हॉस्पिटल में समझाया है, कोमा के मरीज के साथ सबसे अच्छी बात यह है कि हर वक्त देखभाल नहीं करनी होती। बस हर तीन घंटे पर मुँह में लिक्विड डायट डाल दो, छुट्टी। लेकिन मनीषा को हर पल इन्तज़ार रहता है शायद माँ अब आँख खोले।

एक दिन उसकी क्लास के कुछ लडक़े-लड़कियाँ माँ को देखने हॉस्पिटल आये थे। उस कुर्गी लडक़े ने मनीषा से कहा था, "बाय गॉड, अपनी मम्मी से ज्यासदा बीमार तो तुम लग रही हो। तुम्हें क्या हो गया है। ऐसे तो एक दिन तुम डिजॉल्व हो जाओगी हवा और पानी में।"

जिमी का लम्बा कद, भूरे बाल और भूरी आँखें मनीषा को पसन्द थीं। पूरी क्लास में बस जिमी ही उसे अच्छा लगा था। उसकी चिन्ता देख मनीषा का मन भर आया लेकिन टिप्पणी पर सोचने पर उसे लगा वह ज़रूर बहुत ऊलजलूल लग रही होगी।

सभी दोस्त थोड़ी देर में चले गये थे।

शाम को बाथरूम के आईने में अपने आपको देखकर मनीषा एक बार पहचानी ही नहीं। चेहरे की त्वचा सूखी, निस्तेज लग रही थी, बिना काजल आँखें एकदम खाली खोखल दिख रही थीं, होठों पर पपड़ी जमी हुई, कौन कहेगा यह अठारह साल की लडक़ी का चेहरा है। उसने एक बार फिर अपने को जिमी की नज़रों से देखा। उसे लगा वह लडक़ा अपनी सूची से मनीषा का नाम काट चुका होगा। रात को सोने से पहले उसने मुँह धोकर कोल्ड क्रीम लगायी। सुबह चेहरे पर कुछ चमक लौटी।

इन्दु का बार-बार चौंकना और हाथ-पाँव पटकना जारी था। इससे बिस्तर पर से उनके गिरने का काफ़ी खतरा था। सिस्टर जूलिया ने कहा, "हम केज वाले बेड के लिए मेट्रन को बोलता है, तुम कब तक चौकीदारी करेगा बेटी।"

चारों तरफ़ लोहे के सींखचों वाला बेड लाया गया। उस पर माँ को लेटे देख पहले तो मनीषा घबराई, फिर उसने पाया यह इन्तज़ाम मरीज़ की भलाई के लिए ही था। अब कम-से-कम उनके गिरने का ख़तरा नहीं था।

कई दिनों के बाद मनीषा ने अपनी पाठ्य-पुस्तक को हाथ लगाया। पास की कुर्सी पर बैठ वह देर तक पढ़ती रही। शब्दकोश की ज़रूरत महसूस हुई जो घर पर ही छूट गया था।

शाम को जिमी और विन्सेंट मिलने आये। जिमी ने कहा, "मनीषा टर्म पेपर के लिए एडिसन का यह आलेख फ्रेंच में अनुवाद करना है। बाय गॉड, मेरे तो सिर से ऊपर की चीज़ है। तुम यहाँ बैठे-बैठे कर दो, तुम्हारी प्रेक्टिस हो जायगी।"

टर्म पेपर के लिए हर विद्यार्थी को अलग विद्वान का आलेख दिया जाता था ताकि कोई किसी की नक़ल न करे।

थोड़ी खुशी हुई मनीषा को। उसने कहा, "शब्दकोश तुम लोग लाये हो नहीं, उसके बिना अनुवाद कैसा?"

"अरे मैं तो बहुत दूर रहता हूँ," विन्सेंट ने कहा, "मेरे से उम्मीद मत रखना।"

जिमी ने कहा, वह दे जाएगा। फिर उसने कहा, "तुम्हारे पास नहीं है?"

"है, घर में पड़ा है।" मनीषा ने कहा।

"यों कहो तुम्हारा इरादा यहीं घर बसाने का है? क्या घर बिल्कुल नहीं जातीं?"

"कैसे जाऊँ!" कहकर मनीषा ने माँ की तरफ़ देखा।

जिमी ने भी उधर ध्यान दिया और कहा, "उस दिन से आंटी की तबीयत कुछ बेहतर लग रही है। उनके चेहरे पर रंगत उतर रही है।"

मनीषा ने नज़रों से शुक्रिया अदा किया।

"मैं ला दूँगा। पर आज तो नहीं, कल अगर याद रहा तो।"

सहपाठियों को देख मनीषा की तबीयत उत्फुल्ल हो आयी। उसने बिना शब्दकोश के ही अनुवाद शुरू कर दिया। यह देखकर उसे अच्छा लगा कि वह कई वाक्य अनुवाद कर गयी।

रात को इन्दु हल्की-सी जागीं। उन्होंने करवट लेने की कोशिश की। उनका हाथ केज के सींखचे से टकराया। दो बार इसी अवरोध से जैसे इन्दु की जड़ता टूटी। उन्होंने कमज़ोर आवाज़ में कहा, "यह क्या है, इसे हटाओ।"

मनीषा कागज़-कलम छोडक़र माँ की ओर लपकी। उन्होंने पीछे का सींखचा पकड़ा हुआ था और उसे हिलाने की निष्फल कोशिश कर रही थीं। मनीषा ने खुशी से कहा, "मम्मी, मम्मी?"

इन्दु ने आँखें खोलीं, "यह सब किसने लगाया। मेरा बिस्तर कहाँ गया?"

दस दिन बाद एक कायदे का जुमला माँ से सुन मनीषा इतनी खुश हुई कि रो पड़ी, "माँ तुम्हारा बिस्तर घर पर है, यह ससून हॉस्पिटल है। तुम बेहोश हो गयी थीं।"

इन्दु ने होंठों पर हाथ फिराया, "प्यास लग रही है।"

मनीषा ने जल्दी से उन्हें पानी पिलाया।

उसने सिस्टर को ख़बर की। सिस्टर बहुत ख़ुश हुई, "अब पेशेंट को सोना नहीं माँगता। इनसे बातें करती रहो।"

मनीषा को लगा अगर मथुरा वाले घर में फोन होता तो वह पापा को बता देती। उसका ध्यान दादी माँ की तरफ़ गया। पता नहीं कैसी होंगी वे।

आधी रात में इन्दु को तेज़ भूख लगी। मनीषा ने जैम और डबलरोटी दी। इन्दु ने कहा, "चाय नहीं है?"

वाह माँ तो ठीक हो गयी लगती हैं, घर में वे कभी चाय के बिना डबलरोटी नहीं खाती थीं।

कमरे में चाय का इन्तज़ाम था। मनीषा ने दो प्याले चाय बनायी।

चाय पीते ही माँ ने बालों पर हाथ फेरा, "मेरे बाल उलझ रहे हैं तू कंघी नहीं करती क्या?"

मनीषा क्या बताती कि निश्चेष्ट पड़े व्यक्ति की कंघी वह कैसे करती।

कंघा लेकर वह माँ के बाल सँवारने लगी।

इतनी देर में इन्दु थक गयी। लेटकर उसने आँखें बन्द कर लीं। मनीषा उत्तेजित थी। उसे देर तक नींद नहीं आयी। यह तो चमत्कार ही हो गया।

सुबह के राउंड पर इन्दु के डॉक्टर और मेडिकल छात्र भी उन्हें सचेत देखकर प्रसन्न हुए। डॉक्टर बंडी ने कहा, "वी आर बैक टु स्क्वैयर वन।"

"डॉक्टर इन्हें घर कब ले जा सकते हैं?" मनीषा ने पूछा।

"दो दिन और देख लें।" कहकर डॉक्टर निकल गये।

दोपहर में मोटरबाइक की परिचित गडग़ड़ सुन मनीषा ने खिडक़ी से देखा।

जिमी आ रहा था।

उसने अन्दर आकर शब्दकोश मनीषा को थमाया।

"मैंने बिना इसके कर डाला।" मनीषा ने बताया।

"अरे!" जिमी बोला, "यू आर अ जीनियस। आज तुम आँखों समेत हँस रही हो मनीषा।"

मनीषा ने माँ की तबीयत बतायी।

"मैंने तुम्हें पहले ही कहा था वे ठीक हो रही हैं। आंटी आपकी वैलनेस सेलिब्रट करते हैं, क्या लेंगी, कोक या कॉफी।"

इन्दु पहले भी जिमी से मिल चुकी थीं। उन्होंने कहा, "तुम बैठो, मनीषा कैंटीन से लाएगी।"

मनीषा उठी तो जिमी साथ हो लिया, "तीन बॉटिल कैसे पकड़ोगी?"

कैंटीन के काउंटर पर टोकन देने के बाद वे इन्तज़ार में खड़े हो गये।

जिमी ने कहा, "मैंने सुबह इतनी गर्म कॉफी पी ली कि मेरा होंठ जल गया।" उसने अपना ऊपर का होंठ दिखाया। वास्तव में वह बीच में झुलसा हुआ लग रहा था।

मनीषा को रोमांच हो आया। इतने करीब से किसी लडक़े के होंठ उसने पहली बार देखे।

जिमी बीस मिनट बैठकर वापस चला। मनीषा उसे छोडऩे बरामदे तक गयी।

"दो दिन में हम घर चले जाएँगे।" उसने बताया।

"फिर तुम कॉलेज आओगी। बाय गॉड तुम्हारे बिना क्लास बड़ी बेजान लगती है।"

"सच!" मनीषा ने पूछा।

"और क्या झूठ! ओके बाय!" जिमी ने हाथ हिलाया।

बहुत दिनों के बाद आज मन में कविता ने करवट ली है। खिडक़ी से चाँदनी अन्दर घुसने का जतन कर रही है। मनीषा को लगा, कल भी तो आयी थी चाँदनी, कल उसने क्यों ख़याल नहीं किया, आज ही क्यों?

जब कमरे में अँधेरा हो तब मन लिखने लगता है। इस समय तो उसे पूरी कविता आँखों के सामने लिखी दिख रही है :

कल रात चाँदनी चोरी से मसहरी में घुस आयी थी

रुपहली बाँह से अँकवार में लेकर वह थोड़ा मुस्कुराई थी

पहली बार तब मुझको लगा ऐसा

कि सोलह साल की इस उम्र के मन में

कहीं कोई बड़ी प्यारी बुराई थी।

अगर अभी उठकर नहीं लिखी तो सवेरे तक दिल-दिमाग से धुल-पुँछ जाएगी। ऐसा उसके साथ कई बार होता है। शब्द मन में साँकल की तरह बज उठते हैं, जुगनू की तरह चमक पड़ते हैं। ख़ुश होती है तो हवाओं में संगीत उतर आता है। जैसे इस वक्त ससून हॉस्पिटल के सन्नाटे में दूर कहीं रजक-बस्ती में ढोलक खनक रही है। मन की कलम आज बौरा उठी है :

कल रात किसी अँगनाई में हौले से ढोलक खनकी थी

मेरी इन निंदियल पलकों में तब याद किसी की अटकी थी

फिर सारी रात मेरी निंदिया, करवट की गलियाँ भटकी थी

अगली तुक मिलाने की कोशिश में किसी वक्त उसे नींद ने घेर लिया।

स्टेशन पर कवि उलझन में पड़ा रहा कि वह पहले हॉस्पिटल जाय या घर। दोनों की विपरीत दिशा थी।

पहले ससून हॉस्पिटल जाना ही ठीक होगा। उसने ऑटोड्राइवर को निर्देश दिया। वार्ड नं. तीन की तरफ़, गलियारे में वह बढ़ ही रहा था कि सिस्टर जूलिया दिख गयीं।

"आज ही सुब्बे में आपका पेशेंट घर को गया।" सिस्टर ने बताया।

हताश और उदास मन में सुकून की हल्की-सी रौशनी हुई। कवि ने वापस ऑटो में बैठकर कहा, "ताड़ीवाला रोड।"

शाम के झुकपुके में मनीषा एक पल पापा को पहचान न पायी। पैंट और कुर्ते के साथ पापा ने टोपी क्यों लगा रखी है।

बरामदे की बिजली जलाते ही उसने देखा पापा के सिर के घने काले बाल नदारद हैं।

जी धक् से रह गया।

"पापा दादी माँ!"

"जीजी चली गयीं मुन्नी। तेरी माँ कैसी है?"

"ठीक हो रही हैं, कमज़ोरी बहुत है।"

कवि के अन्दर आते ही इन्दु की झपकी टूटी।

"जीजी नहीं रहीं इनी। जिस दिन मैं पहुँचा, उसके अगले रोज़, अठारह तारीख़ की रात दो बजे चली गयीं। जाने से पहले ज़रा-सा सँभाला लिया, बोलीं, बहू को नायँ लायौ? मैंने तुम्हारी तबीयत बतायी। पता नहीं वे समझीं कि नहीं। बस आँखें मूँद लीं।"

"हम उनके अन्तिम दर्शन भी नहीं कर सके।" इन्दु ने कहा।

कोलीन इस वक्त तक घर जा चुकी थी। इन्दु में उठने की ताक़त नहीं थी। मनीषा ने पापा का सामान सँभाला, मैले कपड़े वॉशर में डाले और खाली अटैची आलमारी के ऊपर रखी।

पापा चाय पिएँगे। लौकी माँ के लिए बनी हुई है। पापा लौकी नहीं खाते। मनीषा को आलू की सब्ज़ी बनानी आती है, वही बनाएगी।

कमरे में आते-जाते मनीषा ने देखा माँ बार-बार अपना सिर थाम रही है। इशारे से पापा को मना किया। माँ ज्यावदा बातचीत झेल नहीं पातीं। डॉक्टर ने बताया है उनके दिमाग पर बोझ न पड़े।

रात अपने कमरे में पहुँचकर ही मनीषा को फ़ुरसत मिली कि दादी को याद करे। ताज्जुब कि दादी उसके ज़ेहन में न बीमार थीं न लाचार। उसकी दादी अपनी तरह की अलबेली स्वाधीनता सेनानी थीं, कभी देश की आज़ादी के लिए लड़ीं, कभी अपनी। अपनी शिक्षा आप ग्रहण की। सारे बन्धनों के बीच रास्ता निकाला। जैसी जिन्दगी मिली, उससे बेहतर जिन्दगी का सपना उन्होंने देखा। मनीषा जानती है दादी की याद में कहीं कोई स्मारक खड़ा नहीं किया जायगा। न अचल न सचल। उसके हाथ में यह कलम है। वही लिखेगी अपनी दादी की कहानी।

>>पीछे>>

शीर्ष पर जाएँ